इकाई 14 उत्पादन का सिद्धान्त: एक परिवर्तनशील साधन में उत्पादन

इकाई संरचना

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 उत्पादन का सिद्धान्त: उत्पादन फलन
14.4 एक परिवर्तनशील साधन में उत्पादन: परिवर्तनशील अनुपात का नियम
14.5 सारांश
14.6 शब्दावली
14.7 अभ्यास प्रश्न
14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.9 सहायक पाठ्य सामग्री
14.10 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

‘उत्पादन के सिद्धान्त और लागत एवं आगम वक्र’ खण्ड की यह तीसरी इकाई है इससे पूर्व की इकाई में आप लागत तथा आगम वक्रों की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके है।

प्रस्तुत इकाई में एक परिवर्तनशील साधन का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जायेगा, साथ ही परिवर्तनशील अनुपात के नियम की तीनों अवस्थाओं का विश्लेषण तालिका व चित्र द्वारा किया जायेगा। नियम के महत्व पर भी प्रकाश डाला जायेगा।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान जायेंगे, कि एक परिवर्तनशील साधन उत्पादन को किस प्रकार प्रभावित करता है।

14.2 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन से आप:-

- उत्पादन फलन को समझ सकेंगे।
- परिवर्तनशील अनुपात के नियमों की तीनों अवस्थाओं से अवगत हो जायेगें।
- परिवर्तनशील अनुपात के नियम के लागू होने के कारण को समझ सकेंगे।
- परिवर्तनशील साधन लागतों को कैसे प्रभावित करते है यह भी जान जायेंगे।

14.3 उत्पादन का सिद्धान्त: उत्पादन फलन :-

उत्पादन का सिद्धान्त एक दी हुई तकनीक में निश्चित उत्पादन मात्रा के लिए विभिन्न साधनों के संयोग की समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। उत्पादन सिद्धान्त, उत्पादन मात्रा तथा लागत में परस्पर सम्बन्ध का आधार है। साथ ही यह फर्म, फर्म के साधनों तथा उसके मांग का भी विश्लेषण करता है। एक फर्म के साधनों तथा उसके उत्पादन के बीच तकनीकी सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहते है। उत्पादन फलन आगतो तथा निर्गतों की मात्राओं के फलनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करता है। यह एक दिये हुए समय के लिए ‘उत्पादन की मात्रा’ तथा ‘उत्पत्ति’ में भौतिक सम्बन्ध को बताता है।

प्रो0 वाटसन के अनुसार, किसी फर्म की भौतिक पड़तो तथा उपज की भौतिक मात्रा के बीच के सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहते है।

प्रो0 सैम्युलसन के अनुसार; उत्पादन फलन वह तकनीकी सम्बन्ध है जो यह बताता है कि आग तों के प्रत्येक समूह विशेष द्वारा कितना उत्पादन किया जा सकता है। यह सम्बन्ध किसी दिये हुए तकनीकी ज्ञान के स्तर के लिए ही व्यक्त किया जाता है।

प्रो0 स्टिगलर के अनुसार; 'उत्पादन फलन उत्पादकीय सेवाओं की आग त की दरों और वस्तु के उत्पादन की दर के बीच संबंध को दिया गया नाम है। यह अर्थशास्त्री के तकनीकी ज्ञान का सारांश है।'

प्रो0 लेफ्टवीच के अनुसार; उत्पादन-फलन शब्द उस भौतिक सम्बन्ध के लिए प्रयोग किया जाता है, जो एक फर्म के साधनों की इकाईयों (पड़तो) और प्रति इकाई समयानुसार प्राप्त वस्तुओं और सेवाओं (उत्पादों) के बीच पाया जाता है।

इस प्रकार उत्पादन फलन एक दी हुई तकनीकी में उत्पादन में प्रयोग की गई आगतों के विभिन्न संयोगों से प्राप्त उत्पादन की मात्रा को दर्शाता है। समीकरण के रूप में इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

$$Q = f(L, M, N, C, T)$$

जहां Q प्रति समय अवधि में एक वस्तु का उत्पादन है, L श्रम, M मैनेजमेंट या संगठन , N भूमि, C पूॅजी, T दी हुई तकनीकी और फलनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करता है।

उत्पादन फलन भौतिक आगतों और निर्गतों के तकनीकी सम्बन्धों को प्रकट करता है, यदि फर्म अपनी वस्तु की उत्पादन मात्रा बढ़ाना चाहती है तो वह सभी आवश्यक साधनों की मात्रा बढ़ा सकती है या वह शेष साधनों की मात्रा स्थिर रख कर उपलब्ध साधन की मात्रा बढ़ा सकती है। प्रथम का सम्बन्ध दीर्घकाल से और दूसरे का अल्पकाल से होता है। अल्पकाल में सभी उत्पादन साधनों की मात्रा में परिवर्तन सम्भव नहीं होता, इसलिए कुछ साधनों को स्थिर रखते हुए अन्य परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है, तो उसे एक परिवर्तनशील साधन वाला उत्पादन फलन कहा जाता है।

14.4 एक परिवर्तनशील साधन में उत्पादन: परिवर्तनशील अनुपात का नियम

परिवर्तनशील अनुपात के नियम का आर्थिक उत्पादन सिद्धान्त में बड़ा महत्व है। यह नियम अल्पकालीन उत्पादन फलन का विश्लेषण करता है जिसमें कुछ साधन स्थिर रहने पर एक या एक से अधिक साधनों में परिवर्तन किया जाता है। जिससे स्थिर व परिखर्तनशील साधन का अनुपात बदल जाता है। इसलिये इसे परिवर्तन अनुपात का नियम कहते है। परिवर्तशील अनुपात को ह्रासमान प्रतिफल का नियम या ह्रासमान सीमान्त भौतिक उत्पादकता का नियम भी कहा जाता है।

परन्तु यह सही नहीं हैं क्योंकि यह नियम तो परिवर्तनशील अनुपात के नियम की केवल द्वितीय अवस्था को व्यक्त करते है। एक परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल के धारणा अल्पकाल से सम्बन्धित है, क्योंकि पूॅजी, मशीने, तथा भूमि स्थिर रहते है और उत्पादन वृद्धि हेतु श्रम व कच्चेमाल को ही बढ़ाया जा सकता है। अल्पकालीन उत्पादन फलन को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है।

$$Q = f\,(L.\ \overline{K}\,)$$

यहां पर Q उत्पादन मात्रा को, L श्रम की मात्रा तथा K पूंजी की स्थिर मात्रा को दर्शाता है। जिससे पॅूजी की मात्रा स्थिर रखते हुए श्रम का अधिक प्रयोग करने से उत्पादन की मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव को देखा जाता है। परिवर्तनशील अनुपात के नियमों को विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है-

सैमूल्यसन के अनुसार:- स्थिर साधनों की तुलना में कुछ साधनों में वृद्धि करने से उत्पादन में वृद्धि होगी, परन्तु एक बिन्दु के बाद साधनों की समान वृद्धियों से प्राप्त अतिरिक्त उत्पादन उत्तरोत्तर कम होता जाएगा।

स्टिगलर के अनुसार -‘जब किसी साधनों के संयोग में एक साधन का अनुपात बढ़ाया जाता है, तो एक सीमा के पश्चात् पहले उस साधन का सीमान्त उत्पादन और फिर औसत उत्पादन घट जायेंगे।’

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्शल ने कृषि के सम्बन्ध में घटते प्रतिफल का विवेचन इस प्रकार किया - भूमि की खेती में पूॅजी और श्रम की मात्रा बढ़ने से उत्पादन मात्रा में सामान्यतः आनुपातिक वृद्धि से कम वृद्धि होता है। बशर्ते कृषि तकनीक में कोई सुधार न हुआ हों।

प्रो0 बोल्डिंग के अनुसार - जब कुछ साधन की स्थिर मात्रा के साथ किसी अन्य साधन की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो परिवर्तनशील साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता अन्ततः अवश्य ही घट जाएगी।

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि जब अन्य साधनों को स्थिर रखते हुए एक साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो परिवर्तनशील साधन को सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन अन्ततः घट जायेगें।

परिवर्तनशील अनुपात के नियम की आवश्यक शर्तें या मान्यताएँ -

1. साधनों के संयोग के अनुपातों में परिवर्तन सम्भव है।
2. एक साधन परिवर्तनशील होता है, जबकि अन्य स्थिर रहते है।
3. उत्पादन के दौरान तकनीकी एक सामान अर्थात् अपरिवर्तित रहती है।

4. वस्तु को भौतिक मात्रा में मापा जा सकता है।

5. परिवर्तनशील साधन की सभी इकाईयाँ एक समान कार्यकुशल है।

6. परिवर्तनशील साधन को छोटी-छोटी इकाईयों में बाँटा जा सकता है।

परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीन अवस्थाएँ - जब कुछ साधनों को स्थिर रखते हुए एक साधन की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो उससे उत्पादन पर जो प्रभाव पड़ता है उसे तालिका (14.1) में प्रदर्शित किया गया है।अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रखते हुए जब श्रम की मात्रा बढ़ायी जाती है तो उसका कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्त उत्पादन पर जो प्रभाव पड़ता है उसके तालिका 14.1 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका (14.1) एक परिवर्तनशील साधन में कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्तउत्पादन

श्रम की इकइयाँ	कुल उत्पादन (TP)	औसत उत्पाद (AP)	सीमान्त उत्पाद (MP)	अवस्थाएँ
1	21	21	21	प्रथम अवस्था
2	50	25	29	
3	81	27	31	
4	108	27	27	द्वितीय अवस्था
5	125	25	17	
6	138	23	13	
7	138	19.7	0	तृतीय अवस्था
8	128	16	— 10	

तालिका (14.1) से स्पष्ट है कि श्रम की इकाई में वृद्धि करने से प्रारम्भ में TP, AP तथा MP तीनों बढ़ते है। क्योंकि इस अवस्था में AP लगातार बढ़ता है। इसीलिए इस अवस्था को बढ़ते औसत उत्पादन की अवस्था कहते है। इसके बाद AP गिरना शुरू हो जाते है जबकि MP पहले ही गिरने लगता है। ऐसी स्थिति में TP भी घटती दर से बढ़ता है। यह अवस्था घटते औसत उत्पादन की अवस्था कहलाती है। जबकि श्रम की और इकाईयों के प्रयोग से अन्त में TP भी गिरने लगता है जब कि MP ऋणात्मक हो जाता है। यह अवस्था घटते कुल उत्पादन की अवस्था कहलाती है।

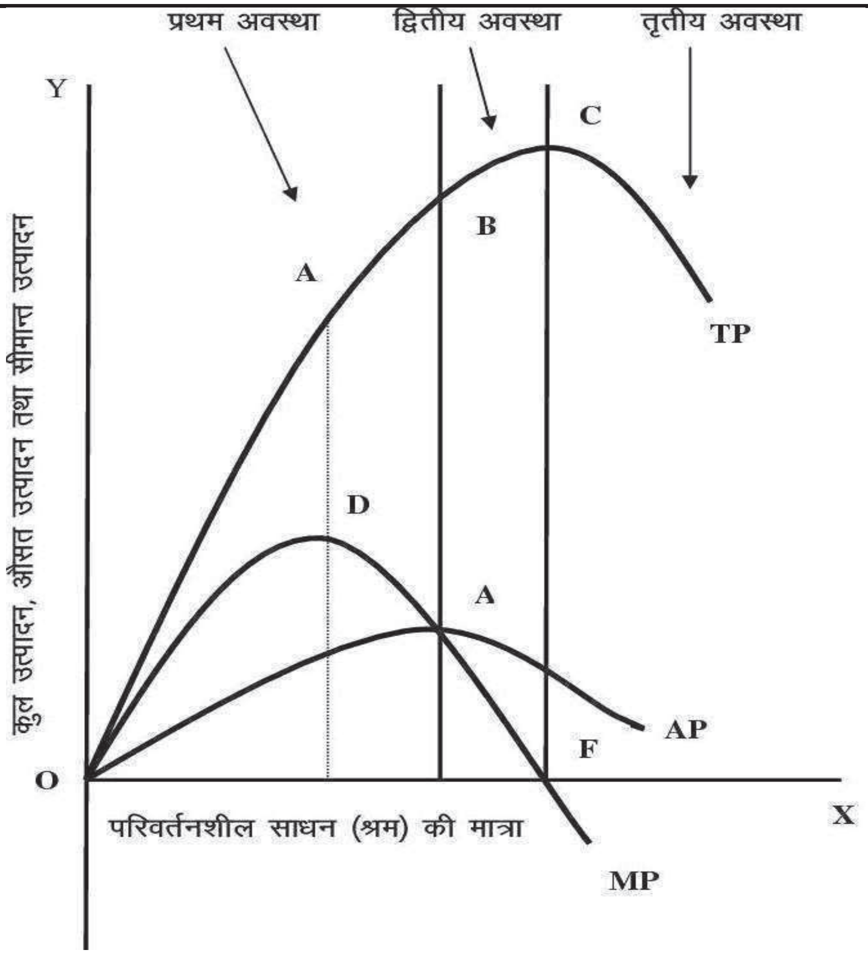

चित्र (14.1) परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीन अवस्थाएँ

इस कारण उत्पादन को तीन अवस्थाओं में बांटा जा सकता है। एक परिवर्तनशील साधन के उत्पादन फलन की तीन अवस्थाओं को चित्र (14.1) द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है। जिसमें X अक्ष पर परिवर्तनशील साधन (श्रम) की मात्रा तथा Y अक्ष पर कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्त उत्पादन को दर्शाया गया है। TP वक्र को देखने पर पता चलता है कि वह । बिन्दु तक तेजी से बढ़ता है। क्योंकि इस स्थिति में MP भी बढ़ता है। A बिन्दु मोड़ बिन्दु है क्योंकि यहाँ तक TP बढ़ती दर से बढ़ता है MP तथा AP भी बढ़ते है। इसके बाद MP घटरे लगताहै और E बिन्दु के बाद AP भी घटने लगता है। इसलिए 'B' बिन्दु के बाद TP घटती दर से बढ़ता है और TP C बिन्दु पर अधिकतम उत्पादन को प्रदर्शित करता है जबकि F बिन्दु पर MP शून्य हो जाता है और जब TP घटने लगता है तो MP ऋणात्क हो जाता है। वास्तव में TP, AP तथा MP का बढ़ना, घटना तथा MP का ऋणात्मक हो जाना ही परिवर्तनशील अनुपात के नियम की तीन अवस्थाएँ है।

1. प्रथम अवस्था (बढ़ते प्रतिफल की अवस्था):-प्रारम्भ में जब श्रम की इकाईयों को बढाया जाता है तो स्थिर साधनों का अच्छी प्रकार से प्रयोग होने लगताहै। क्योंकि परिवर्तनशील साधन की अपेक्षा स्थिर साधन की मात्रा अधिक होती है। जिससे परिवर्तन शील साधन की मात्रा बढ़ाने से स्थिर साधनों का गहन तथा पूर्व प्रयोग होता है। जैसे-जैसे परिवर्तनशील साधन की अतिरिक्त इकाईयाँ जोड़ी जाती है स्थिर साधन की कार्यक्षमता भी बढ़ती जाती है और MP बढ़ता है जिससे TP बढती दर से बढ़ता है अतः प्रारम्भ में TP, AP तथा MP तीनों बढ़ते है जैसे तालिका में श्रम की तीसरी इकाई के प्रयोग से TPए MP तथा MP में वृद्धि दर्शाई गयी है। TP O से F बिन्दु तक MP में वृद्धि के कारण तेजी से बढ़ता है। जबकि थ् बिन्दु के बाद MP में गिरावट के कारण यह दर कम हो जाती है। F बिन्दु को TP वक्र घटती दर से बढ़ाना शुरू हो जाता है। इसीलिए इसे मोड बिन्दु कहते है। इस बिन्दु के ठीक नीचे MP अधिकतम होता है। प्रथम अवस्था तब समाप्त होती है जब AP वक्र उच्चतम बिन्दु पर होता है ओर जहां पर MP = AP होता है। रेखाचित्र में इस स्थिति को E बिन्दु द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इस अवस्था को बढ़ते हुए औसत उत्पादन अवस्था या बढ़ते प्रतिफल का नियम कहा जाता है।

2. द्वितीय अवस्था (घटते प्रतिफल की अवस्था):-प्रथम अवस्था के बाद भी जब स्थिर साधन की तुलना में परिवर्तनशील साधन श्रम की मात्रा बढ़ाई जाती है तो स्थिर साधन की मात्रा तुलनात्मक रूप से कम होती जाती है और परिवर्तनशील साधन में जैसे-जैसे वृद्धि की जाती है। वैसे -वैसे ही स्थिर साधन अपेक्षाकृत न्यून होते जाते है। जिससे MP तथ AP घटने लगते है लेकिन धनात्मक रहते है। जिस कारण TP घटती दर से बढ़ता है तालिका में चौथी से छठी इकाई तक इसी स्थिति को दर्शाया गया है। चित्र में TP के ब् बिनु तथा MP के F बिन्दु तक यही स्थिति है। जब C बिन्दु पर TP अधिकतम तथा F बिन्दु पर MP शून्य हो जाता है। एक उत्पादक के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण अवस्था है क्योंकि इस अवस्था में रह कर ही उत्पादक को उत्पादन करना होता है। इस अवस्था को 'घटते प्रतिफल की अवस्था' या 'घटती सीमान्त व औसत उत्पादन की अवस्था' कहा जाता है। क्योंकि इसमें MP तथा APदोनों घटते है।

3. तृतीय अवस्था (ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था):-जब अन्य साधनों को स्थिर रखते हुए परिवर्तनशील साधन श्रम की मात्रा को बढाते जाते है तो एक ऐसी अवस्था आती है। जब TP घटने लगता है और MP ऋणात्मक हो जाता है। इस अवस्था में परिवर्तनशील साधन की इकाईयां स्थिर साधन की तुलना में अधिक हो जाती है जिससे वह एक-दूसरे के काम में बाधा डालने लगती है। जिसके फलस्वरूप TP बढ़ने के बजाये घटने लगता है। तालिका में सातवीं तथा आठवीं श्रम इकाई के प्रयोग से सही स्थिति उत्पन्न हो गई है। जिससे TP नीचे की और झुकता है और MP X अक्ष के नीचे जाकर ऋणात्मक हो गया है। इस अवस्था को 'ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था' कहा जाता

है। क्योंकि इसमें परिवर्तनशील साधन का सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है। इसलिए एक विवेकशील उत्पादक इस अवस्था में उत्पादन करना पसन्द नहीं करेगा।

एक उत्पादक किस अवस्था में उत्पादन कार्य करेगा ? कोई भी उत्पादक प्रथम अवस्था में उत्पादन नहीं करेगा क्योंकि इस स्थिति में परिवर्तनशील साधन श्रम का TP, AP तथा MP घनात्मक है, परन्तु स्थिर साधन का MP ऋणात्मक होता है। जिस कारण उत्पादक इस अवस्था को पसन्द नहीं करता। इसी प्रकार तृतीय अवस्था में परिवर्तनशील साधन श्रम का MP ऋणात्मक होने के कारण उत्पादक इसका भी चुनाव नहीं करेगा इस प्रकार उत्पादक प्रथम तथा तृतीय अवस्था को पसन्द नहीं करेगा।

वास्तव में एक विवेकशील उत्पादन द्वितीय अवस्था में उत्पादन करना पसन्द करेगा जिसमें MP धनात्मक है। जबकि MP और AP घट रहें है। क्योंकि इस अवस्था में स्थिर तथा परिवर्तनशील साधन MP धनात्मक है। वास्तव में उत्पादक द्वितीय अवस्था के किस बिन्दु पर उत्पादन करने का निर्णय लेगा यह साधन की कीमतों पर निर्भर करता है। अतः द्वितीय अवस्था विवेकशील उत्पादक के निर्णय के क्षेत्र में व्यक्त करती है।

परिवर्तनशील अनुपात का नियम एवं लागतें - परिवर्तनशील अनुपात के नियम की व्याख्या जब 'लागत' की दृष्टि से की जाती है तो हमें तीन अवस्थाएँ देखने को मिल ती है। घटती लागत की स्थिति, स्थिर लागत की स्थिति तथा बढ़ती लागत की स्थिति। प्रारम्भ में जब अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढ़ायी जाती है तो वस्तु का उत्पादन साधन वृद्धि की तुलना में अधिक होता है। जिससे MP बढ़ता है। यदि वस्तु कीमत स्थिर रहे तो सीमान्त लागत MC तथा औसत लागत AC दोनों घटने लगते है। यदि परिवर्तनशील साधन की और अधिक इकाईयों का प्रयोग किया जाता है तो MC एक बिन्दु पर न्यूनतम् होकर बढ़ने लगती है। इसके बाद ACभी न्यूनतम बिन्दु पर पहुँच कर MC के बराबर हो जाती है। जैसा कि चित्र (14.2) में L बिन्दु द्वारा प्रदर्शित किया गया है। L बिन्दु के बाद भी जब परिवर्तन शील साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है। MC तथा AC बढने लगते है। चित्र में L बिन्दु से पहले की स्थिति घटती लागत को L बिन्दु स्थिर लागत को और L बिन्दु के बाद की स्थिति बढ़ती लागत की अवस्था को प्रदर्शित करती है।

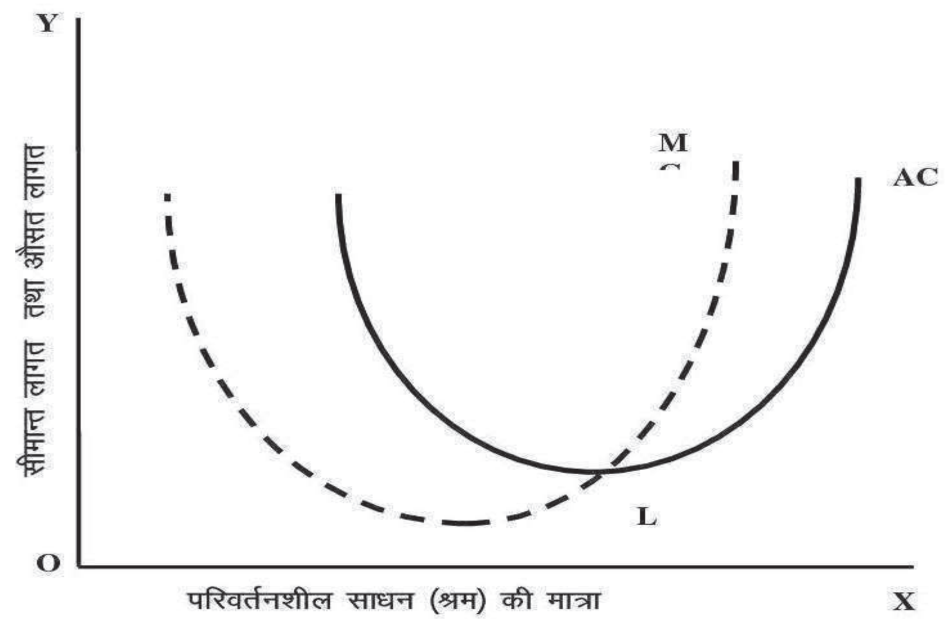

चित्र (14.2) परिवर्तनशील अनुपात का नियम एवं लागतें

परिवर्तनशील अनुपात के नियम के लागू होने के कारण:-परिवर्तनशील अनुपात के नियम के लागू होने के मुख्य कारण इस प्रकार है -

1. एक या एक से अधिक साधनों का स्थिर रहना - जब अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन श्रम की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो उत्पादन के साधनों के बीच का अनुकूलतम संयोग भंग होता है जिस कारण कुल उत्पादन AP तथा MP घटने लगता है और परिवर्तनशील साधन में अधिक वृद्धि करने पर उसका MP ऋणात्मक भी हो जाता है।

2. उत्पत्ति के साधनों का अपूर्ण स्थानापन्न होना - श्रीमती जॉन रोबिन्सन के अनुसार, एक साधन को दूसरे के स्थान पर केवल एक सीमा तक ही प्रतिस्थापित किया जा सकता है। अर्थात् उत्पादन के सभी साधन एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न नहीं होते। इसीलिए किसी एक साधन को दूसरे साधन के स्थान पर एक - सीमा तक ही प्रयोग किया जा सकता है। इसी कारण से एक अवस्था के बाद उत्पादन घटने लगता है।

3. साधनों की अविभाज्यता - प्रायः स्थिर साधन अविभाज्य होते है। जिनकी एक निश्चित मात्रा का प्रयोग किया जाता है। प्रथम अवस्था में जब परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढाई जाती है, तो अविभाज्य स्थिर साधन का पूर्ण उपयोग होता है जिसकारण उत्पादन तीव्र गति से बढ़ता है और

यह वृद्धि इन साधन के अधिकतम उपयोग तक जारी रहती है। इसके बाद उत्पादन घटने लगता है क्यों अविभाज्य साधन का अनुकूलतम् अधिकतम प्रयोग किया जा चुका होता है।

परिवर्तनशील अनुपात के नियम का महत्व:-परिवर्तनशील अनुपातों के नियम इस तथ्य की व्याख्या करते है कि सीमान्त भौतिक उत्पादन यदि प्रारम्भ में बढ़ भी रहा हो तो अन्ततः घटता है। मार्शल के समय यह समझा जाता था कि उत्पादन के बढ़ते प्रतिफल, स्थिर-प्रतिफल तथा घटते पूर्णतया भिन्न अथवा एक दूसरे से अलग -अलग नियम होते है। लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि बढ़ते स्थिर तथा घटते प्रतिफल अलग -अलग न होकर ''परिवर्तनशील अनुपातों के नियम'' की ही तीन अवस्थाएँ है। मार्शल का यह भी मानना था कि स्थिर एवं बढ़ते प्रतिफल विनिर्माण उद्योग में लागू होते है जबकि घटते प्रतिफल कृषि क्षेत्र में लागू होता है। लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्रियों विशेषकर श्रीमती जॉन रोबिन्सन के अनुसार परिवर्तनशील अनुपात के नियम सभी क्षेत्रों पर लागू होते है। एक उत्पादक की दृष्टि से द्वितीय अवस्था अर्थात घटते प्रतिफल की अवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसलिए इस नियम की व्यावहारिकता ने अर्थशास्त्र को विज्ञान के क्षेत्र में पहुँचा दिया है। विक्स्टीड के अनुसार घटते प्रतिफल का नियम उतना ही सार्वभौमिक है जितना कि जीवन का नियम। यह अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम है। जो अर्थशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों का आधार है।

माल्थरस का जनसंख्या सिद्धान्त घटते प्रतिफल के नियम पर आधारित है। जनसंख्या सिद्धान्त बताता है, कि जनसंख्या खाद्यानों की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ती है। क्योंकि घटते प्रतिफल के नियम की क्रियाशील ता के कारण खाद्यान धीमी गति से बढ़ते है।

रिकार्डो का लगान सिद्धान्त भी इसी नियम पर आधारित है। क्योंकि इस नियम की क्रियाशील ता के कारण ही भूमिपति घटिया भूमि का प्रयोग प्रारम्भ करता है। जिससे लागत बढ़ती है। गहन खेती में भी भूमि की निश्चित मात्रा पर अधिक श्रम व पूंजी की मात्राओं को लगाने से उत्पादन उसी अनुपात में नहीं बढ़ता क्योंकि घटते प्रतिफल प्राप्त होने लगते है।

इसी प्रकार वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त भी इसी नियम पर आधारित है। जिसके द्वारा उत्पादन के साधन का प्रतिफल निर्धारित किया जाता है।

घटते प्रतिफल के नियम अल्पविकसित देशों की समस्याओं को समझने में सहायक है। ऐसे देशों में मुख्य व्यवसाय कृषि है। लेकिन जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि में अधिकाधिक लोग काम करते है। जबकि भूमि की मात्रा स्थिर रहती है। जिसमें श्रम की सीमान्त उत्पादकता घट जाती है और यदि यह प्रक्रिया जारी रहे तो श्रम की MP शून्य या ऋणात्मक भी हो जाती है।

घटते प्रतिफल के नियम बहुत से अविष्कारों के लिए उत्तरदायी है। क्योंकि इस नियम को क्रियाशील ता को स्थगित करने के लिए ही उत्पादन की नयी-नयी विधियों की खोज की गई है और आज भी इस नियम की क्रियाशील ता को लम्बे समय तक रोकने के लिए नयी-नयी खोज की जा रही है।

इस प्रकार हम देखते है कि एक उत्पादक को उत्पादन प्रक्रिया के दौरान तीन महत्वपूर्ण अवस्था का सामना करना पड़ सकता है और एक कुशल उत्पादक का यह प्रयास रहता है कि वह द्वितीय अवस्था में रहते हुए उत्पादन कार्य सम्पन्न करें।

14.5 सारांश

उत्पादन के साधन और उत्पादन की मात्रा के बीच के तुलनात्मक सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहते है। यह एक दिये हुए समय के लिए उत्पादन की मात्रा तथा उत्पत्ति के साधनों में भौतिक सम्बन्ध में बताता है। जब उत्पादन में वृद्धि करनी हो तो उत्पादन के साधनों में वृद्धि करनी पड़ती है। जब एक परिवतर्नशील साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है। तो उसका उत्पादन पर जो प्रभाव पड़ता है उसे परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के नाम से जाना जाता है। अल्पकाल में जब अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है। तो प्रारम्भ में TP,AP और MP तीनों बढ़ते है। क्योंकि इस अवस्था में AP लगातार बढ़ता है। इसलिए इस प्रथम अवस्था का बढ़ते औसत उत्पादन या बढ़ते प्रतिफल की अवस्था कहा जाता है। इसके बाद, जब और उत्पादन किया जाता है तो AP गिरने लगता है। और TP भी घटती दर से बढ़ता है। MP पहले ही घटने लगता है। यह अवस्था घटते औसत उत्पादन या घटते प्रतिफल की अवस्था कहलाती है। अगर श्रम की और इकाईयों का प्रयोग किया जाता है तो TP भी गिरने लगता है और MP ऋणात्मक हो जाता है। यह अवस्था घटते कुल उत्पादन या ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था कहलाती है। एक उत्पादक द्वितीय अवस्था अर्थात घटते प्रतिफल की अवस्था में उत्पादन करना पसन्द करता है। परिवर्तनशील अनुपात के नियम की व्याख्या लागत की दृष्टि से भी की जाती है। प्रथम अवस्था में जब MP तथा AP बढ़ता है तो MC तथा AC गिरते है जब AC न्यूनतम होता है तो MC, AC के बराबर होता है तथा घटते MP तथा APके कारण MC तथा ACभी बढ़ने लगते है।

एक या एक से अधिक साधनों का स्थिर रहना, उत्पत्ति के साधनों का अपूर्ण स्थानापन्न होना तथा साधनों की अविभाज्यता के कारण परिवर्तनशील अनुपातों के नियम लागू होते है। यह अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम है जो माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त, रिकार्डो के लगान सिद्धान्त, वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त तथा अनेक अविष्कारों का आधार है।

14.6 शब्दावली

आगतों - उत्पादन के साधन

निर्गतो - उत्पादित वस्तु की मात्रा

पड़तों - उत्पादन के साधन

ह्रासमान प्रतिफल - गिरता हुआ उत्पादन

कुल उत्पाद (TP) - किसी परिवर्तनशील साधन के एक निश्चित इकाईयों के प्रयोग से जो उत्पादन प्राप्त होता है। उसे कुल उत्पादन कहते है।

सीमान्त उत्पाद (MP) - साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन होने वाली वृद्धि।

औसत उत्पाद (AP) - कुल उत्पादन में परिवर्तनशील साधन की कुछ इकाईयों से भाग देने से प्राप्त होता है।

साधन की अविभाज्यता - ऐसे साधन जिन्हें छोटी - छोटी इकाईयों (हिस्सों) में बाँटा नहीं जा सकता।

स्थानापन्न:- एक साधन के स्थान पर दूसरे साधन का प्रयोग जैसे हल् के स्थान पर टैक्टर का प्रयोग।

गहन खेती:- गहन या सघन खेती, खाद्यान्न उत्पादन की वह विधि है। जिसमें सीमित भूमि पर अधिकाधिक श्रम और पूँजी की इकाईयाँ लगाकर उत्पादन बढाया जाता है।

14.7 अभ्यास प्रश्न:-

सही उत्तर का चुनाव करो:-

1. उत्पादन फलन है -

(क) लागतों का (ख) उत्पत्ति के साधनों का

(ग) लाभ का (घ) कीमतों का

2. परिवर्तनशील अनुपातों का नियम कहलाता है -

(क) दीर्घकालीन उत्पादन करना (ख) अल्पकालीन उत्पादन फलन

(ग) पैमाने के प्रतिफल (घ) कोई नहीं।

3. जब औसत उत्पादन अधिकतम होता है तो -

(क) सीमान्त उत्पादन बढता है।

(ख) कुल उत्पादन गिरता है।

(ग) सीमान्त उत्पादन के बराबर होता है।

(घ) सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक होता है।

4. प्रो0 मार्शल के अनुसार उत्पादन ह्रास नियम लागू होता है -

(क) विनिर्माण उद्योग में (ख) कृषि में

(ग) कारखानों में (घ) सभी उद्योगों में

5. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की प्रथम अवस्था वहाँ समाप्त होती है जहाँ -

(क) MP अधिकतम् होता है (ख) TP अधिकतम् होता है

(ग) APअधिकतम् होता है (घ) उपर्युक्त सभी

6. ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था में -

(क) स्थिर साधन की MP ऋणात्मक होती है।

(ख) परिवर्तनशील साधन की MP ऋणात्मक होती है।

(ग) क और ख (घ) कोई नहीं।

7. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीसरी अवस्था में -

(क) APऋणात्मक होता है। (ख) MP ऋणात्मक होता है।

(ग) TP गिरता है। (घ) ख और ग

8. प्रथम अवस्था में मोड बिन्दु के बाद TP वक X अक्ष के प्रति -

(क) उन्नतोदर (उन्तत) (ख) अवनतोदर (अवतल)

(ग) क और ख (घ) कोई नहीं

9. परिवर्तनशील अनुपातों का नियम प्रदर्शित करता है:-

(क) बढ़ते प्रतिफल (ख) स्थिर प्रतिफल

(ग) घटते प्रतिफल (घ) उपर्युक्त सभी

उत्तर -(1)(ख) (2)(ख) (3)(ग) (4)(ख) (5)(ग) (6)(ख) (7)(घ) (8)(ख) (9)(घ)

14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ:-

आहूजा, एच0 एल0, (2003),उच्चतर आर्थिक सिद्धान्तः व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण ; एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।

झिंगन, एम0 एल0 (2007), व्याष्टि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, दिल्ली।

जैन, के0 पी0 (2005) माइक्रो अर्थशास्त्र, नवयुग साहित्य सदन, आगरा।

सिंह, एस0 पी0 (2001) माइक्रो अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।

सेठ, एम0 एल0 (2000-01) उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।

14.9 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Koutsoyinuis.A. (1979), *Modern Microeconomics*, (2nd Edition), Macmillian
- Press, London.
- Ahuja,H.L. ((2010),*Principles of Micro Economics* , S&Chand Publishing House .
- Peterson, L. and Jain (2006), *Managerial Economics*, 4th edition, Pearson Education.
- Colander, D, C (2008), *Economics*, McGraw Hill Education.

14.10 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. परिवर्तनशील अनुपात के नियम की विभिन्न अवस्थाएं कौन-कौन सी है ? एक रेखाचित्र की सहायता से समझाए। इन अवस्थाओं के लागू होने के कारण बताइए।

2. उत्पादन फलन क्या है ? जब एक साधन के अनुपात में वृद्धि की जाती है, तो एक बिन्दु के बाद साधन की उत्पादकता कम हो जाती है, इस कथन की विवेचना कीजियें।

3. उत्पत्ति ह्रास नियम परिवर्तनशील अनुपातों के नियम से किस प्रकार सम्बन्धित है ? व्याख्या और इसके महत्व पर प्रकाश डालियें।

इकाई 15 उत्पादन का सिद्धान्तः दो परिवर्तनशील साधन में उत्पादन

इकाई संरचना

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 उत्पादन का सिद्धान्त: दो परिवर्तनशील साधन में उत्पादन
15.4 पैमाने के प्रतिफल
15.5 कॉब-डगलस उत्पादन फलन
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 अभ्यास प्रश्न
15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
15.10 सहायक पाठ्य सामग्री
15.11 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र के उत्पादन के सिद्धान्त और लागत एवं आगम वक्र खण्ड की यह चौथी इकाई है। इससे पहले की इकाई में आप एक परिवर्तनशील साधन का उत्पादन पर जो वाले प्रभाव पड़ता है। उसकी जानकारी कर चुके है।

प्रस्तुत इकाई में दो परिवर्तनशील साधनों का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण सम-उत्पादन वक्रों की सहायता से किया जायेगा। साथ ही सम-उत्पादन वक्रों की विशेषताओं, तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर सहित कॉब डगलस उत्पादन फलन की जानकारी दी जायेगी।

इसके अध्ययन से आपको समोत्पादन वक्र, पैमाने के प्रतिफल तथा कॉब डगलस उत्पादन फलन की विस्तृत जानकारी हो जायेगी।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप:-

1. समोत्पाद वक्र तथा उसकी विशेषताओं से अवगत हो जायेंगे।

2. तकनीकी प्रतिस्थापना की सीमान्त दर को जान सकेगें।

3. पैमाने के प्रतिफल की तीन अवस्थाओं को समझ सकेगें।

4. कॉब - डगलस के उत्पादन फलन से अवगत हो जायेंगे।

15.3 उत्पादन का सिद्धान्त: दो परिवर्तनशील साधन में उत्पादन

उपादन में वृद्धि हेतु जब उत्पादन के दो साधन परिवर्तनशील होते है। इसके अध्ययन के लिए समोत्पादन वक्र तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार दो परिवर्तनशील साधनों वाले उत्पादन फलन के समोत्पादन वक्रों के एक परिवार द्वारा दिखाया जा सकता है। समोत्पादन वक्र मांग सिद्धान्त के उदासीन या अनधिमान वक्र की तरह ही है। सम-उत्पादन या समोत्पादन वक्र विश्लेषण का विकास करने तथा उसका उत्पादन के क्षेत्र में प्रयोग करने का श्रेय प्रो0 फ्रिश, स्नीडर, हिक्स, कार्लसनं तथा बोल्डिंग को दिया जाता है।

समोत्पादन वक्र का अर्थ -जिस प्रकार मांग सिद्धान्त का तटस्थता या उदासीन वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है, जिससे उपभोक्ता को एक समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है उसी प्रकार समोत्पादन वक्र उत्पत्ति के दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है, जिससे

उत्पादक को एक समान उत्पादन की प्राप्ति होती है। समान उत्पादन प्राप्ति के कारण उत्पादक संयोगों के चुनाव के प्रति उदासीन रहता है इसलिए समोत्पादन वक्रों को उत्पादन तटस्था वक्र कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे Iso-Product Curves तथा Equal Product Curves भी कहते है।

प्रो0 कोहन एवं सीयर्ट के अनुसार - एक सम उत्पाद वक्र वह वक्र होता है जिस पर उत्पादन की अधिकतम प्राप्त दर स्थिर होती है।

प्रो0 कीरस्टेड के अनुसार - 'सम - उत्पाद' वक्र दो साधनों के उन सभी सम्भावी संयोगों को व्यक्त करते है जिनसे एक-समान कुल उत्पादन प्राप्त होता है।

समोत्पादन वक्रों की धारणा को तालिका (15.1)द्वारा भली भति समझा जा सकता हैS। यह मान लिया गया है कि किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिए दो साधनों X साधन (श्रम) तथा Y साधन (पूॅजी) का प्रयोग होता है। जो वस्तु की 100 इकाईयों का उत्पादन करती है। प्रारम्भ में संयोग A, जो श्रम की 1 तथा पूॅजी की 17 इकाईयों से बना है संयोग Aके द्वारा वस्तु की 100 इकाईयाँ उत्पादित होती है। तालिक के संयोग B, C, D, E तथा F भी समान उत्पादन अर्थात् 100 इकाइयाँ उत्पादित करते है।

तालिका 15.1 समोत्पादन तालिका

संयोग	X साधन (श्रम)	Y साधन (पूॅजी)	कुल उत्पादन
A	**1**	**17**	**1 x + 17 y = 100**
B	**2**	**12**	**2 x + 12 y = 100**
C	**3**	**8**	**3 x + 8 y = 100**
D	**4**	**5**	**4 x + 5 y = 100**
E	**5**	**3**	**5 x + 3 y = 100**
F	**6**	**2**	**6 x + 2 y = 100**

यदि इन दोनों साधनों के सभी संयोगों को रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया जाता है तो जिस वक्र की रचना होती है। उसे सम-उत्पादन वक्र कहते है। चित्र (15.1) में एक सम-उत्पादन वक्र (IP) है। जो A, B, C, D, E तथा F संयोगों से मिल कर बना है। जो एक समान कुल उत्पादन को प्रदर्शित करते है।

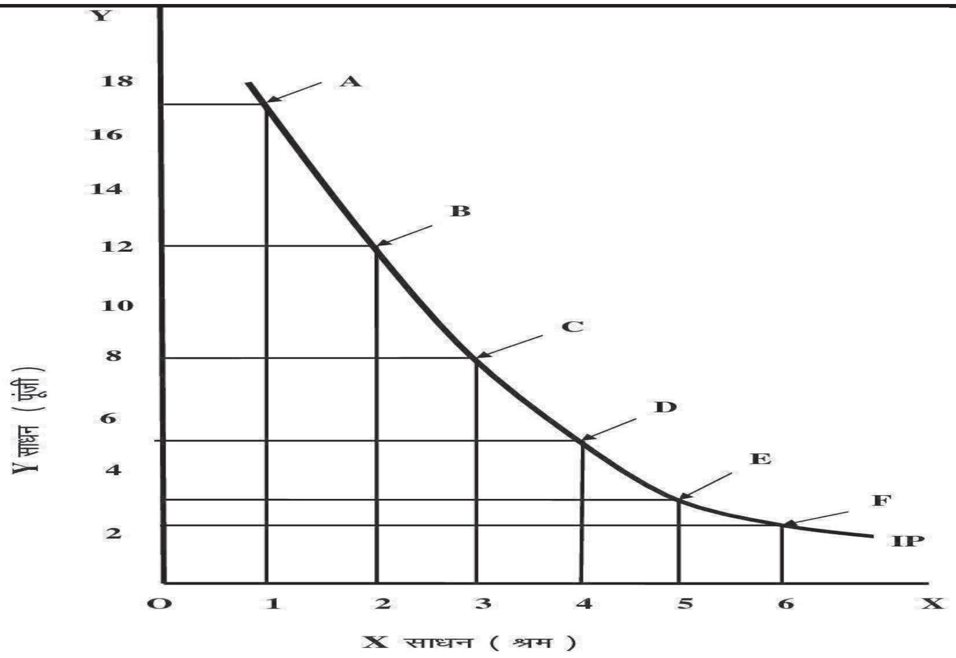

चित्र (15.1) सम-उत्पादन वक्र

जब एक चित्र में एक से अधिक समोत्पादन वक्रों को प्रदर्शित किया जाता है, तो उसे समोत्पादन मानचित्र कहते है। जो दो साधनों के अलग -अलग अनुपातों के संयोग से प्राप्त उत्पादन को प्रदर्शित करते है। यह मानचित्र इस बात को स्पष्ट करता है कि दांये ओर का समोत्पादन वक्र बांये ओर के वक्र की तुलना में उत्पादन के ऊँचे स्तर को बताता है। जैसे

चित्र(15.2) में प्रदर्शित किया गया है। जिसमें तीन समोत्पादन वक्र IP_1, IP_2, तथा IP_3 दर्शायें गये है जो क्रमशः 100, 150 तथा 200 इकाइयों के उत्पादन को दर्शाते है।

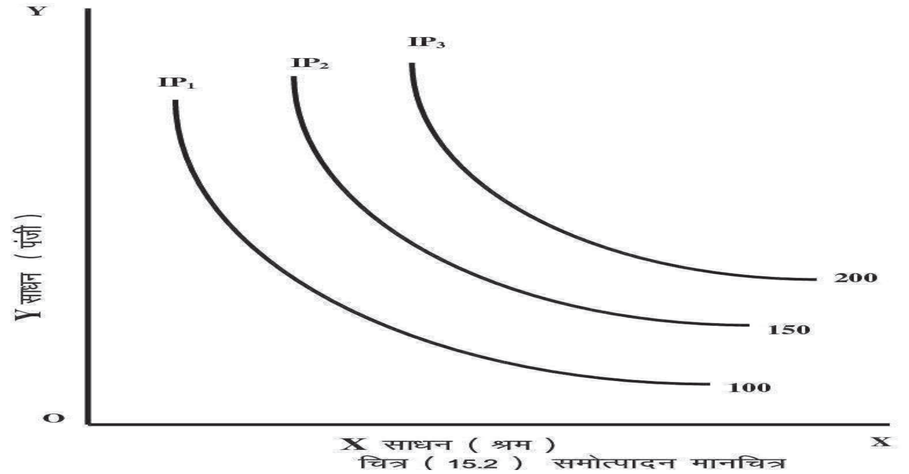

चित्र (15.2) समोत्पादन मानचित्र

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दरः-आधुनिक उत्पादन सिद्धान्त में तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की महत्वपूर्ण भूमिका है। तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का नियम (MRTS)

उत्पादन फलन पर आधारित है। जहाँ दो साधनों को परिवर्तीय अनुपातों में इस ढंग से प्रतिस्थापित किया जा सकता है कि उत्पादन की समान मात्रा का उत्पादन किया

जा सकें। दो साधनों Y (पूँजी) तथा X (श्रम) में तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS $_{XY}$) वह दर है जिस का उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन किये बिना वस्तु उत्पादन में Y साधन के स्थान पर X साधन को प्रतिस्थापित किया जा सकता है। जिससे उत्पादन की मात्र समान बनी रहती है। इसे तालिका (15.2) से समझा जा सकता है।

तालिका (15.2) तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर तालिका

संयोग	X साधन (श्रम)	Y साधन (पूँजी)	कुल उत्पादन	**MRTS xy**
A	**1**	**17**	**1 x + 17 y = 100**	**-**
B	**2**	**12**	**2 x + 12 y = 100**	**5:1**
C	**3**	**8**	**3 x + 8 y = 100**	**4:1**
D	**4**	**5**	**4 x + 5 y = 100**	**3:1**
E	**5**	**3**	**5 x + 3 y = 100**	**2:1**
F	**6**	**2**	**6 x + 2 y = 100**	**1:1**

उत्पादन का कोई भी संयोग क्यों न लिया जायें, उत्पादन की मात्रा 100 इकाईयाँ ही बनी रहेगी। ऐसे में तकनीकी प्रतिस्थापना की सीमान्त दर (MRTS) संयोग ठ के लिए 5:1 है। इसी प्रकार ब्ए क्ए म् तथा थ् के लिए 4:1, 3:1, 2:1 तथा 1:1 है।

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS)को निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है -

X के लिए Y की तकनीकी प्रतिस्थापना की सीमान्त दर =

$$\frac{\text{Y साधन की मात्रा में परिवर्तन (कमी)}}{\text{X साधन की मात्रा में परिवर्तन (वृद्धि)}}$$

अथवा

$$\text{MRTS xy} = \frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

जहांΔ = परिवर्तन की दर

जैसे - जैसे उत्पादक द्वारा साधन Y के स्थान पर साधन X का अधिक प्रयोग किया जाता। वैसे-वैसे Y साधन की इकाईयों की संख्या, जिसके स्थान पर X साधन की एक इकाई का प्रयोग हो सकता है, घटती जाती है। इसे ही घटती तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का नियम कहते है। तालिका (15.2) से स्पष्ट है। कि X साधन (श्रम) की प्रत्येक अगली इकाई के लिए Y साधन पूँजी की पहले की तुलना में उत्पादक कम मात्रा का त्याग करता है।

समोत्पादन वक्रों की मान्यताएं -

1. उत्पादन हेतु केवल दो साधनों श्रम तथा पूँजी का प्रयोग किया जाता है।

2. उत्पादन की तकनीक स्थिर तथा दी हुई है।

3. उत्पादन के साधनों को छोटी-छोटी इकाईयों में बांटा जा सकता है।

4. उत्पादन के साधनों का प्रयोग कुशलता से किया जाता है।

समोत्पादन वक्रों की विशेषतायें - समोत्पादन वक्र की मान्यताओं के आधार पर इसकी अनेक विशेषताएं एवं लक्षण है:-

1. समोत्पादन वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है - समोत्पाद वक्र दायीं ओरनीचे झुका अर्थात ऋणात्मक ढाल वाला होता है। क्योंकि यदि साधन X श्रम की मात्रा बढ़ाई जाती है तो उत्पादन मात्रा स्थिर रखने के लिए Y साधन पूँजी की मात्रा घटानी पड़ती है। जैसा कि चित्र (15.3) में स्पष्ट होता है कि 100 इकाई का उत्पादन करने के लिए जब X साधन में MM_1 मात्रा की वृद्धि की जाती है तो Y साधन में न NN_1 मात्रा की कमी करनी पड़ती है। जिससे Y साधन में की गई कमी को X साधन की मात्रा में वृद्धि करके पूरा किया जाता है, जिससे उत्पादन की मात्रा पहले के समान बनी रहें।

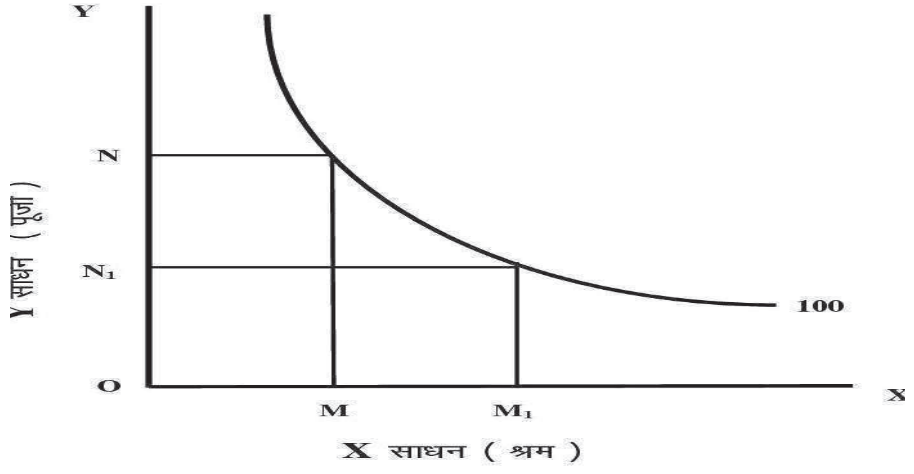

चित्र (15.3) समोत्पादन वक्र का ऋणात्मक ढाल

2. बायीं ओर की तुलना में दायीं ओर का समोत्पादन वक्र अधिक उत्पादन को प्रदर्शित करता है - कोई समोत्पादन वक्र मूल बिन्दु से जितना दूर होता है अर्थात् दायीं ओर हटता जाता है वह उतनी अधिक उत्पादन मात्रा को प्रदर्शित करता है। जैसा चित्र (15.4) में प्रदर्शित किया गया है कि IP_2 IP_1 की तुलना में ऊँचे उत्पादन स्तर को दर्शाता है, क्योंकि IP_1 पर स्थित । बिन्दु श्रम की OM मात्रा तथा पूँजी की ON मात्रा के प्रयोग से 100 इकाइयों के उत्पादन को दर्शाता है। जबकि दायीं ओर स्थित IP_2 का B बिन्दु श्रम की OM1 मात्रा तथ पूँजी की ON मात्रा से 200 इकाईयों के उत्पादन के दर्शाता है, अर्थात् $(ON + OM = 100) < (ON + OM_1 = 200)$ इसलिए सिद्ध हो जाता है कि बायीं ओर की तुलना में दायीं ओर का समोत्पादन वक्र अधिक उत्पादन को प्रदर्शित करता है।

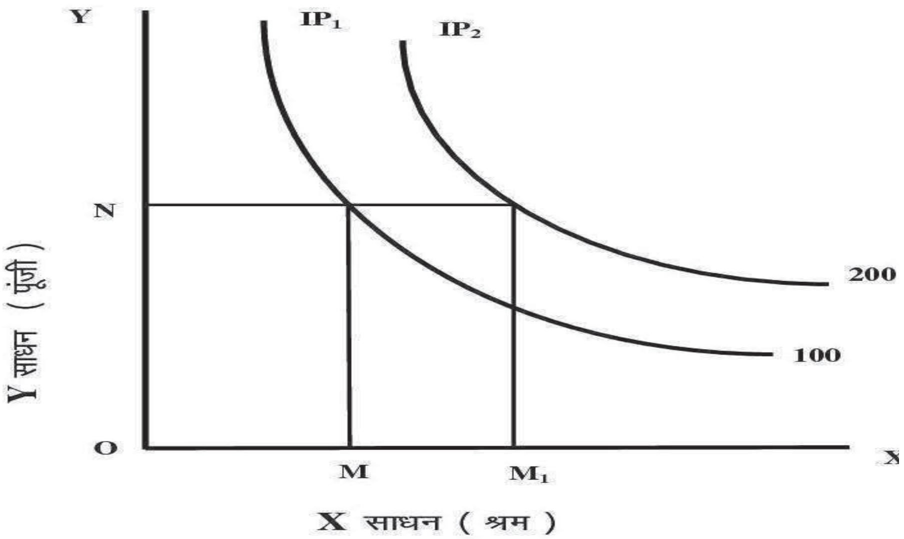

चित्र (15.4) दायीं ओर के समोत्पादन वक्र पर अधिक उत्पादन

3. समोत्पादन वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होता है - दोनों साधनों के बीच की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटने के कारण समोत्पादन वक्र उन्नतोदर होते है। जब पूँजी के स्थान पर श्रम की अधिकाधिक मात्रा का प्रयोग किया जात है तो श्रम के लिए पूँजी की तकनीकी सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती जाती है। जैसे चित्र (15.5) में दर्शाया गया है। 100 इकाईयो का उत्पादन करने के लिएA बिन्दु पर पूंजी की ON तथा श्रम की OM मात्रा का प्रयोग किया जाता है जब उत्पादकA से B, C तथा D बिन्दु की और जाता है तो वह श्रम की अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए पूँजी की उत्तरोत्तर कम इकाईयों का त्याग करता है। अर्थात् श्रम की प्रत्येक अगली इकाई के लिए 'पूँजी की घटती हई मात्रा' $(NN_1 > N_1 N_2 > N_2 N_3)$ से प्रतिस्थापित किया जाता है अर्थात् सीमान्त प्रतिस्थापन की दर घटती जाती है। जिस कारण IP मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होता है।

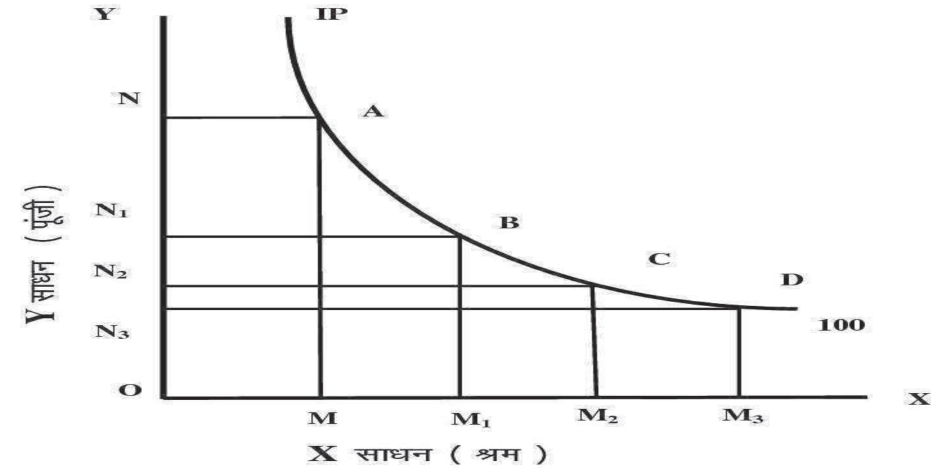

चित्र (15.5) समोत्पादन वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर

4.कोई दो समोत्पादन वक्र एक-दूसरों को काट नहीं सकते - यदि दो समोत्पादन वक्र एक दूसरे को काटते है, तो इसका अभिप्राय है कि साधनों का एक संयोग ऐसा है, जो दोनों समोत्पादन वक्रों पर स्थित है जैसा कि चित्र (15.6) में दिखाया गया है कि IP_1 और IP_2 दो समोत्पादन वक्र जो क्रमशः 100 और 150 इकाइयों के उत्पादन को दर्शाते है जिसमें बिन्दु A = 100 तथा बिन्दु B = 150 इकाइयों के उत्पादन को दर्शाता है। लेकिन C बिन्दु कैसे 100 तथा 150 इकाइयों के उत्पादन के दर्शा सकता है, क्योंकि C बिन्दु जो IP_1 तथा IP_2 पर स्थित है। इसलिए यह सम्भव नहीं है कि IP_1 तथा IP_2 जब अलग -अलग उत्पादन स्तर को दर्शाते है तो इन दोनों पर स्थित कोई एक बिन्दु अर्थात् C बिन्दु समान उत्पादन को दर्शाये। अतः सिद्ध होता है कि कोई दो समोत्पादन वक्र एक-दूसरे को काट नहीं सकते।

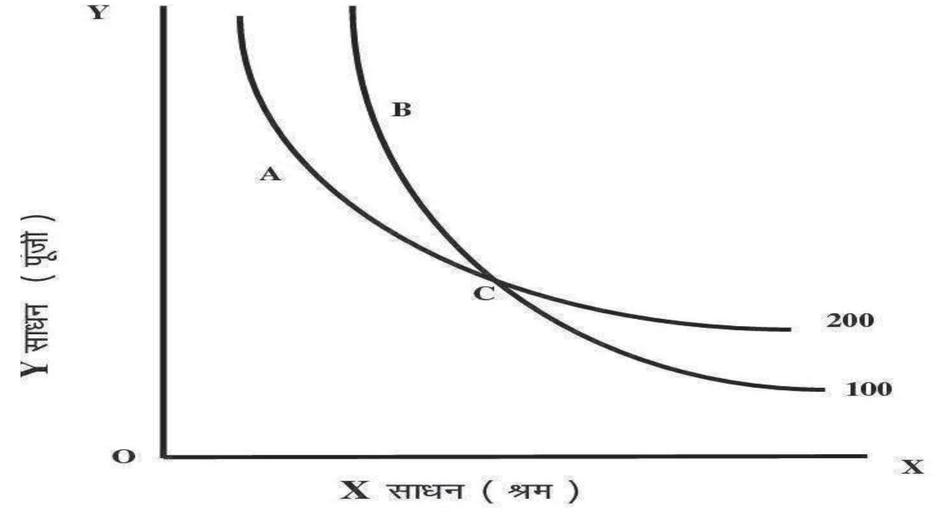

चित्र (15.6) समोत्पादन वक्र एक–दूसरों को काट नहीं सकते

5.कोई भी समोत्पादन वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श नहीं कर सकता- यदि एक समोत्पादन वक्र X दृ अक्ष को स्पर्श करता है, तो इसका अभिप्राय हुआ कि 'X' बिन्दु पर उत्पादित मात्रा केवल श्रम द्वारा उत्पादित की गई। इसी प्रकार Y अक्ष पर स्थित 'Y' बिन्दु पर उत्पादित मात्रा केवल पूँजी द्वारा उत्पादित की गई, जबकि व्यवहार में ऐसा होना सम्भव नहीं है। क्योंकि किसी भी वस्तु के उत्पादन हेतु एक से ज्यादा उत्पादन साधन की आवश्यकता होती है। अतः समोत्पादन वक अक्षों को स्पर्श नहीं कर सकतें। जैसा कि चित्र (15.7) में दिखाया गया है

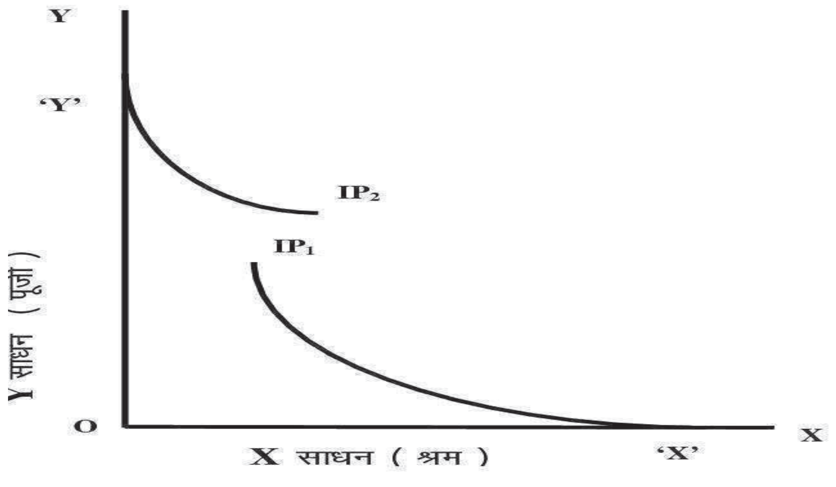

चित्र (15.7) समोत्पादन वक्र अक्ष को स्पर्श नहीं कर सकता

5. समोत्पादन वक्र रिज रेखाओं को अंकित करने में सहायक होते है - समोत्पादन वक्र द्वारा फर्म के लिए उपयुक्त उत्पादन क्षेत्र का सीमांकन किया जा सकता है, अर्थात् उन सीमाओं का निर्धारण किया जा सकता है जिसमें उत्पादन करना फर्म के लिए लाभदायक होगा।

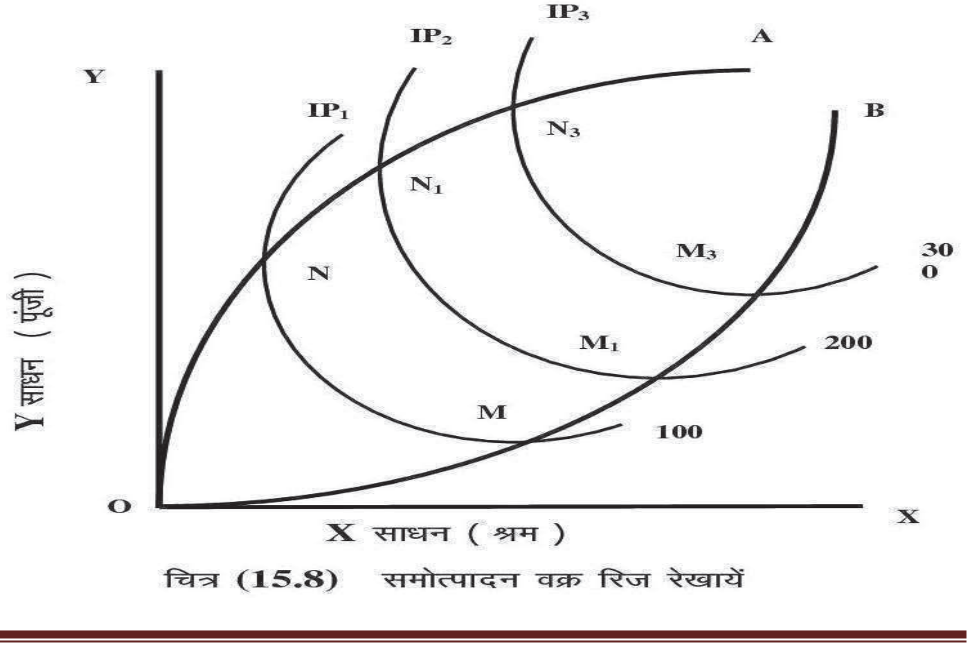

चित्र (15.8) समोत्पादन वक्र रिज रेखायें

जब उत्पादक आवश्यकता से अधिक श्रम या पूँजी या दोनों का प्रयोग करता है तो अन्त में कुल उत्पादन घट जाता है। जिससे समोत्पादन वक का आकार अण्डाकर हो जाता है। इस अण्डाकार वक्र का वह भाग जो मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होता है। वह कूट या रिज़ रेखाओं के बीच में स्थित होता है। वह उत्पादन का मितव्ययी क्षेत्र होता है। जैसा चित्र (15.8) में दर्शाया गया है। OA तथा OB रिज रेखाओं के भीतर का भाग समोत्पादन वक्र के उन्नतोदर हिस्सों के दर्शाता है और एक उत्पादक का उत्पादन क्षेत्र है, क्योंकि इस क्षेत्र में श्रम तथा पूँजी का सीमान्त उत्पादन धनात्मक है।

15.2 पैमाने के प्रतिफल

'पैमाने के अर्थशास्त्र' में केन्द्रीय समस्या 'पैमाने के प्रतिफल' है। पैमाने के प्रतिफल का विचार इस बात का अध्ययन करता है कि यदि सभी साधनों में अनुपातिक परिवर्तन कर दिया जाये तो उत्पादन में किस प्रकार से परिवर्तन होगा। इसमें साधनों की निरपेक्ष मात्राओं में ही परिवर्तन होता है परन्तु उनके आपसी अनुपात में परिवर्तन नहीं होता, इसे पैमाना रेखा द्वारा दर्शाया जाता है। जब एक विशिष्ट पैमाना रेखा पर साधनों की मात्राओं को परिवर्तित किया जाता है तो उत्पादन में जो परिवर्तन होगा। उसे पैमाने के प्रतिफल द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

पैमाने के प्रतिफल के नियमों की व्याख्या समोत्पादन वक्रों द्वारा की जा सकती है कि साधनों में आनुपातिक वृद्धि करने अर्थात पैमाना रेखा पर साधनों की वृद्धि करने पर उत्पादन में क्या परिवर्तन होगा। जब सभी साधनों को समान अनुपात में बढ़ाया जाता है, तो प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा या प्रतिफल की तीन अवस्था प्राप्त हो सकती है जिन्हें समोत्पादन वक्रों की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है -

1. पैमाने के बढ़ते प्रतिफल

2. पैमाने के स्थिर प्रतिफल

3. पैमाने के घटते प्रतिफल

पैमाने के प्रतिफलों को चित्र में एक विस्तार पथ पर उत्पादन के बहु स्तर क्रमिक समोत्पादन वक्रों के बीच अन्तर द्वारा दर्शाया जा सकता है। अर्थात् समोत्पादन वक्र जो उत्पादन के ऐसे स्तर दर्शाते है, जो उत्पादन के किसी आधार स्तर के गुणक है जैसे 100, 200 तथा 300।

1.पैमाने के बढ़ते प्रतिफल - जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में अधिक अनुपात से वृद्धि होती है तो उसे पैमाने के बढ़ते प्रतिफल कहते है। दूसरे शब्दों में पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन में एक समान वृद्धि प्राप्त करने के लिए साधनों की

मात्राओं में क्रमशः कम और कम वृद्धि की आवश्यकता पड़ती है। जैसे-सभी साधनों को 10% बढ़ाया जाये तो उत्पादन 20% बढ़ जाये तो इसे पैमाने के बढ़ते प्रतिफल की अवस्था कहा जाएगा।

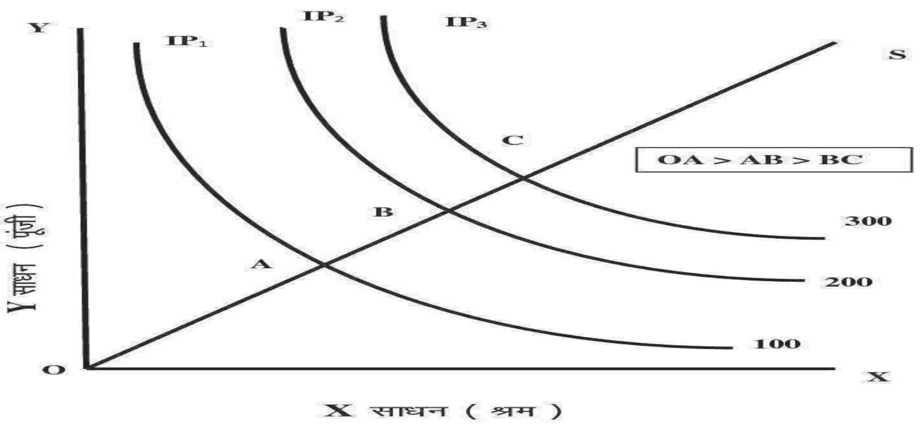

चित्र (15.9) पैमाने के बढ़ते प्रतिफल

चित्र (15.9) में IP_1 IP_2 तथा IP_3 समोत्पादन वक्र है जो क्रमशः 100, 200 तथा 300 उत्पादन की इकाईयों को दर्शाते है। OS रेखा पैमाने की रेखा है जो समोत्पादन वक्रों द्वारा OA, AB, BC भागों में विभाजित होती है। IP_1 IP_2 तथा IP_3 X साधन (श्रम) + Y साधन (पूॅजी) की प्रयुक्त मात्राओं को बताता है। चित्र में स्पष्ट है कि प्रत्येक अXली 100 इकाईयों के लिए पहले की तुलना में कम साधन संयोग [X साधन (श्रम) + Y साधन (पूॅजी)]की आवश्यकता पड़ती है। अर्थात् OA > AB > BC। जैसा चित्र (15.9) में स्पष्ट है कि समोत्पादन वक्र पैमाने की रेखा को टुकड़ों में बांट देते है और जैसे-जैसे हम मूल बिन्दु O से दूर हटते जाते है तो उत्पादन पैमाने के बढ़ते प्रतिफल के अन्तर्गत होता है। क्योंकि समान मात्रा का उत्पादन करने के लिए दोनों साधनों की मात्राओं में क्रमशः कम वृद्धि की आवश्यकता होती है।

2.पैमाने के स्थिर प्रतिफल - जब उत्पादन के सभी साधनों अर्थात पैमाने की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में ठीक उसी अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' कहते है अर्थात् पैमाने के स्थिर प्रतिफल में उत्पादन में समान वृद्धि के लिए साधनों की मात्राओं में समान अर्थात् उसी अनुपात में वृद्धि करनी पड़ती है। जैसे सभी साधनों में 10% वृद्धि करने पर उत्पादन में भी 10% की वृद्धि हो जाती है तो इसे पैमाने के स्थिर प्रतिफल की अवस्था कहा जायेगा।

चित्र (15.10) में IP_1 IP_2 तथा IP_3 समोत्पादन वक्र है जो क्रमशः 100, 200 तथा 300 उत्पादन की इकाईयों को दर्शाते है। वूS रेखा पैमाने की रेखा है जो समोत्पादन वक्रों द्वारा OA, AB, BC भागों में विभाजित होती है IP_1 IP_2 तथा IP_3 X साधन (श्रम) +Y साधन (पूॅजी) की प्रयुक्त मात्राओं को बताता है। चित्र में स्पष्ट है कि प्रत्येक अXली 100 इकाईयों के लिए पहले के समान साधन संयोग [X साधन (श्रम) + Y साधन (पूॅजी)] की आवश्यकता पड़ती है। अर्थात् OA =AB =

BC जैसा चित्र(15.10) में स्पष्ट है कि समोत्पादन वक्र पैमाने की रेखा को टुकड़ों में बांट देते है और जैसे-जैसे हम मूल बिन्दु O से दूर हटते जाते है तो उत्पादन पैमाने के बढ़ते प्रतिफल के अन्तर्गत होता है। क्योंकि समान मात्रा का उत्पादन करने के लिए दोनों साधनों की मात्राओं में क्रमशः समान वृद्धि की आवश्यकता होती है।

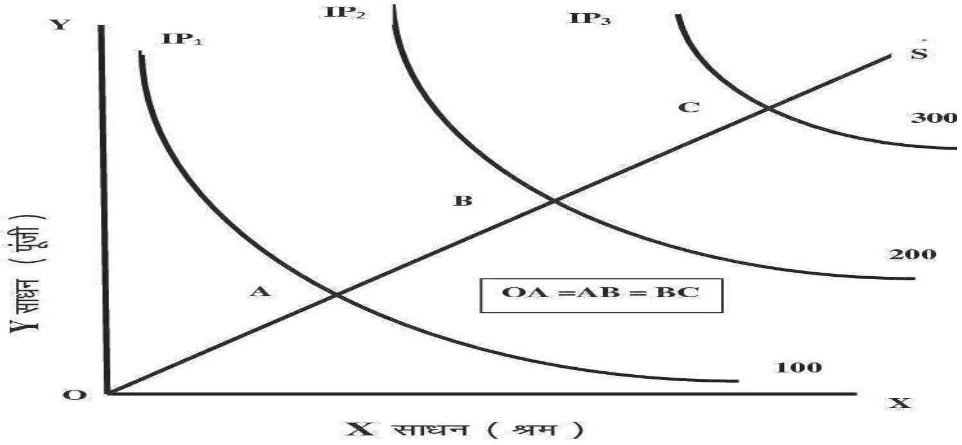

चित्र (15.10) पैमाने के स्थिर प्रतिफल

3.पैमाने के घटते प्रतिफल - जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने से उत्पादन में उससे कम अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे पैमाने के घटते प्रतिफल कहते है। अर्थात् पैमाने के घटते प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन में एक समान वृद्धि करने के लिए साधनों की मात्राओं में क्रमशः अधिक वृद्धि करनी पड़ती है। उदाहरणार्थ - सभी साधनों में 10% वृद्धि करने पर उत्पादन में मात्र 8% ही बढ़े तो इसे पैमाने के घटते प्रतिफल की अवस्था कहा जायेगा।

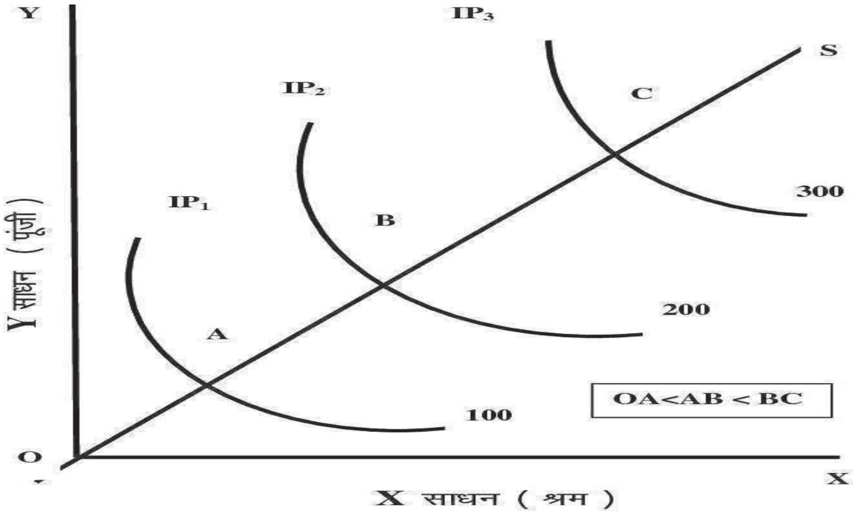

चित्र (15.11) पैमाने के घटते प्रतिफल

चित्र (15.11) में IP_1 IP_2 तथा IP_3 समोत्पादन वक्र है जो क्रमशः 100, 200 तथा 300 उत्पादन की इकाईयों को दर्शाते है। वूS रेखा पैमाने की रेखा है जो समोत्पादन वक्रों द्वारा OA, AB BC भागों में विभाजित होती है। IP_1 IP_2 तथा IP_3 X साधन (श्रम) + Y साधन (पूॅजी) की प्रयुक्त मात्राओं को बताता है। चित्र में स्पष्ट है कि प्रत्येक अXली 100 इकाईयों के लिए पहले की तुलना में अधिक साधन संयोग [X साधन (श्रम) + Y साधन (पूॅजी)] की आवश्यकता पड़ती है। अर्थात् OA < AB < BC जैसा चित्र (15.11) में स्पष्ट है कि समोत्पादन वक्र पैमाने की रेखा को टुकड़ों में बांट देते है और जैसे-जैसे हम मूल बिन्दु O से दूर हटते जाते है तो उत्पादन पैमाने के बढ़ते प्रतिफल के अन्तर्गत होता है। क्योंकि समान मात्रा का उत्पादन करने के लिए दोनों साधनों की मात्राओं में क्रमशः अधिक वृद्धि की आवश्यकता होती है।

पैमाने के प्रतिफल के लागू होने के कारण:- जब उत्पादन के सभी साधनों अर्थात् दो साधनों में वृद्धि की जाती है, तो उसे उत्पादक को पैमाने के बढते, स्थिर तथा घटते प्रतिफल प्राप्त होते है। निम्न कारणों से पैमाने के प्रतिफल की तीनों अवस्थायें लागू होती है:-

1. श्रम-विभाजन एवं विशिष्टिकरण - प्रो0 चैम्बरलिन के अनुसार पैमाने के प्रतिफल का लागू होने का मुख्य कारण श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण है। उत्पादन वृद्धि हेतु जब पैमाने अर्थात् साधनों की मात्रा बढ़ाई जाती है, तो श्रम विभाजन व विशिष्टीकरण सम्भव होता है। जिससे श्रमिकों को योग्तानुसार कार्य मिल ता है और बार-बार एक कार्य करने से उनकी उत्पादकता बढ़ जाती है।

2. आकार की कुशलता - प्रो0 बॉमोल के अनुसार पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल के लागू होने का मुख्य कारण आकार की कुशलता है क्योंकि आकार विस्तार से भी कुशलता बढ़ती है। उदाहरणार्थ किसी पाइप का घेरा अर्थात व्यास दुगना करने पर उससे पहले की तुलना में दुगने से अधिक तेल या पानी निकाला जा सकता है।

3. साधनों की अविभाज्यता - उत्पादन के साधन सामान्यतः अविभाज्य होते है अर्थात् उनका एक निम्नतम आकार होता है। जिससे उन्हें उससे अधिक छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित नहीं किया जा सकता है। जैसे मशीन, प्रबन्धक आदि। अतः प्रारम्भ में पैमाने में वृद्धि करने से ऐसे साधनों की उत्पादकता बढ़ने से पैमाने के बढ़ते प्रतिफल लागू होते है। लेकिन एक सीमा के बाद पैमाने के स्थिर और घटते प्रतिफल लागू होने लगते है।

4. उन्नत मशीनों के प्रयोग की सम्भावना - उत्पादन का पैमाने बढ़ाने पर उन्नत तकनीकी मशीनों का प्रयोग सम्भव होता है क्योंकि अधिक पूॅजी निवेश के कारण उन्नत तकनीक को अपनाना आसान हो जाता है। जिससे उत्पादन में वृद्धि होने लगती है। लेकिन एक सीमा के बाद मशीनों में ह्रास (घिसाई) प्रारम्भ हो जाता है जिससे पैमाने के घटते प्रतिफल लागू होने लगते है।

5. उत्पादन की मिव्ययिताएँ अथवा अमितव्ययिताएँ - जब उत्पादन के पैमाने को बढ़ाया जाता है तो उत्पादक को कुछ आन्तरिक तथ बाह्य बचतें प्राप्त होती है। जिससे प्रति इकाई लागत कम हो जाती है और पैमाने के बढ़ते प्रतिफल की अवस्था में उत्पादन होता हैं। जबकि एक सीमा के बाद भी उत्पादन जारी रखा जायें, तो उत्पादन की अमितव्ययिताओं के कारण पैमाने के घटते प्रतिफल लागू होने लगते है।

15.5 कॉब-डगलस उत्पादन फलन :-

अनेक अर्थशास्त्रियों ने उत्पादन की मात्रा तथा साधनों के भौतिक सम्बन्धों की व्याख्या के लिए सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग करके उत्पादन फलनों की रचना दी है। जिसमें कॉब-डगलस का उत्पादन फलन अधिक महत्वपूर्ण है। इस उत्पादन फलन का प्रतिपादन प्रो0 सी0 डब्ल्यू कॉब तथा पी0 एच0 डगलस द्वारा किया गया था, जिस कारण इसे कॉब-डगलस उत्पादन फलन कहते है। कॉब-डगलस उत्पादन फलन अमरीकी निर्माणकारी उद्योग के आनुभाविक अध्ययन पर आधारित है। यह रेखीय उत्पादन-फलन है, जो निर्माणकारी उद्योग के समस्त उत्पादन के लिए केवल दो साधनों (आग तों) श्रम तथा पूंजी को लेता है। कॉब-डगलस उत्पादन फलन को गणितीय रूप से इस प्रकार व्यक्त किया जाता है।

$$Q = AL^{\alpha} C^{\beta}$$

जहाँ पर

Q	=	विनिर्माण उद्योग की उत्पादन मात्रा
L	=	श्रम की प्रयोग की गई मात्रा
C	=	पूँजी की प्रयोग की गई मात्रा
A α तथा β	=	धनात्मक स्थिर तत्व है

जहाँ $\alpha > 0$ तथा $\beta > 0$ है अर्थात् $(\alpha + \beta = 1)$

समीकरण बताता है कि उत्पादन प्रत्यक्ष रूप से L और C पर निर्भर करता है और उत्पादन का वह भाग जिसकी व्याख्या श्रम व पूंजी के द्वारा नहीं की जा सकती उसे । द्वारा स्पष्ट किया जाता है। जिसे तकनीकी परिवर्तन कहा जाता है। जो उत्पादन फलन कॉब डगलस ने दिया है। उसमें श्रम का हिस्सा 3/4 और पूँजी का भाग 1/4 था। C-D उत्पादन फलन है, पैमाने के स्थिर प्रतिफल का प्रदर्शित करता है। क्योंकि स् और ब् के मूल्यों का जोड़ (3/4 +1/4) एक के बराबर है, अर्थात $(\alpha + \beta = 1)$ कॉब डगलस उत्पादन फलन की विशेषताएँ - कॉब-डगलस उत्पादन फलन जोकि रेखीय समरूप उत्पादन फलन का एक रूप है कि अनेक महत्वपूर्ण विशेषताएँ है -

1. पैमाने के स्थिर प्रतिफल की व्याख्या - अर्थशास्त्री कॉब-डगलस उत्पादन फलन पर अधिक ध्यान इसलिए देने लगे है, कि इसके अनुसार पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते है। किस प्रकार कॉब-डगलस उत्पादन फलन के अनुसार पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते है इसे सिद्ध करने के लिए L और C की मात्राओं को N गुणा करते है। तब बढ़ा हुआ उत्पादन Q* होगा -

$$
\begin{aligned}
Q^* &= A\,(n\,L)^{\alpha}\,(n\,C)^{\beta} \\
&= n^{\alpha+\beta}\,(AL^{\alpha}C^{\beta}) \\
&= n^{\alpha+\beta}\,Q \qquad (Q = AL^{\alpha}C^{\beta}) \\
&= n\,Q \qquad (\alpha+\beta = 1)
\end{aligned}
$$

इस प्रकार उत्पादन Q से बढ़कर Q* हो गया है। जब Lतथा C को n से गुणा किया गया तो उत्पादन भी बढ़ कर n Q हो गया है।

2. साधनों का औसत और सीमांत उत्पाद - कॉब-डगलस उत्पादन फलन में साधनों का औसत और सीमांत उत्पाद इस बात पर निर्भर करता है कि वस्तु उत्पादन हेतु इन साधनों का किस अनुपात में प्रयोग किया जाता है श्रम के MP को कॉब-डगलस उत्पादन फलन में निम्न प्रकार व्युत्पन्न किया जा सकता ळें

$$
\begin{aligned}
MP_L = \frac{\partial Q}{\partial L} &= \alpha\,AL^{\alpha-1}\,C^{\beta} \\
&= \alpha\,(AL^{\alpha}\,C^{\beta})\,L^{-1} \qquad (Q = AL^{\alpha}\,C^{\beta}) \\
&= \alpha\,Q\,L^{-1} \\
&= \alpha\,\frac{Q}{L} \qquad \left(\frac{Q}{L} = AP_L\right) \\
&= \alpha\,(AP_L)
\end{aligned}
$$

जहाँ AP_L श्रम का औसत उत्पाद है। कॉब-डगलस उत्पादन फलन स्थिर मूल्यमान कर चलता है। $AP_L = f\,(C/L)$ इसका मतYब है कि जब तक C/L स्थिर रहता है, तो AP_L भी स्थिर रहता है। चाहे C और L की कितनी भी मात्रा का प्रयोग किया जायें। यही MP_L पर लागू होता है क्योंकि $MP_L = \alpha\,(AP_L) = f\,(C/L)$ है।

3. पूँजी और श्रम के बीच प्रतिस्थापन की सीमान्त दर-कॉब डगलस उत्पादन फलन से MRS_{LC} को व्युत्पन्न किया जा सकता है।

$$MRS_{LC} = \frac{\partial Q / \partial L}{\partial Q / \partial C}$$

$$= \frac{\alpha \, (Q/L)}{\beta \, (Q/C)}$$

$$= \frac{\alpha}{\beta} \cdot \frac{C}{L} \, .$$

4. साधन प्रतिस्थापन की लोच - कॉब डगलस उत्पादन फलन में दो साधनों के बीच तकनीकी प्रतिस्थापन की लोच इकाई अर्थात् एक के बराबर होती है।

तकनीकी प्रतिस्थापन की लोच (es) =

पूॅजी श्रम अनुपात (C/L) में आनुपातिक परिवर्तन

श्रम व पूंजी में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर में आनुपातिक परिवर्तन

अतः साधनों में तकनीकी प्रतिस्थापन की लोच मे es =

$$\frac{d \, (C/L)/ \, (C/L)}{d \, (MRS_{LC})/ \, (MRS_{LC})}$$

$$(MRS_{LC} = \alpha / \beta \, . \; C / L)$$

इसलिए MRS_{LS} के मूल्य को स्थानापन्न करने पर

$$es = \frac{d \, (C/L) \;\; (C/L)}{d \, (\alpha/\beta . \, C/L)/ \, (\alpha/ \, \beta . \, C/L)}$$

क्योंकि α / β एक स्थिर राशि है और इसलिए व्युत्पन्न (अवकYन) को प्रभावित नहीं करता है जिससे

$$es = \frac{d \, (C / L) \, (\alpha / \beta)}{(\alpha/\beta) . \, d \, (C/L)} = 1$$

जब प्रतिस्थापन लोच इकाई है तो उत्पादन फलन पैमाने के स्थिर प्रतिफल का समरूप है।

5. कॉब-डगलस उत्पादन फलन तथा यूलर प्रमेय - कॉब डगलस उत्पादन फलन द्वारा गणित की प्रसिद्ध प्रमेय यूलर प्रमेय को सिद्ध किया जा सकता है। उत्पादन फलन $Q = f(C/L)$ एक कोटि का समरूप है। तो यूलर प्रमेय के अनुसार -

$$Q = L\,MP_L + C\,MP_C$$

$$(MP_L = \partial Q / \partial L) \qquad (MP_C = \partial Q / \partial C)$$

$$Q = (\partial Q / \partial L)L + (\partial Q / \partial C)C$$

जहाँ $\partial Q/\partial L$ श्रम का सीमान्त उत्पाद तथा $\partial Q/\partial C$ पूँजी का सीमान्त उत्पाद है। $\partial Q/\partial C$ C कुल उत्पाद में पूँजी का भाग है और $\partial Q/\partial L$ L श्रम का भाग है।

$$Q = f\,(C.L) = AC^{\alpha} L^{\beta}$$

$$\partial Q / \partial C = A\alpha\, C^{\alpha-1} L^{\beta}$$

$$\partial Q / \partial L = AC^{\alpha} \beta\, L^{\beta-1}$$

$$(\partial Q / \partial C) + (\partial Q / \partial L)\, L = C(A\,\alpha\, C^{\alpha-1} L^{\beta}) = L(A\, C^{\alpha} \beta\, L^{\beta-1})$$

$$= A\,\alpha\, C^{\alpha} L^{\beta} = A\, C^{\alpha} \beta\, L^{\beta}$$

$$= AC^{\alpha} L^{\beta} (\alpha + \beta)$$

$$= Q(\alpha+\beta) \qquad (Q = AC^{\alpha} L^{\beta})$$

इसलिए

$$(\partial Q / \partial L)L + (\partial Q / \partial C)C = (\alpha+\beta)\, Q$$

क्योंकि C-D उत्पादन फलन $\alpha+\beta=1$ है। सभी साधनों का प्रतिफल $(\alpha+\beta)\, Q = Q$ होने पर कुल उत्पादन, पूरी तरह से प्रयोग में आ जाता है।

कॉब डगलस उत्पादन फलन की आलोचना - यद्यपि कॉब-डगलस उत्पादन फलन का उत्पादन के क्षेत्र में एक अग्रणी स्थान है। तब भी कुछ विचारकों जैसे एच0 बी0 चैनरी, बी0 एस0 मिन्हास, के0 जे0 एरो तथा आर0 एम0 सोलो आदि द्वारा इसकी आलोचना की गयी है -

1. कॉब डगलस उत्पादन फलन उत्पादन के केवल दो साधन श्रम तथा पूंजी को लेकर चलता है। जबकि वास्तविक उत्पादन प्रक्रिया में अन्य साधनों का भी महत्वपूर्ण योग दान होता है। जिन का इस उत्पादन फलन में समावेश नहीं किया गया है।

2. यह उत्पादन फलन श्रम व पूँजी की समस्त इकाईयों को समरूप व सजातीय मानता है जबकि वास्तव में श्रम की सभी इकाइयाँ समान रूप में कार्यकुशल नहीं होती है।

3. यह उत्पादन फलन 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' की स्थिति सम्बन्धी मान्यता पर आधारित है। जबकि पैमाने के स्थिर प्रतिफल वास्तविक नहीं है, जोकि व्यवहार में नहीं पायी जाती अल्पकाल में तो कुछ समय के लिए इस स्थित सम्भव भी है। लेकिन दीर्घकाल में यह स्थिति का बना रहना बहुत कठिन है।

4. यह उत्पादन फलन बाजार में पूर्ण-प्रतियोगिता की मान्यता को स्वीकार करता है, जबकि व्यवहार में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता ही ज्यादा पायी जाती है।

5. यह उत्पादन फलन में पूँजी के माप की समस्या उत्पन्न होती है, क्योंकि यह केवल उत्पादन के लिए उपलब्ध पूँजी की मात्रा को लेता हैं परन्तु उपलब्ध पूँजी का पूर्ण उपयोग केवल पूर्ण रोजगार की अवधि में ही हो सकता ह, लेकिन अर्थव्यवस्था अल्प रोजगार की स्थिति में होती है।

6. कॉब डगलस उत्पादन फलन साधनों की प्रतिस्थापना की मान्यता पर आधारित है और साधनों की पूरकता को शामिल नहीं करता। जो अल्पकाल से सम्बन्धित हैं।यह फलन दीर्घकाल के लिए उपयुक्त है। परन्तु कॉब डगलस उत्पादन फलन स्वयं ही समय तत्व को नहीं लेता है। जो इस फलन की सबसे बड़ी कमी है।

कॉब डगलस उत्पादन फलन का प्रयोग अर्थशास्त्रियों द्वारा कुल उत्पादन में श्रम व पूंजी के सापेक्ष भागों को निर्धारित करने के लिए किया जाता है। यूलर प्रमेय को भी इससे प्रमाणित किया जा सकता है। अर्थशास्त्रियों ने इस फलन को दो से अधिक चरो या साधनों पर भी लागू करने का प्रयास किया है।

15.6 सारांश

उपादन में वृद्धि हेतु जब उत्पादन के दो साधन परिवर्तनशील होते है। इसके अध्ययन के लिए समोत्पादन वक्र तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। एक समोत्पादन वक्र उत्पत्ति के दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है, जिससे उत्पादक को एक समान उत्पादन की प्राप्ती प्राप्ति होती है। तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटने के कारण समोत्पादन वक्र उन्नतोदर होते है। समोत्पादन वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है, बायीं ओर की तुलना में दायीं ओर का समोत्पादन

वक्र अधिक उत्पादन को प्रदर्शित करता है ,समोत्पादन वक्र रिज रेखाओं को अंकित करने में सहायक होते है।पैमाने के प्रतिफल के नियमों की व्याख्या समोत्पादन वक्रों द्वारा की जा सकती है समोत्पादन वक्रों की सहायता से पैमाने के बढ़ते प्रतिफल, पैमाने के स्थिर प्रतिफल तथा पैमाने के घटते प्रतिफल को स्पष्ट किया जा सकता है।जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में अधिक अनुपात से वृद्धि होती है तो उसे पैमाने के बढ़ते प्रतिफल कहते है। जब उत्पादन के सभी साधनों अर्थात पैमाने की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में ठीक उसी अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' कहते है जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने से उत्पादन में उससे कम अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे पैमाने के घटते प्रतिफल कहते है।श्रम-विभाजन एवं विशिष्टिकरणआकार की कुशलता, साधनों की अविभाज्यता, उत्पादन की मिव्ययिताएँ अथवा अमितव्ययिताएँ, तथा उन्नत मशीनों के प्रयोग की सम्भावना के कारणों से पैमाने के प्रतिफल की तीनों अवस्थायें लागू होती है

कॉब-डगलस उत्पादन फलन अमरीकी निर्माणकारी उद्योग के आनुभाविक अध्ययन पर आधारित है। इस उत्पादन फलन का प्रतिपादन प्रो0 सी0 डब्ल्यू कॉब तथा पी0 एच0 डगलस द्वारा किया गया था, जिस कारण इसे कॉब-डगलस उत्पादन फलन कहते है।यह रेखीय उत्पादन-फलन है, जो निर्माणकारी उद्योग के समस्त उत्पादन के लिए केवल दो साधनों (आगतों) श्रम तथा पूंजी को लेता है।पूॅजी और श्रम के बीच प्रतिस्थापन की सीमान्त दर,साधनों का औसत और सीमांत उत्पाद, पैमाने के स्थिर प्रतिफल की व्याख्या ,साधन प्रतिस्थापन की लोच तथाकॉब-डगलस उत्पादन फलन तथा यूलर प्रमेय को कॉब डगलस उत्पादन फलन द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।

यद्यपि कॉब-डगलस उत्पादन फलन का उत्पादन के क्षेत्र में एक अग्रणी स्थान है। तब भी कुछ विचारकों जैसे एच0 बी0 चैनरी, बी0 एस0 मिन्हास, के0 जे0 एरो तथा आर0 एम0 सोलो आदि द्वारा इसकी आलोचना की गयी है कॉब डगलस उत्पादन फलन का प्रयोग अर्थशास्त्रियों द्वारा कुल उत्पादन में श्रम व पूंजी के सापेक्ष भागों को निर्धारित करने के लिए किया जाता है। अर्थशास्त्रियों ने इस फलन को दो से अधिक चरो या साधनों पर भी लागू करने का प्रयास किया है।

15.7 शब्दावली:-

1. समोत्पादन - समान उत्पादन
2. प्रतिस्थापन- स्थानापन्नता अर्थात एक साधन के स्थान पर दूसरे के प्रतिस्थापित या प्रयोग करना।
3. अविभाज्यता - ऐसा साधन जिसे छोटे-छोटे भाग में न बांटा जान सके।
6. साधनों की पूरकता - ऐसे साधन जो एक दूसरे के पूरक हो अर्थात् एक के साथ दूसरा का प्रयोग आवश्यक हो जैसे कार के साथ पेट्रोल, मशीन के साथ बिजली।

7. श्रम विभाजन - जब श्रमिकों के बीच उनकी रूचि और योग्यता के अनुसार कार्य विभाजित किया जाता है।

15.8 अभ्यास प्रश्न:-

रिक्त स्थान भरों:-

1. समोत्पादन वक्र उत्पत्ति के दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है, जिससे उत्पादक को............. उत्पादन की प्राप्ती होती है।
2. जब एक चित्र में एक से अधिक समोत्पादन वक्रों को प्रदर्शित किया जाता है, तो उसे.........कहते है।
3. तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटने के कारण समोत्पादन वक्र .... होते है।
4. समोत्पादन वक्र का ढाल .... होता है।
5. बायीं ओर की तुलना में दायीं ओर का समोत्पादन वक्र....... को प्रदर्शित करता है।
6. कोई दो समोत्पादन वक्र एक-दूसरों को काट............. सकते।
7. कोई भी समोत्पादन वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श .... कर सकता।
8. पैमाने के प्रतिफल के नियमों की व्याख्या............. द्वारा की जा सकती है।
9. जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में अधिक अनुपात से वृद्धि होती है तो उसे.................. कहते है।
10. जब उत्पादन के सभी साधनों अर्थात पैमाने की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में ठीक उसी अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे .... कहते है।
11. जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने से उत्पादन में उससे कम अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे.................. कहते है।
12. प्रो0 चैम्बरलिन के अनुसार पैमाने के प्रतिफल का लागू होने का मुख्य कारण.................. है।
13. प्रो0.................. के अनुसार पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल के लागू होने का मुख्य कारण आकार की कुशलता है।
14. कॉब-डगलस का उत्पादन फलन प्रतिपादन .... द्वारा किया गया था।
15. कॉब-डगलस उत्पादन फलन अमरीकी ......उद्योग के आनुभाविक अध्ययन पर आधारित है।
16. यह .... उत्पादन-फलन है, जो निर्माणकारी उद्योग के समस्त उत्पादन के लिए केवल दो साधनों (आग तों).................. को लेता है।
17. कॉब-डगलस उत्पादन फलन को गणितीय रूप से .... इस प्रकार व्यक्त किया जाता है।
18. पैमाने के .... प्रतिफल की व्याख्या कॉब-डगलस उत्पादन फलन सेकी जा सकता है।

19. कॉब डगलस उत्पादन फलन द्वारा गणित की प्रसिद्ध प्रमेय .... को सिद्ध किया जा सकता है।

उत्तर - (1) एक समान (2) समोत्पादन मानचित्र (3) उन्नतोदर(ब्वदअमX) (4) ऋणात्मक (5) अधिक उत्पादन (6) नहीं (7) नहीं (8) समोत्पादन वक्रों (9) पैमाने के बढ़ते प्रतिफल (10) 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' (11) पैमाने के घटते प्रतिफल (12) श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण (13) प्रो0 बॉमोल् (14) प्रो0 सी0 डब्लयू कॉब तथा पी0 एच0 डगलस (15) निर्माणकारी (16) रेखीय, श्रम तथा पूंजी (17) $Q = AL^{\alpha} C^{\beta}$(18) स्थिर प्रतिफल (19) यूलर प्रमेय ।

15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ:-

1. आहूजा, एच0 एल0, (2003),उच्चतर आर्थिक सिद्धान्तः व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण ; एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
2. झिंगन, एम0 एल0 (2007), व्याष्टि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, दिल्ली।
3. जैन, के0 पी0 (2005) माइक्रो अर्थशास्त्र, नवयुग साहित्य सदन, आग रा।
4. सिंह, एस0 पी0 (2001) माइक्रो अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
5. सेठ, एम0 एल0 (2000-01) उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।

15.10 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Koutsoyinuis.A. (1979), *Modern Microeconomics*, (2nd Edition), Macmillian Press, London.
- Ahuja,H.L. ((2010),*Principles of Micro Economics* , S&Chand Publishing House .
- Peterson, L. and Jain (2006), *Managerial Economics*, 4th edition, Pearson Education.
- Colander, D, C (2008), *Economics*, McGraw Hill Education.

15.11 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. समोत्पादन वक्र से क्या अभिप्राय हैं ? इनकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. पैमाने के प्रतिफल की विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या करों। पैमाने के प्रतिफल के लागू होने के कारण बताइए।
3. कॉब-डगलस उत्पादन फलन की आलोचनात्मक व्याख्या करों।

इकाई 16 अनुकुलतम साधन संयोग

इकाई संरचना

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 अनुकुल तम् साधन संयोग
16.4 सारांश
16.5 शब्दावली
16.6 अभ्यास प्रश्न
16.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
16.8 सहायक पाठ्य सामग्री
19.9 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना:-

व्यष्टि अर्थशास्त्र के परिचय से सम्बन्धित खण्ड चार की यह पंाचवी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन से आप समोत्पादन वक्रो तथ पैमाने के प्रतिफल की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुकें है।

इस इकाई में समोत्पादन वक्र और समलागत रेखा द्वारा उत्पादक के अनुकुल तम साधन संयोग की चित्र द्वारा व्याख्या की जायेगी तथा विस्तार पथ सहित कीमत प्रभाव पर प्रकाश डाला जाएगा।

इसके अध्ययन के बाद, आप उत्पादक के संतुलन को समझ सकेंगे।

16.2 उद्देश्य -

इस इकाई के अध्ययन से आप:-

- उत्पादक के अनुकूलतम साधन संयोग को समझ जायेंगे।
- उत्पादक के विस्तार पथ से अवगत हो जायेंगे।
- साधन कीमत के प्रभाव को जान जायेंगे।

16.3 अनुकूलतम् साधन संयोग

एक उद्यमकर्त्ता को उत्पादन कार्य के लिए एक महत्वपूर्ण निर्णय करना होता हैS कि वह साधनों के किन संयोगों को चुनें, जिससे अधिकतम् लाभ या उत्पादन की प्राप्ति हो। अधिकतम् लाभ प्राप्त करने के लिए उत्पादक वस्तु की एक दी हुई विशेष मात्रा को न्यूनतम लागत पर उत्पादित करने का प्रयत्न करता है अर्थात् कुल व्यय की एक दी हुई राशि से वह वस्तु का अधिकतम् उत्पादन प्राप्त करने का प्रयास करेगा। वस्तु की एक निश्चित मात्रा का उत्पादन करने के लिए साधनों के विशेष संयोग का

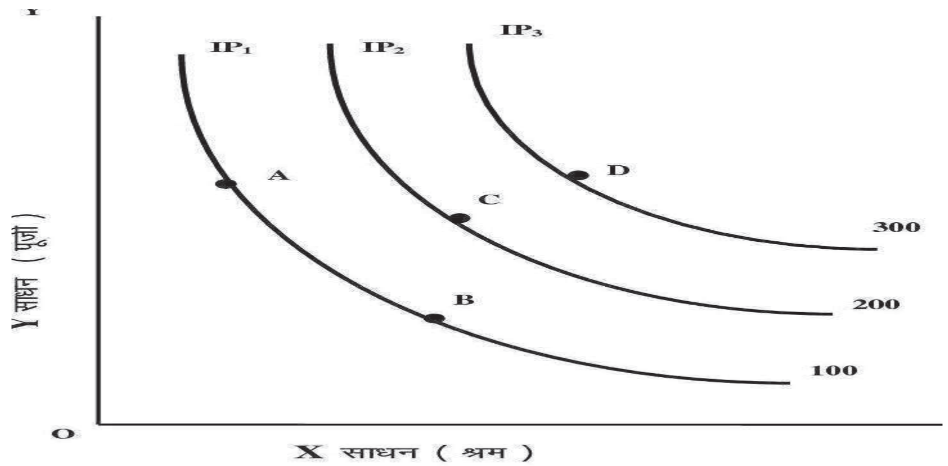

चित्र (16.1) समोत्पादन मानचित्र

चुनाव दो बातों पर निर्भर करता है - एक वस्तु के उत्पादन के लिए उपलब्ध तकनीकी सम्भावनाएँ अर्थात् समोत्पादन वक्रों का मानचित्र दूसरे किसी वस्तु विशेष में प्रयोग होने वाले विभिन्न साधनों की कीमत अर्थात् सम लागत रेखा या साधन लागत रेखा पर।

समोत्पादन मानचित्र:- जब उत्पादन के विभिन्न स्तरों के दर्शाने वाले विभिन्न समोत्पादन वक्रों को एक ही चित्र में दर्शाया जाता है तो उस चित्र को समोत्पादन मानचित्र कहते है। चित्र (16.1) में 3 समोत्पादन वक्रों को लेकर एक मानचित्र तैयार किया गया है।

समोत्पादन मानचित्र के सम्बन्ध में तीन बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है -

1. किसी एक समोत्पादन वक्र पर स्थित सभी बिन्दु समान उत्पादन प्रदान करते हैं। जैसे IP_1 पर A और B संयोग समान उत्पादन के प्रतीक है।

2. यदि दो बिन्दु दो अलग -अलग वक्रों पर स्थित हो तो उनसे मिल ने वाली उत्पादन मात्रा समान न होकर अलग -अलग होगी।

3. जो समोत्पादन वक्र मूल बिन्दु O से जितना दूर होता जाता है अर्थात् जैसे-जैसे समोत्पादन वक्र दायीं आौर खिसकता जाता है। उससे मिल ने वाली उत्पादन मात्रा बढ़ती जाती ह जैसे C बिन्दु A तथा B से अधिक, D बिन्दु C से अधिक उत्पादन को प्रदर्शित करता है।

समलागत रेखा -कोई उत्पादक साधनों का कौन-सा संयोग चुनेगा यह उत्पादक के पास साधनों पर व्यय करने के लिए पूँजी की मात्रा तथा साधनों की कीमत पर निर्भर होता है। एक सम-लागत रेखा साधनों के विभिन्न संयोगों को बताती है। जोकि एक फर्म या उत्पादक दिये हुए लागत व्यय द्वारा खरीद सकता है। 'सम-लागत रेखा' को कई अन्य नामों से जाना जाता है। जैसे – 'साधन कीमती रेखा', 'साधन लागत रेखा', 'व्यय रेखा' फर्म की बजट नियंत्रण रेखा । माना एक उत्पादक के पास 500 रूपये है और साधन X (श्रम) की 100 रू0 प्रति इकाई तथा साधन-Y (पूँजी) की कीमत 50 रू0 प्रति इकाई है। ऐसी स्थिति में उत्पादक X साधन की 5 या Y साधन की 10 इकाईयां खरीद सकता है। जैसा तालिका (16.1) में दर्शाया गया है।

तालिका (16.1) समलागत तालिका

संयोग	X . साधन (श्रम)	Y.साधन (पूँजी)	कुल व्यय
A	**0**	**10**	**(0 x 100) + (10 x 50) = 500**
B	**1**	**8**	**(1 x 100) + (8 x 50) = 500**
C	**2**	**6**	**(2 x 100) + (6 x 50) = 500**
D	**3**	**4**	**(3 x 100) + (4 x 50) = 500**
E	**4**	**2**	**(4 x 100) + (2 x 50) = 500**
F	**5**	**0**	**(5 x 100) + (0 x 50) = 500**

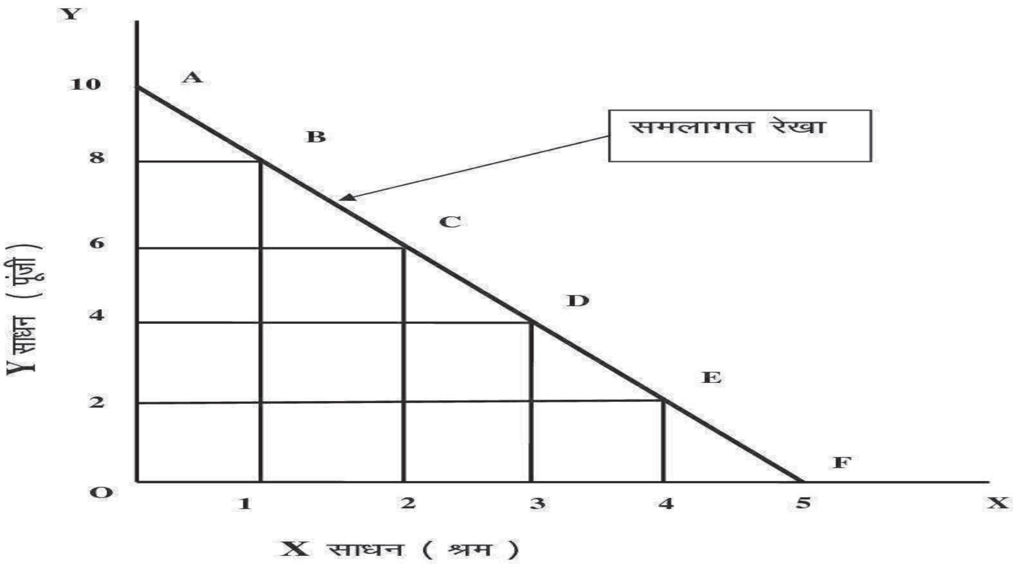

चित्र (16.2) समलागत रेखा

जब तालिका के संयोगों को रेखा चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जाता है तो जिस रेखा का निर्माण होता है उसे 'सम-लागत रेखा' कहते है। जैसा चित्र 16.2 में दर्शाया गया है।

$$\text{सम लागत रेखा का ढाल} = \frac{X \text{ साधन की कीमत}}{Y \text{ साधन की कीमत}}$$

उत्पादक सन्तुलन की मान्यताएँ:-

1. दो साधन, श्रम और पूंजी है।

2. पूँजी एवं श्रम की सब इकाइयाँ समरूप है।

3. दोनों साधनों की कीमते स्थिर है।

4. उत्पादक का लागत व्यय भी दिया हुआ है।

5. फर्म का उद्देश्य लाभ अधिकतम् करना है।

6. वस्तु की कीमत दी हुई है, और स्थिर है।

7. साधन बाजार में पूर्व प्रतियोगिता।

उत्पादक का संतुलन या साधनों का अनुकूलतम् संयोग प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य अधिकतम् लाभ प्राप्त करना होता है। जिसे समोत्पादक मानचित्र तथा सम लागत रेखा द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। एक उत्पादक के संतुलन को तीन मुख्य शर्ते होती है।

1. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र सम-लागत रेखा को स्पर्श करता है।

2. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र का ढ़ाल सम-लागत रेखा के ढाल के बराबर होता है।

3. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र उन्नतोदर आकार का होना चाहिए।

अपने लाभ को अधिकतम् करने के लिए उत्पादक को अनुकूलतम् साधन संयोग हेतु दो स्थिति का सामना करना पड़ सकता है। पहला, एक दिए हुए उत्पादन के लिए लागत को न्यूनतम करना और दूसरा, एक दी हुई लागत के लिए उत्पादन को अधिकतम् करना।

1.लागत को न्यूनतम करना जबकि उत्पादन की मात्रा दी हुई है -उत्पादक को 200 इकाइयाँ का उत्पादन करना है। जिसे चित्र (16.3) के IP अर्थात् समोत्पादन वक्र द्वारा दर्शाया गया है तथा तीन सम-लागत रेखा है जो विभिन्न लागत स्तर को प्रदर्शित करती है। चित्र (16.3) में E बिन्दु पर पूँजी

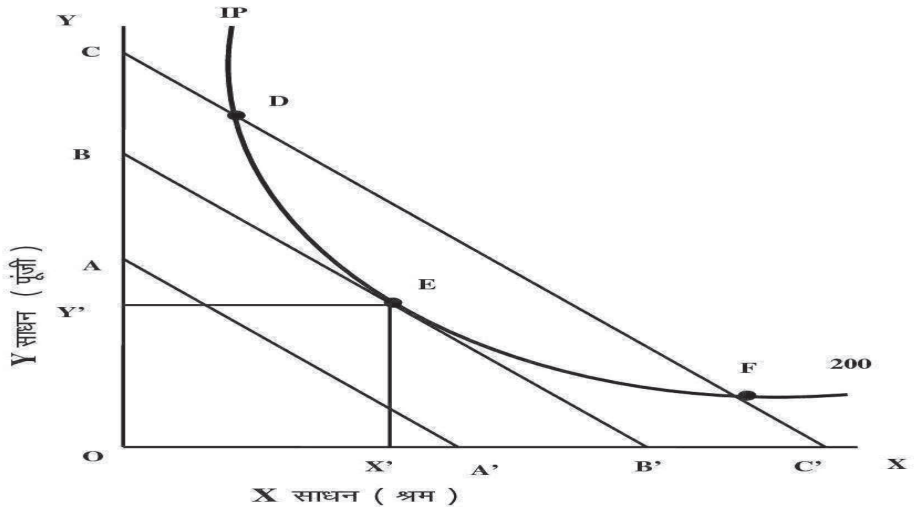

चित्र (16.3) लागत को न्यूनतम करना जबकि उत्पादन की मात्रा दी हुई है

की OY' तथा श्रम की OX' मात्रा का प्रयोग करके 200 इकाइयों का उत्पादन कर सकती है; क्योंकि E बिन्दु पर समोत्पादन वक्र सम लागत रेखा को स्पर्श करता है। जबकि D तथा F बिन्दु पर 200 इकाइयों के उत्पादन हेतु अधिक लगात लगानी होगी। इसी प्रकार A A' लागत रेखा द्वारा 200 इकाईयों का उत्पादन नहीं किया जा सकता है। इसलिए E बिन्दु ही उत्पादक का न्यूनतम लागत वाला संतुलन बिन्दु है। जो फर्म के लिए अनुकुल तम साधन संयोग भी है।

उत्पादक के सन्तुलन के लिए E बिन्दु वह है जहाँ समोत्पादन वक्र सम-लागत रेखा को स्पर्श करता है। यह एक महत्वपूर्ण शर्त है। परन्तु पर्याप्त शर्त नहीं। उत्पादक के सन्तुलन की दो और शर्ते है। जिसके अनुसार संतुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र का ढाल सम-लागत रेखा के ढाल के बराबर हो। सम लागत रेखा का ढाल साधन कीमत अनुपात (Px/PY) पर निर्भर करती है। जबकि समोत्पादन वक्र का ढाल तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ($MRTS_{xy}$) पर। अर्थात् संतुलन बिन्दु पर -

सम लागत रेखा का ढाल = तकनीकी प्रतिस्थापना की सीमान्त दर

$$\text{सम लागत रेखा का ढाल} = \frac{\text{X साधन (श्रम) की कीमत}}{\text{Y साधन (पूँजी) की कीमत}}$$

$$\text{X के लिए Y की तकनीकी प्रतिस्थापना की सीमान्त दर} = \frac{\text{Y साधन की मात्रा में परिवर्तन (कमी)}}{\text{X साधन की मात्रा में परिवर्तन (वृद्धि)}}$$

चित्र (16.3) में E बिन्दु ही ऐसा है जहाँ समोत्पादन वक्र का ढाल सम-लागत रेखा के ढाल के बराबर है।

उत्पादक के सन्तुलन की सबसे महत्वपूर्ण शर्त है कि सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र का ढाल उन्नतोदर होना चाहिए, अर्थात् सन्तुलन बिन्दु पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई होनी चाहिए।

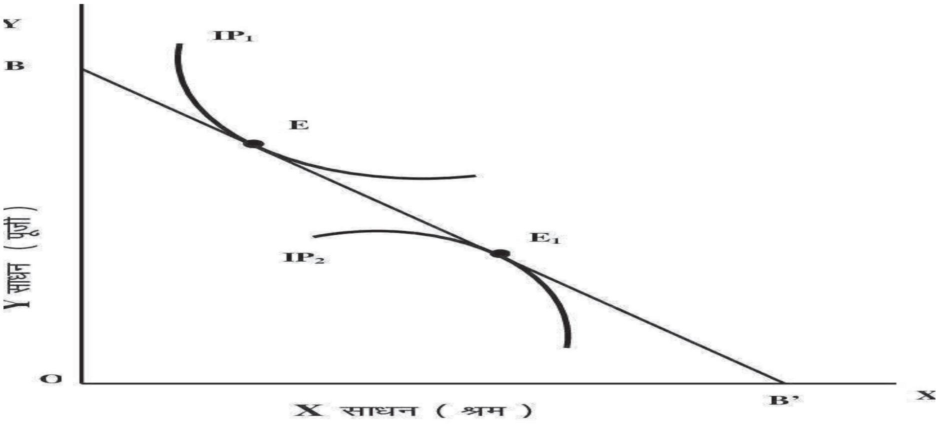

चित्र (16.4) उन्नतोदर तथा अवतल आकार समोत्पादन वक्र

जैसे चित्र (16.4) में दर्शाया गया है कि BB समलागत रेखा है; जिस पर दो सन्तुलन बिन्दु IP_1, IP_2 पर E तथा E_1 स्थित है। जिसमें से IP1 उन्नतोदर आकार का है तथा IP_2 अवतल आकार का है। जैसा कि हम जानते है कि मूल बिन्दु के दांयी ओर का समोत्पादन वक्र बायें ओर के समोत्पादन वक्र की तुलना में उत्पादन के ऊँचे स्तर को प्रदर्शित करता है। अतः स्पष्ट है कि IP_1 पर स्थित E बिन्दु ही उत्पादक का अनुकूलतम संयोग बिन्दु है। अर्थात् न्यूनतम लागत सन्तुलन का बिन्दु है।

2. उत्पादन को अधिकतम करना जबकि लागत व्यय दिया हुआ हो - उत्पादक के सन्तुलन को ज्ञात करने के लिए सम लागत रेखा तथा समोत्पादन मानचित्र का प्रयोग करेंगे चित्र (16.5) में IP_1, IP_2 तथा IP_3 तीन समोत्पादन वक्र है जो क्रमश 100, 200 तथा 300 इकाईयों के उत्पादन को प्रदर्शित करते है तथा A A' सम लागत रेखा है। चित्र (16.5) में E बिन्दु उत्पादक का सन्तुलन बिन्दु अर्थात् अधिकतम उत्पादन का बिन्दु है क्योंकि E बिन्दु पर समोत्पादन वक्र सम लागत रेखा

को स्पर्श करता है। सम लागत रेखा तथा IP_1 पर स्थित C व D बिन्दु उत्पादक का सन्तुलन बिन्दु नही है क्योंकि वह कम उत्पादन के प्रदर्शित करते है।

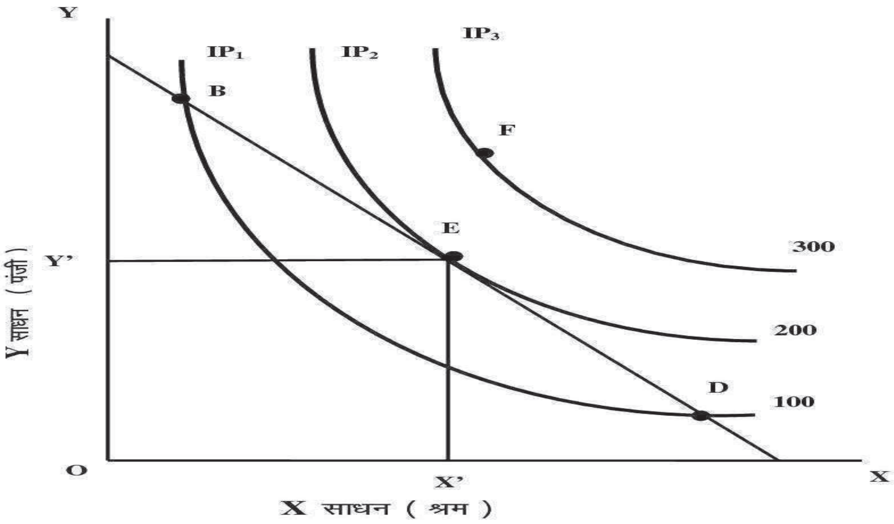

चित्र (16.5) उत्पादन को अधिकतम करना जबकि

जबकि AA' समलागत रेखा तथा IP_2 पर स्थित E बिन्दु अधिक उत्पादन को दर्शाता है। और F बिन्दु उत्पादक की निवेश सीमा के बाहर है। अतः E बिन्दु ही उत्पादक का सन्तुलन बिन्दु है क्योंकि इस बिन्दु पर समोत्पादन वक्र का ढाल है। कीमत रेखा के ढाल के बराबर है और समोत्पादन वक्र उन्नतोदर आकार है अर्थात E बिन्दु पर समोत्पादन वक्र की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई है।

विस्तार पथ:-दीर्घकाल में उत्पादक अपने उत्पादन का पैमाना बढ़ाता है और निवेश में वृद्धि करता है। इसके लिए उत्पादक लागतों को न्यूनतम तथा लाभों को अधिकतम करने के लिए अनुकुल तम विस्तार पथ का चुनाव करता है। विस्तार-पथ उत्पादक के सन्तुलन के विभिन्न बिन्दुओं का बिन्दुपथ है।

विस्तार पथ की मान्यताएँ:-

1. उत्पादन के दो साधन है श्रम और पूॅजी।
2. दोनों साधन परिवर्तनशील है।
3. श्रम व पूॅजी की सभी इकाइयाँ समरूप है।
4. दोनों साधनों की कीमत स्थिर है।
5. उत्पादक कुल व्यय को बढ़ा घटा सकता है।

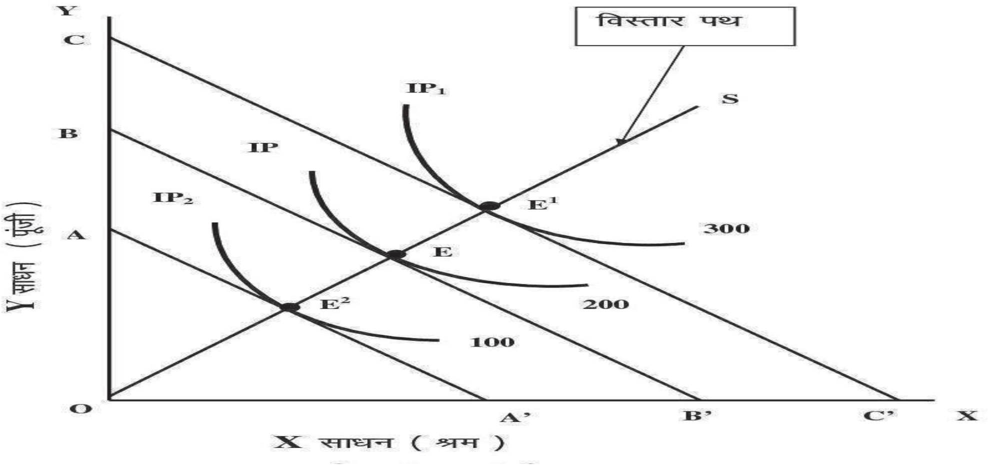

चित्र (16.6) में तीन सम लागत रेखा AA', BB', तथा CC' है। जो कुल व्यय के विभिन्न स्तरों को दर्शाते है तथा IP_1, IP_2 तथा IP_3 समोत्पादन वक्र क्रमशः 100, 200 तथा 300 इकाईयों के उत्पादन को प्रदर्शित करते है। जो E, E_1 तथा E_2 संतुलन बिन्दु का निर्धारण करते है। E, E_1 तथा E_2 बिन्दुओं को एक-दूसरे से मिलाने से जिस रेखा का निर्माण होता है उसे **'विस्तार पथ'** या **'पैमाना रेखा'** कहते है। इसे विस्तार पथ इसलिए कहते है क्योंकि उत्पाद अपने उत्पादन का विस्तार इसी के आधार पर करता है। विस्तार पथ का ढाल साधनों की सापेक्ष कीमतों तथा सम उत्पादन वक्रों की आकृति पर निर्भर करता है।

कीमत प्रभाव - साधन कीमत में परिवर्तन का प्रभाव - उत्पादक का निवेश स्थिर रहते हुए, जब किसी साधन की कीमत में परिवर्तन होता है, तो उसके फलस्वरूप उत्पादक के सन्तुलन पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे 'कीमत-प्रभाव' कहते है। कीमत-प्रभाव निम्न मान्यताओं पर आधारित है।

1. उत्पादन के दो साधन, श्रम और पूॅजी है।

2. श्रम और पूॅजी की सभी इकाइयां समरूप है।

3. पूॅजी की कीमत स्थिर रहती है।

4. श्रम की कीमत में परिवर्तन होता है।

5. उत्पादक का निवेश अर्थात् कुल व्यय स्थिर रहता है।

6. साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है।

7. उत्पादक केवल एक वस्तु का उत्पादन करता है।

साधन कीमत प्रभाव को चित्र (16.7) में दर्शाया गया है। AA' सम लागत रेखा है जिस पर IP समोत्पादन वक्र पर E बिन्दु सन्तुलन को दर्शाता है। Y साधन पूॅजी की कीमत स्थिर रहते हुए X

साधन श्रम की कीमत में कमी होती है। तो सम लागत रेखा AC हो जाती है और उत्पादक IP_1 के E_1 बिन्दु पर नये सन्तुलन पर उत्पादन करता है। इसी प्रकार यदि X साधन श्रम की कीमत में वृद्धि होती है तो समलागत रेखा बाय ओर खिसक कर ABहो जाती है, तथा IP_2 के E_2 बिन्दु पर उत्पादक का सन्तुलन निर्धारित होता है। इस प्रकार कीमत परिवर्तन के कारण उत्पादक कभी E, E_1 तथा E_2 बिन्दु पर सन्तुलन में रहते हुए उत्पादन करता है। जब E, E_1 तथा E_2 बिन्दु को मिल ने से जो रेखा बनती है, उसे कीमत साधन वक्र कहते है। कीमत साधन वक्र का ढाल X साधन या Y साधन की कीमत में होने वाले परिवर्तन पर निर्भर करता है।

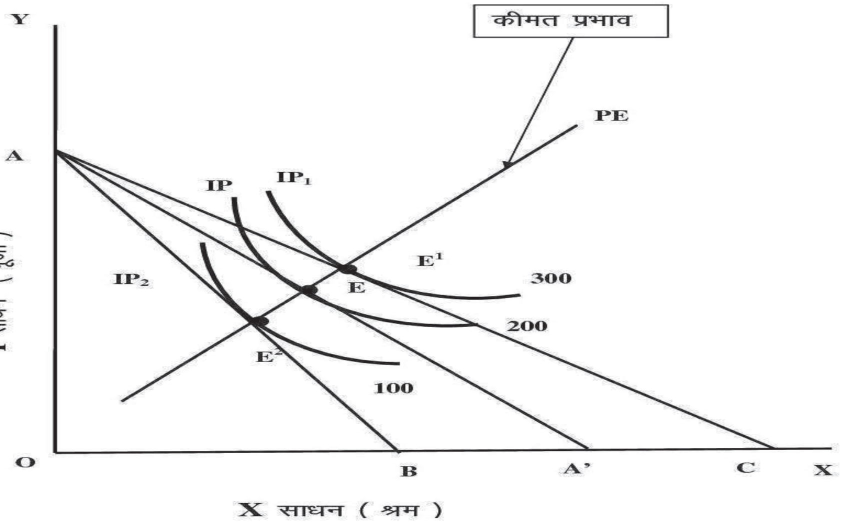

चित्र (16.7) कीमत प्रभाव

16.4 सारांश

एक उद्यमकर्त्ता को वस्तु की एक निश्चित मात्रा का उत्पादन करने के लिए साधनों के विशेष संयोग का चुनाव दो बातों पर निर्भर करता है - एक वस्तु के उत्पादन के लिए उपलब्ध तकनीकी सम्भावनाएँ अर्थात् समोत्पादन वक्रों का मानचित्र, दूसरे किसी वस्तु विशेष में प्रयोग होने वाले विभिन्न साधनों की कीमत अर्थात् सम लागत रेखा या साधन लागत रेखा पर। जब उत्पादन के विभिन्न स्तरों के दर्शाने वाले विभिन्न समोत्पादन वक्रों को एक ही चित्र में दर्शाया जाता है तो उस चित्र को समोत्पादन मानचित्र कहते है।एक सम-लागत रेखा साधनों के विभिन्न संयोगों को बताती है। जोकि एक फर्म या उत्पादक दिये हुए लागत व्यय द्वारा खरीद सकता है।एक उत्पादक के संतुलन को तीन मुख्य शर्ते होती है। सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र सम-लागत रेखा को स्पर्श करता है।सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र का ढ़ाल सम-लागत रेखा के ढाल के बराबर होता है।सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र उन्नतोदर आकार का होना चाहिए। अपने लाभ को अधिकतम् करने के लिए उत्पादक को अनुकूलतम् साधन संयोग हेतु दो स्थिति का सामना करना पड़ सकता है। पहला, एक दिए हुए उत्पादन के लिए लागत को न्यूनतम करना और दूसरा, एक दी हुई लागत के लिए

उत्पादन को अधिकतम् करना। दीर्घकाल में उत्पादक अपने उत्पादन का पैमाना बढ़ाता है और निवेश में वृद्धि करता है। इसके लिए उत्पादक लागतों को न्यूनतम तथा लाभों को अधिकतम करने के लिए अनुकुल तम विस्तार पथ का चुनाव करता है। विस्तार-पथ उत्पादक के सन्तुलन के विभिन्न बिन्दुओं का बिन्दुपथ है। उत्पादक का निवेश स्थिर रहते हुए, जब किसी साधन की कीमत में परिवर्तन होता है, तो उसके फलस्वरूप उत्पादक के सन्तुलन पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे 'कीमत-प्रभाव' कहते है।

16.5 शब्दावली:-

- साधन की अविभाज्यता - ऐसे साधन जिन्हें छोटी - छोटी इकाईयों (हिस्सों) में बाँटा नहीं जा सकता।
- सीमान्त उत्पाद (MP) - साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन होने वाली वृद्धि।
- औसत उत्पाद (AP) - कुल उत्पादन में परिवर्तनशील साधन की कुछ इकाईयों से भाग देने से प्राप्त होता है।
- प्रतिस्थापन -स्थानापन्नता अर्थात एक साधन के स्थान पर दूसरे के प्रतिस्थापित या प्रयोग करना।
- अविभाज्यता -ऐसा साधन जिसे छोटे-छोटे भाग में न बांटा जान सके।

16.6 अभ्यास प्रश्न:-

रिक्त स्थान भरों:-

1. जब एक चित्र में एक से अधिक समोत्पादन वक्रों को प्रदर्शित किया जाता है, तो उसे............. कहते है।
2. बायीं ओर की तुलना में दायीं ओर का समोत्पादन वक्र................... को प्रदर्शित करता है।
3. किसी एक समोत्पादन वक्र पर स्थित सभी बिन्दु .... उत्पादन प्रदान करते हैं।
4. दो बिन्दु दो अलग-अलग वक्रों पर स्थित हो तो उनसे मिल ने वाली उत्पादन मात्रा .... होगी।
5. समोत्पादन वक्र मूल बिन्दु O से जितना दूर होता, उससे मिल ने वाली उत्पादन मात्रा .... जाती है।
6. 'सम-लागत रेखा' को .... नामों से जाना जाता है।
7. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र .... को स्पर्श करता है।

8. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र का ढ़ाल सम-लागत रेखा के ढाल के .... होता है।
9. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र.................... आकार का होना चाहिए।
10. साधन की कीमत में परिवर्तन होता है, तो उसके फलस्वरूप उत्पादक के सन्तुलन पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे .... कहते है।

उत्तर - (1) समोत्पादन मानचित्र (2) अधिक उत्पादन (3) समान उत्पादन (4) अलग -अलग (5) बढ़ती (6) 'साधन कीमती रेखा', 'साधन लागत रेखा', 'व्यय रेखा'(7) सम-लागत रेखा (8) बराबर (9) उन्नतोदर (10) कीमत-प्रभाव ।

16.7 सन्दर्भ ग्रन्थ:-

1. आहूजा, एच0 ए0, (2003),उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त: व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण ; एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
2. झिंगन, एम0 एल0 (2007), व्याष्टि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, दिल्ली।
3. जैन, के0 पी0 (2005) माइक्रो अर्थशास्त्र, नवयुग साहित्य सदन, आग रा।
4. सिंह, एस0 पी0 (2001) माइक्रो अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
5. सेठ, एम0 एल0 (2000-01) उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।

16.8 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Koutsoyinuis.A. (1979), *Modern Microeconomics*, (2nd Edition), Macmillian Press, London.
- Ahuja,H.L. ((2010),*Principles of Micro Economics* , S&Chand Publishing House
- Peterson, L. and Jain (2006), *Managerial Economics*, 4th edition, Pearson Education.
- Colander, D, C (2008), *Economics*, McGraw Hill Education.

16.9 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. समोत्पादन वक्र से उत्पादक के अनुकूलतम साधन संयोग को समझ जायेंगे।
2. उत्पादक के विस्तार पथ की व्याख्या करों।
3. साधन कीमत के प्रभाव को समझ जायेंगे।

इकाई-12 लागत वक्र विश्लेषण

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्दे
12.2 लागत की धारणाएं
12.2.1 मौद्रिक लागत
12.2.2 दृश्य लागतें
12.2.3 अदृश्य लागतें
12.2.4 सामान्य लाभ
12.3 वास्तविक लागत
12.4 अवसर लागत
12.5 अल्पकालीन लागतें
12.5.1 औसत स्थिर लागत
12.5.2 औसत परिवर्तनशील लागत
12.5.3 औसत कुल लागत
12.5.4 सीमान्त लागत
12.6 औसत लागत एवं सीमान्त लागत में सम्बन्ध
12.6.1 औसत लागत एवं सीमान्त लागत का गणितीय सम्बन्ध
12.6.2 सीमान्त लागत-वक्र का औसत परिवर्तनशील लागत से सम्बन्ध
12.7 लघु उत्तरीय प्रश्न
12.8 दीर्घकालीन लागत
12.8.1 दीर्घकालीन औसत लागत
12.8.2 दीर्घकालीन सीमान्त लागत
12.8.3 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की आकृति: बचतें एवं हानियां
12.8.4 पैमाने की बचतें
12.8.5 आन्तरिक बचतें
12.8.6 बाह्य बचतें
12.8.7 पैमाने की हानियां

12.9 लघु उत्तरीय प्रश्न
12.10 सारांश
12.11 शब्दावली
12.12 संदर्भ
12.13 लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर
12.14 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

इस खण्ड के पूर्व हम संतुलन विश्लेषण तथा उपभोक्ता के व्यवहार का विस्तृत अध्ययन कर चुके हैं। अर्थशास्त्र में उपभोग के सिद्धान्तों का जितना महत्व है उतना ही महत्व उत्पादन के सिद्धान्तों का है। वासतविकता में दोनों सिद्धान्त मूल्य निर्धारण में मांग और पूर्ति दोंनों पक्षों की सैद्धान्तिक व्याख्या करते है। जिस प्रकार मांग विश्लेषण में उपयोगिता का प्रमुख स्थान है उसी प्रकार उत्पादन विश्ले षण में लागत एवं आगम की धारणाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। लागत ज्ञात होने पर ही फर्म या उद्योग की संस्थिति निर्धारण करना सम्भव है। अर्थात् जिस प्रकार से उपभोक्ता के संस्थिति-निर्धारण में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उपयोगिता या संतुष्टि का महत्वपूर्ण योग दान है उसी प्रकार उत्पादक के संस्थिति के निर्धारण में लागत एवं आगम का महत्वपूर्ण योग दान है।

हर उत्पादक अपनी उत्पादन क्रिया से अधिकतम लाभ कमाना चाहता है। उसका लाभ उसके लागत व आगम के अन्तर पर निर्भर करता है। अतः उत्पादन के दृष्टिकोण से लागत व आगम दोनों पक्षों से महत्वपूर्ण स्थान है। इस इकाई में हम उत्पादन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की लागत धारणाओं का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

12.1 उद्देश्य

उत्पादक के दृष्टिकोण से लागत पक्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उत्पादन प्रारम्भ करने से पूर्व उत्पत्ति के साधनों को एकत्रित करना पड़ता है। उत्पत्ति के साधनों तथा स्वयं उत्पादक की उद्यमशीलता को एक निश्चित संयोग में मिलाये बिना उत्पादन नहीं किया जा सकता। प्रत्येक उत्पत्ति के साधन का अपना अलग मूल्य होता है तथा एक उत्पत्ति के साधन से दूसरे उत्पत्ति के साधन को एक सीमा तक प्रतिस्थापित भी किया जा सकता है। उत्पत्ति के साधनों में महँगे साधनों का प्रयोग निश्चित रूप से कुल उत्पादन लागत को बढ़ायेगा, साथ ही सस्ते उत्पत्ति के साधन से उत्पादित की जा रही वस्तु की उत्पादन लागत अपेक्षाकृत कम होगी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले समस्त में सहायक साधनों को दिया जाने वाला भुगतान ही उत्पादन लागत है।

- प्रस्तुत इकाई में यह अध्ययन करेंगें कि:-
- लागत की विभिन्न धारणएं कौन-कौन सी है ।
- मौद्रिक लागतें क्या है ? तथा इनमें कौन-कौन से तत्व सम्मिलित होते है।
- वास्तविक लागत की अवधारणा क्या है ।
- अवसर लागत की अवधारणा क्या है ।

- स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतें क्या होती है।
- औसत लागत व सीमान्त लागतें क्या होती है।

12.2 लागत की धारणाएं

अर्थशास्त्र में लागत शब्द को कई अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। अर्थषास्त्रियों द्वारा लागत की विभिन्न प्रकार की धारणाएं प्रतिपादित की गई जिनमें प्रमुख अवधारणाएं निम्नलिखित है -

1. मौद्रिक लागत
2. वास्तविक लागत
3. अवसर लागत

12.2.1 मौद्रिक लागत

किसी फर्म द्वारा एक वस्तु के उत्पादन में किए गए कुल मुद्रा व्यय को मौद्रिक लागत कहते हैं। दूसरे शब्दों में, उत्पत्ति के समस्त साधनों के मूल्य को यदि मुद्रा में व्यक्त कर दिया जाए तो उत्पादक इन उत्पत्ति के साधन की सेवाओं को प्राप्त करने में जितना कुल व्यय करता है, मौद्रिक लागत कहलाती है।

मौद्रिक लागत में निम्नलिखित मदों को सम्मिलित किया जा सकता है -

1. कच्चे माल पर व्यय
2. श्रम की मजदूरी एवं वेतन पर व्यय
3. अविभाज्य बड़े उपकरण एवं मषीन पर व्यय
4. पूंजी पर दिए जाने वाला ब्याज
5. भूमि का किराया अर्थात् लगान
6. मषीनों की टूट-फूट एवं घिसावट पर व्यय
7. प्रबन्धन व्यय
8. विज्ञापन व्यय
9. यातायात व्यय
10. बीमा कम्पनियों को दी जाने वाली राशि
11. सामान्य लाभ
12. ईंधन व्यय

उपर्युक्त बतायी गई मौद्रिक लागतों   को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1. दृश्य लागते

2. अदृश्य लागते
3. सामान्य लाभ

12.2.2 दृश्य लागतें

दृश्य लागतें वे लागते हैं जो उत्पादक के द्वारा उत्पत्ति के अनेक साधनों को एकत्रित करने पर स्पष्ट रूप से व्यय की जाती है। इस प्रकार दृश्य लागतें उत्पादन का प्रत्यक्ष व्यय स्पष्ट करती है। दृश्य लागत में निम्नलिखित प्रकार के व्यय सम्मिलित होते हैं -

1. उत्पादन लागत - उत्पत्ति के साधनों का पारिश्रमिक, मजदूरी, लगान , ब्याज इत्यादि, उपकरणें पर व्यय, कच्चे माल पर व्यय
2. बिक्री लागत - विज्ञापन पर व्यय, पैंकिंग पर व्यय, यातायात पर व्यय इत्यादि
3. अन्य लागत - कर, बीमा, विद्युत, संचार, प्रीमियम इत्यादि पर व्यय

12.2.3 अदृश्य लागतें

अदृश्य लागतों में उत्पादक के वे व्यय सम्मिलित होते हैं जिनका उत्पादक को प्रत्यक्ष

रूप से भुगतान नहीं करना होता है। इसमें मुख्यतया वे साधन सम्मिलित होते हैं जो उत्पादन के स्वतः के होते हैं अर्थात् व्यक्तिगत होते हैं। अदृश्य लागतों के अन्तर्गत निम्नलिखित व्यय सम्मिलित किए जाते हैं -

1. स्वयं उत्पादक द्वारा प्रदान की गई सेवा का पारिश्रमिक
2. उत्पादन की अपनी स्वयं की पूंजी का ब्याज
3. उस बिल्डिंग का किराया जो स्वयं उस उत्पादक की है किन्तु उत्पादन क्रिया में प्रयोग की जा रही है।

12.2.4 सामान्य लाभ

सामान्य लाभ को अर्थशास्त्र में किसी उद्यमी को उत्पादन प्रक्रिया में बनाए रखने की लागत के रूप में देखा जाता है। लाभ दो प्रकार के होते हैं - अतिरिक्त लाभ तथा सामान्य लाभ। यदि वस्तु की बिक्री से इतना अधिक आगम प्राप्त हो कि उद्यमी की लागत, वेतन इत्यादि तो निकले ही साथ में कुछ अतिरिक्त राशि बच जाए तो उसे उद्यमी का अतिरिक्त लाभ कहेंगे। परन्तु यदि मात्र इतना आगम प्राप्त कि उसका वेतन व लागते निकल पाए तो उसे उद्यमी का सामान्य लाभ कहा जाएगा। जहाँ अतिरिक्त लाभ का लागतों से कोई सम्बन्ध नहीं वहीं सामान्य लाभ को लागतों के अंश के रूप में देखा जाता है। ऐसा माना जाता है कि सामान्य लाभ न मिल पाने की दशा में उद्यमी उत्पादन बंद कर देता है।

संक्षेप में,

कुल मौद्रिक लागत = कुल दृश्य + लागत + अदृश्य लागत + सामान्य लाभ

12.3 वास्तविक लागत

मार्शल के अनुसार एक वस्तु के उत्पादन में समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा जो प्रयत्न एवं त्याग किए जाते हैं वही उत्पादन की वास्तविक लागत है। इस प्रकार किसी उत्पादन क्रिया के अन्तर्गत निहित कष्ट व त्याग वास्तविक लागत का निर्माण करते हैं।''

वास्तविक लागत का अवधारणा भले ही देश तथा समाज की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इसका कोई महत्व नहीं है। कष्ट, त्याग आदि अनुभव तो किए जा सकते हैं किन्तु इन्हें मुद्रा के मापदण्ड द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, वास्तविक लागत का विचार मनोवैज्ञानिक एवं व्यक्तिगत हैं क्योंकि एक ही कार्य करने में विभिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न प्रकार के कष्ट के अनुभव होते हैं। कोई निश्चित मापदण्ड कष्ट आदि के मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

12.4 अवसर लागत

अस्ट्रियन अर्थषास्त्रियों ने 'वास्तविक लागत' के विचार में संषोधन किया क्योंकि उनका विचार था कि वास्तविक लागत के तथ्य में कष्ट, त्याग आदि मनोवैज्ञानिक तत्व भी शामिल हैं जिन्हें मुद्रा के मापदण्ड द्वारा नहीं मापा जा सकता। इसी कारण उन्होंने वास्तविक लागत के स्थान पर अवसर लागत का प्रयोग किया। अर्थशास्त्र का मौलिक सिद्धान्त यह है कि आर्थिक साधन आवश्यकताओं की तुलना में सीमित होते हैं। अतः किसी वस्तु के उत्पादन का अर्थ है - दूसरी वस्तु या वस्तुओं के उत्पादन से वंचित होना।

बेन्हम के शब्दों में, ''किसी वस्तु की अवसर लागत वह सर्वश्रेष्ठ विकल्प है जिसका उत्पादन उन्हीं उत्पत्ति साधनों द्वारा उसी लागत पर उस वस्तु के विकल्प के रूप में किया जा सकता है।''

अवसर लागत के उपर्युक्त विचार को एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। अपनी योग्यता तथा श्रम के आधार पर एक व्यक्ति को तीन नौकरियां मिल सकती है - डिग्री कालेज लेक्चर (वेतन रू0 3000 मासिक), बैंक ऑफीसर (वेतन रू0 2900 मासिक) तथा सेल्स ऑफीसर (वेतन रू0 2600 मासिक)। स्वाभाविक है कि अन्य बातों के समान रहते हुए वह व्यक्ति डिग्री कालेज के प्रवक्ता पद को ही चुनेगा। इस चुनाव के दो विकल्प हैं – 2,900 रू0 मासिक वेतन तथा 2ए600 रू0 मासिक वेतन के अन्य दो पद। परन्तु इन पदों में श्रेष्ठ 2,900 रू0 मासिक वाला पद

है तथा यही चुने गए पद की वैकल्पिक अथवा अवसर लागत कहलायेगी। वैकल्पिक अथवा अवसर लागत में वस्तु या सेवा के सर्वश्रेष्ठ विकल्प की लागत देखी जा सकती है।

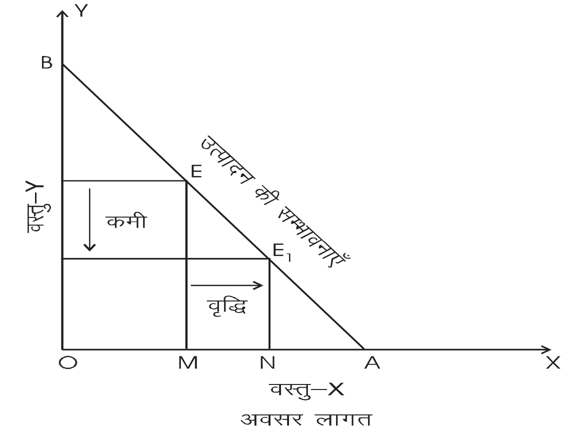

चित्र-1

अवसर लागत के तथ्य को हम चित्र संख्या 1 द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। AB रेखा दो वस्तुओं X और Y के मध्य की उत्पादन सम्भावना वक्र है। उत्पादक के पास साधनों की मात्रा निश्चित है जिनसे दो वस्तुओं X और Y का उत्पादन किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में यदि उत्पादक X वस्तु का उत्पादन बढ़ाना चाहता है तो उसे Y वस्तु के उत्पादन में कमी करनी पड़ती है। चित्र से स्पष्ट है कि X वस्तु की MN मात्रा में वृद्धि करने के लिए Y वस्तु की RS मात्रा का त्याग करना पड़ेगा, यही अवसर लागत है। X वस्तु की MN मात्रा की अवसर लागत Y वस्तु की RS मात्रा में कमी को माना जाएगा।

अवसर लागत का महत्व

1. लगान का आधुनिक सिद्धान्त अवसर लागत के तथ्य पर आधारित है। लगान का आधुनिक सिद्धान्त यह बताता है कि लगान अवसर लागत के ऊपर का अतिरेक है।
2. यह तथ्य उत्पत्ति के सीमित साधनों के वितरण में सहायक है। अवसर लागत के सिद्धान्त के अनुसार सीमित साधन जो अनेक वैकल्पिक प्रयोगों में आता है, को एक श्रेष्ठतम सम्भावित वैकल्पिक प्रयोग में प्रयुक्त करना चाहिए। अतः अवसर लागत का तथ्य साधनों के अनुकूलतम वितरण की क्रिया को सफल बनाना है।
3. अवसर लागत के विचार से यह विश्ले षण किया जा सकता है कि फर्म की लागत किस सीमा तक अपने उत्पादन के साथ परिवर्तित हो सकती है।

12.5 अल्पकालीन लागतें

अल्पकाल में उत्पादक वस्तु की पूर्ति को परिवर्तित मांग की दशाओं के अनुसार पूर्णतः समायोजित नहीं कर सकता क्योंकि अल्पकाल में उत्पादक के पास इतना समय नहीं होता कि वह उत्पत्ति के सभी साधनों में समयानुसार परिवर्तन कर सकें। अल्पकाल में उत्पत्ति के कुछ साधन स्थिर होते हैं तथा कुछ परिवर्तनशील । अल्पकाल में कुछ उत्पत्ति के साधनों को परिवर्तित नहीं किया जा सकता। भूमि, बिल्डिंग , मशीन संगठन एवं प्रबन्ध ऊँचा तकनीकी श्रम आदि की मात्रा परिवर्तित नहीं की जा सकती। स्थिर साधनों को जो भुगतान दिया जाता है उसे स्थिर लागत कहा जाता है। स्थिर लागत उत्पादन की मात्रा के साथ परिवर्तित नहीं होती।

स्थिर साधन के अतिरिक्त अल्पकाल में कुछ परिवर्तनशील साधन होते हैं जिनकी पूर्ति को आवष्यकतानुसार समायोजित किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत ईंधन, बिजली, कच्चा माल, श्रमिक आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं। अल्पकाल में परिवर्तनशील साधन उत्पादन की मात्रा के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं परिवर्तनशील लागत है। स्थिर लागतें उद्यमी को उत्पादन बन्द होने की दशा में भी वहन करनी पड़ती है जबकि अल्पकाल में उत्पादन बन्द कर देने पर परिवर्तनशील लागतों को पूर्णतः समाप्त किया जा सकता है। स्थिर लागतों को पूरक लागत तथा परिवर्तनशील लागतों को मुख्य लागत भी कहा जाता है।

अल्पकाल में,

कुल उत्पादन लागत = कुल स्थिर लागत + कुल परिवर्तनशील लागत

$$TC = TFC + TVC$$

चित्र 2 में कुल लागत वक्र को TFC तथा कुल परिवर्तनशील लागत को TVC वक्र के रूप में स्पष्ट किया गया है। TFC रेखा X-अक्ष के समानान्तर एक पड़ी रेखा के रूप में दिखायी गई है जिसका अभिप्राय है कि उत्पादन शून्य होने की दशा में भी उत्पादक को TFC के बराबर व्यय वहन करना पड़ेगा। इसके दूसरी ओर TVC वक्र मूल बिन्दु से ऊपर की ओर बढ़ता हुआ होता है जिसका अभिप्राय है कि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ कुल परिवर्तनशील लागतों में वृद्धि हो रही है। TVC का आरम्भिक बिन्दु O है जिसका अभिप्राय है कि शून्य उत्पादन होने की दशा में कुल परिवर्तनशील लागत शून्य हो जाती है। इस प्रकार कुल परिवर्तनशील लागत, उत्पादन की मात्रा का एक फलन होता है।

अर्थात् $TVC = f(Q)$

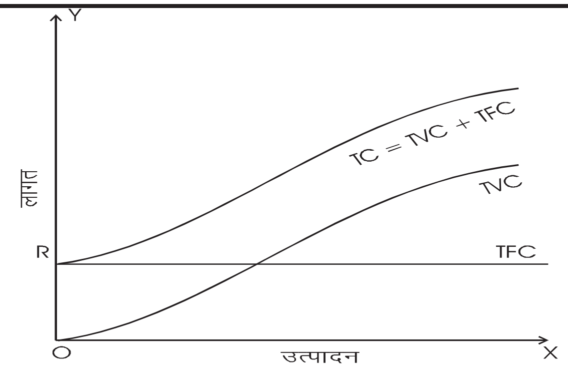

चित्र-2

दूसरे शब्दों में, उत्पादन की मात्रा की वृद्धि TVC को बढ़ायेगी तथा उत्पादन की मात्रा की कमी TVC को घटायेगी।

TFC एवं TVC वक्रों के योग को प्रदर्शित करता हुआ कुल लागत वक्र चित्र में TC द्वारा प्रदर्शित किया गया है जो कुल उत्पादन लागत को बताता है। भिन्न-भिन्न उत्पादन स्तरों पर कुल स्थिर लागत एवं परिवर्तनशील लागतों का योग इस वक्र के द्वारा प्रदर्शित किया गया। TC वक्र का प्रारम्भ बिन्दु Y.अक्ष का वह बिन्दु है जहाँ से TFC वक्र प्रारम्भ होता है। इसका अभिप्राय है कि उत्पादन शून्य होता है। इसका अभिप्राय है कि उत्पादन शून्य होने की दशा में कुल लागत, कुल स्थिर लागत के बराबर होगी क्योंकि शून्य उत्पादन स्तर पर परिवर्तनशील लागत लागत पूर्णतः समाप्त हो जाती है। चित्र 2 से यह भी स्पष्ट है कि TVC वक्र के बढ़ने की गति एवं TC वक्र के बढ़ने की गति एक समान है क्योंकि TC वक्र के अनुसार विभिन्न उत्पादन स्तरों पर परिवर्तित होती हुई TVC अपने परिवर्ततन के अनुपात में ही TC में परिवर्तन करती है। इसी प्रकार कहा जा सकता है कि कुल उत्पादन लागत भी उत्पादन का फलन है। अर्थात्

$$TC = f\ (Q)$$

स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि दोनों प्रकार की लागतों का अन्तर अल्पकाल में ही लागू होता है दीर्घकाल में नहीं क्योंकि दीर्घकाल में सभी साधन एवं लागतें परिवर्तनशील हो जाती है। दूसरे, स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों में अन्तर केवल मात्रा का है न कि किस्म का क्योंकि स्थिर लागतें एक समयावधि के संदर्भ में ही स्थिर होती है।

12.5.1 औसत स्थिर लागत

औसत स्थिर लागत कुल स्थिर लागत एवं उत्पादन की मात्रा का भाग फल होती है।

अर्थात्

$$AFC = \frac{TFC}{Q}$$

जहाँ AFC =औसत स्थिर लागत

TFC = कुल स्थिर लागत

Q = उत्पादन की मात्रा

अल्पकालीन औसत लागत वक्र अल्पकालीन कुल लागत वक्र की सहायता से ज्यामितीय रीति द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं।

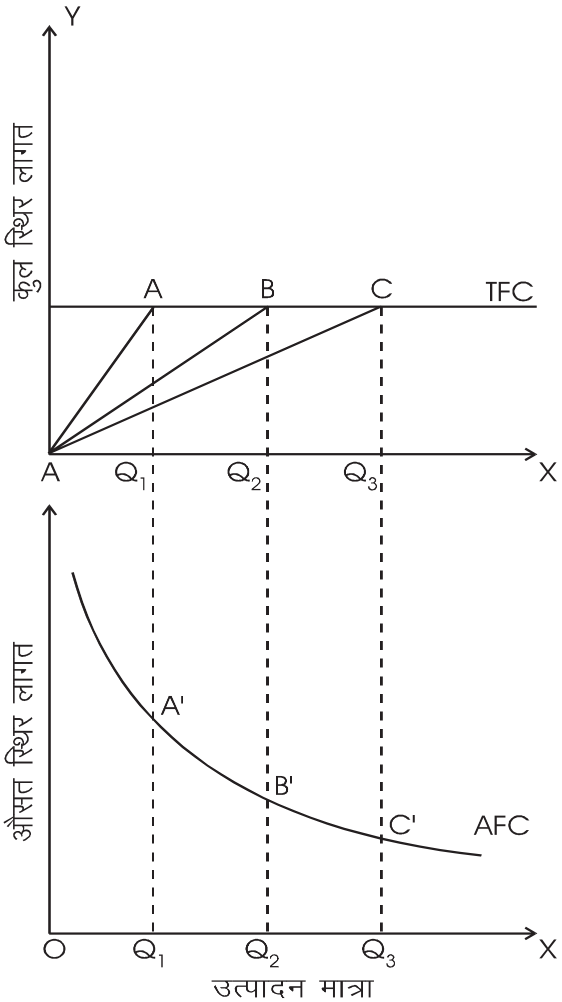

चित्र 3

चित्र 3 में TFC वक्र द्वारा AFCवक्र की व्यूत्पत्ति दिखाई गई है। Q_1 उत्पादन मात्रा पर औसत स्थिर लागत प्राप्त करने के लिए बिन्दु Q_1 से TFC रेखा पर एक लम्ब खींचा जाता है जो TFC को बिन्दु A पर काटता है। इसी प्रकार उत्पादन बिन्दुओं Q_2 एवं Q_3 से TFC पर डाले गए लम्ब क्रमश B और C बिन्दुओं पर TFC को काटते हैं। मूल बिन्दु से इन तीनों कटान बिन्दुओं को मिलाती हुई रेखा खींची जाती है जो चित्र में क्रमश OA, OB एवं OC है, तथा जो उत्पादन स्तरों पर AFC वक्र खींचा गया है। OA, OB एवं OC की ढालों वाली रेखाओं से Q_1, Q_2 एवं Q_3 उत्पादन स्तरों पर औसत स्थिर लागत क्रमश A', B', C' बिन्दु प्राप्त किए जाते हैं। चित्र में इन तीनों बिन्दुओं को मिलाती हुई AFC रेखा प्रदर्शित की गई है। औसत स्थिर लागत वक्र (AFC) से सम्बन्धित मुख्य बातें निम्नलिखित हैं -

- यह वक्र बाए से दायें नीचे गिरता हुआ होता है क्योंकि कुल स्थिर लागत अपरिवर्तनीय होती है और जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती है। AFC घटती जाती है।
- आरम्भिक अवस्था में AFC वक्र अधिक तेजी गिरता और उसके बाद कम तेजी से।
- AFC वक्र कभी अक्षों को स्पर्श नहीं करता जिसके कारण AFC का आकार आयताकार अतिपरवलय के समान होता है।
- AFC कभी भी शून्य नहीं हो सकता।

12.5.2 औसत परिवर्तनशील लागत

औसत परिवर्तनशील लागत, कुल परिवर्तनशील लागत एवं उत्पादन की मात्रा का भागफल होती है।

अर्थात्

$$AVC = \frac{TVC}{Q}$$

जहाँ AVC = औसत परिवर्तनशील लागत
TVC = कुल परिवर्तनशील लागत
Q = उत्पादन की मात्रा

औसत परिवर्तनशील लागत की प्रकृति उत्पादन में प्रयुक्त परिवर्तनशील साधनों के औसत उत्पादकता पर निर्भर करती है। परिवर्तनशील साधन की अल्पकाल में औसत उत्पादकता आरम्भ में बढ़ती है फिर स्थिर हो जाती है और उसके बाद घटती है। इस प्रकार औसत उत्पादकता वक्र की

आकृति उल्टे U के समान होती है। उत्पादकता एवं लागत में परस्पर विपरीत सम्बन्ध है, जब परिवर्तनशील साधन की औसत उत्पादकता बढ़ती है तब AVC घटती है। जब औसत उत्पादकता स्थिर रहती है तब औसत परिवर्तनशील लागत अपने न्यूनतम बिन्दु पर पहुँकर स्थिर हो जाती है तीसरी अवस्था में जहाँ औसत उत्पादकता घटना प्रारम्भ करती है तब औसत परिवर्तनशील लागत भी बढ़ना प्रारम्भ करती है।

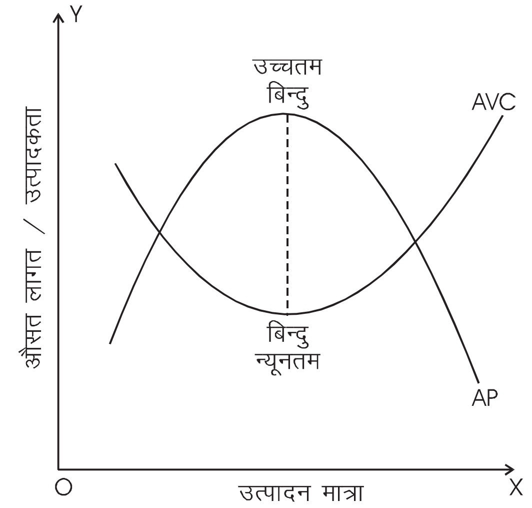

चित्र 4

चित्र 4 में औसत उत्पादकता वक्र एवं औसत परिवर्तनशील लागत के पारस्परिक सम्बन्ध को दिखाया गया है। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि AVCवक्र प्रा रम्भिक अवस्था में इसलिए घटता है क्योंकि प्रारम्भ साधन वृद्धि बढ़ते प्रतिफल देती है। उसके बाद स्थिर प्रतिफल प्राप्त होने की दशा में AVCवक्र अपने न्यूनतम बिन्दु पर पहुंच कर स्थिर हो जाता है। उसके बाद घटते प्रतिफल प्राप्त होने पर AVCवक्र बढ़ना प्रारम्भ करती है।

चित्र 4 में औसत उत्पादकता वक्र एवं औसत परिवर्तनशील लागत का पारस्परिक सम्बन्ध दिखाया गया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि AVC वक्र आरम्भिक अवस्था में इस लिए घटता है क्योंकि प्रारम्भ में साधन उत्पादन वृद्धि बढ़ते प्रतिफल देती है उसके बाद स्थिर प्रतिफल प्राप्त होने की दशा में AVC वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु पर पहुंचकर स्थिर हो जाता है। उसके बाद घटते प्रतिफल प्राप्त होने पर AVC वक्र बढ़ना प्रारम्भ करता है।

चित्र 5 में TCV वक्र की सहायता से AVC वक्र की व्युत्पत्ति दिखाई गई है। विभिन्न उत्पादन स्तरों क्रमश Q_1, Q_2 एवं Q_3 से TVC वक्र पर लम्ब डाल् कर क्रमश K,T,R बिन्दु प्राप्त किए गए हैं।

उत्पादन स्तरों Q_1, Q_2 एवं Q_3 पर क्रमश K,T एवं R बिन्दु प्राप्त किए गये हैं। इन तीनों बिन्दुओं K,T एवं R को मिलाने वाला वक्र ही AVCवक्र है।

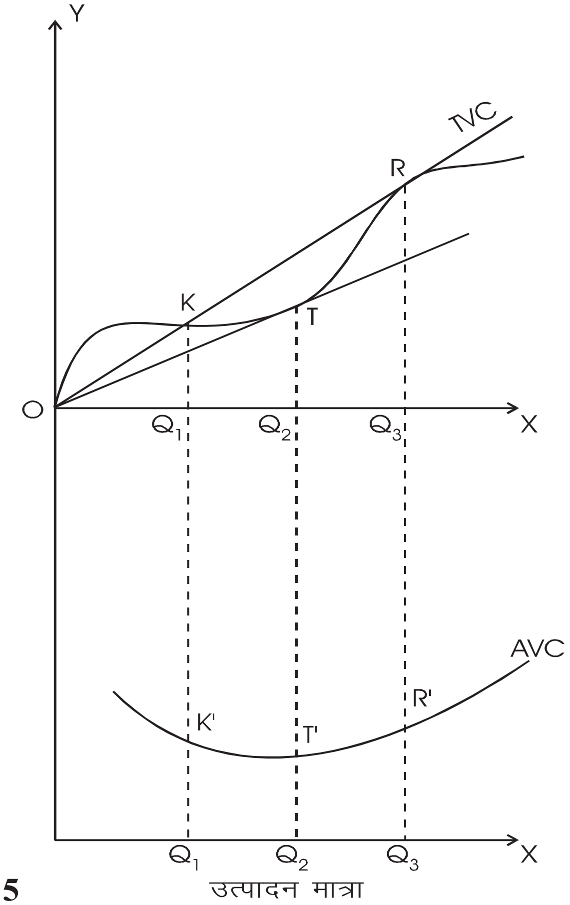

चित्र 5

12.5.3 औसत कुल लागत

औसत कुल लागत अथवा औसत लागत, कुल लागत एवं कुल उत्पादन मात्रा का भाग फल होती है। अर्थात्

$$\text{ATC अथवा AC} = \frac{TC}{Q}$$

जहाँ TC = कुल लागत

Q = उत्पादन की कुल मात्रा

अल्पकाल में,

$$TC = TFC + TVC$$

तथा $ATC = \dfrac{TC}{Q}$

अतः $ATC = \dfrac{TFC + TVC}{Q}$

$$= \frac{TFC}{Q} = \frac{TVC}{Q}$$

$$AC = AFC + AVC$$

इसी प्रकार अल्पकालीन औसत लागत औसत स्थिर लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत का योग होती है।

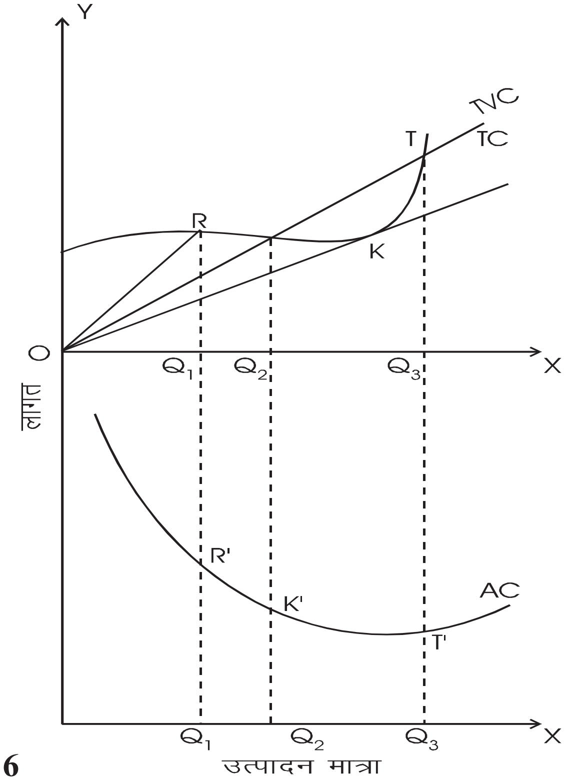

चित्र 6

चित्र 6 में कुल लागत वक्र की सहायता से औसत लागत वक्र की व्युत्पत्ति दिखायी गयी हैं। उत्पादन स्तर Q_1, Q_2, Q_3 से TC वक्र पर लम्ब खींचकर क्रमश R,K एवं T बिन्दु प्राप्त किए गये हैं जिनको मिलाता हूआ वक्र Oऔसत लागत वक्र AC कहलाता है।

12.5.4 सीमान्त लागत

एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने से कुल लागत में जितनी वृद्धि होती है उसे उस इकाई विशेष की सीमान्त लागत कहा जाता है।

$MC_n = TC_n - TC_{(n-1)}$

जहाँ MC_n = nवीं इकाइयों की सीमान्त लागत

TC_n = n इकाइयों की कुल लागत

TC_{n-1} = (n-1) इकाइयों की कुल लागत

हम जानते हैं कि

$TC_n = TVC_n + TFC$

तथा $TC_{n-1} = TVC_{n-1} + TFC$

उपर्युक्त दोनों समीकरणों में इकाइयों की संख्या TFC को प्रभावित नहीं करती क्योंकि TFC उत्पादन के आरम्भ से अन्त तक एक समान एवं अपरिवर्तित रहती है।

अतः $MC_n = TC_n - TC_{n-1}$

$= (TVC_n + TFC) - (TVC_{n-1} + TFC)$

$= (TVC_n + TFC - TVC_{n-1} - TFC)$

$MC_n = TVC_n + TVC_{n-1}$

इस प्रकार सीमान्त लागत परिवर्तनशील लागत पर निर्भर करती है, स्थिर लागत पर नहीं।

अल्पकाल में सीमान्त लागत कुल परिवर्तनशील लागत में वृद्धि के बराबर होती है।

$$MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q} = \frac{\Delta TVC}{\Delta Q}$$

जहाँ TC = कुल लागत में परिवर्तन

ΔTC = कुल परिवर्तनशील लागत में परिवर्तन

ΔQ = कुल उत्पादन में परिवर्तन

चित्र 7 में परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता एवं उत्पादन की सीमान्त लागत के मध्य सम्बन्ध स्पष्ट किया गया है। दोनों में व्युत्क्रम सम्बन्ध पाया जाता है। परिवर्तनशील अनुपात के

नियम से हम जानते हैं कि प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन के प्रयोग की मात्रा में वृद्धि करने पर उस परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता बढ़ती है जिसके कारण उस साधन की

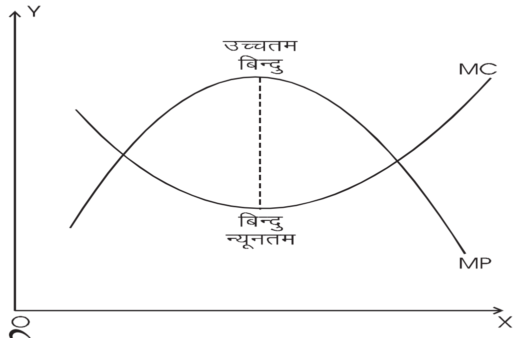

चित्र 7

सीमान्त लागत घटती है। परिवर्तनशील लागत के एक निश्चित मात्रा तक बढ़ जाने पर उस साधन की सीमान्त उत्पादकता अधिकतम होकर स्थिर हो जाती है। इसके कारण सीमान्त लागत न्यूनतम होकर स्थिर हो जाती है। उसके बाद भी परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि सीमान्त उत्पादकता को घटाती है। अर्थात् सीमान्त लागत बढ़ना आरम्भ कर देती है। इस प्रकार सीमान्त लागत वक्र की आकृति अंग्रेजी के अक्षर U के समान होती है।

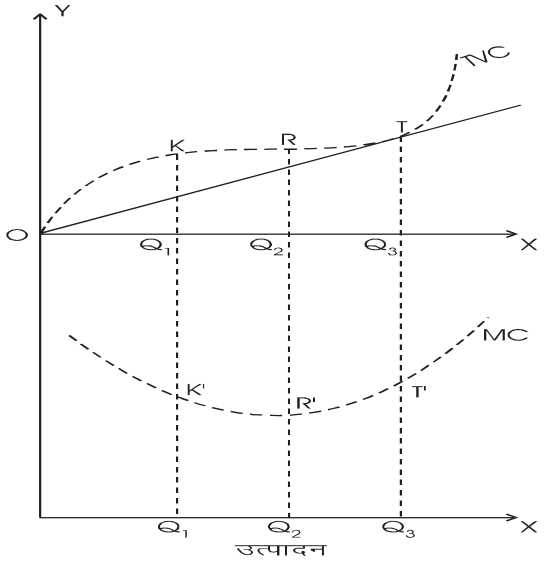

चित्र 8

चित्र 8 में कुल लागत वक्र एवं कुल परिवर्तनशील लागत वक्र द्वारा सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पत्ति समझायी गयी है। प्रत्येक उत्पादन स्तर पर TVC एवं TC रेखाओं का ढाल एक समान होता है। इस तथ्य के आधार पर सीमान्त लागत वक्र को TVC वक्र अथवा TC वक्र के ढाल द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। उत्पादन में वृद्धि होने पर TVC वक्र के ज् बिन्दु तक रेखा का ढाल कम

होता जाता है किन्तु उसके बाद रेखा का ढाल बढ़ता प्रारम्भ हो जाता है। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि सीमान्त लागत वक्र का ढाल Q_2 बिन्दु तक घटता है, बिन्दु Q_2 पर अपने न्यूनतम बिन्दु तक पहुँचता है एवं बिन्दु Q_2 के बाद TVC वक्र का ढाल बढ़ने के कारण MC वक्र का ढाल बढ़ना आरम्भ करता है यही कारण है कि MC वक्र भी U आकृति का होता है।

चित्र 9 में बिन्दु A तक AC वक्र MCवक्र से ऊपर स्थित है बिन्दु A के पष्चात् दोनों वक्र बढ़ रहे हैं किन्तु MC वक्र ACवक्र से ऊँचा है। एक महत्वपूर्ण तथ्य ध्यान रखने योग्य यह है कि औसत लागत के घटने की दशा में हम यह तो बता सकते हें कि सीमान्त लागत औसत लागत से कम है, किन्तु यह नहीं बता सकते कि औसत लागत की घटने की दशा में सीमान्त लागत वक्र घट रहा है, बढ़ रहा है अथवा स्थिर है, क्योंकि घटती औसत लागत दशा में सीमान्त लागत घट सकती है, स्थिर भी हो सकती है एवं बढ़ भी सकती है।

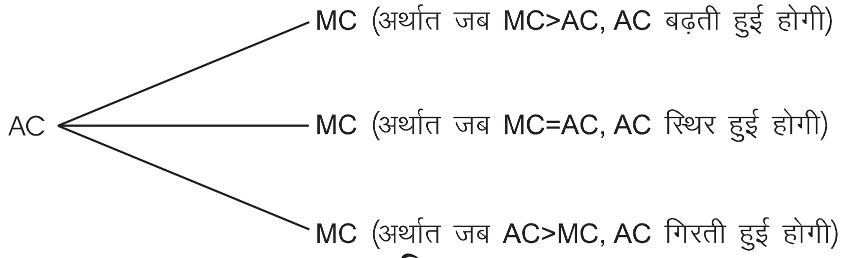

चित्र 9

चित्र 9 में ACवक्र के बिन्दु H तक सीमान्त लागत वक्र घटते हुए अपने न्यूनतम बिन्दु K पर पहुँच जाता है। ACवक्र के H बिन्दु के पष्चात् AC वक्र बिन्दु A तक घटता है किन्तु MC वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु ज्ञ पर पहुँचने के बाद बिन्दु K से A तक बढ़ता है। चित्र 9 में AC एवं MC वक्रों को प्रदर्शित किया गया है परिवर्तनशील अनुपात के नियम के क्रियान्वयन के कारण AC वक्र U आकृति का है। MC वक्र AC वक्र को न्यूनतम बिन्दु A पर काट रहा है। न्यूनतम बिन्दु A से X अक्ष पर खींचा गया लम्ब न्यूनतम है अर्थात् OQ उत्पादन स्तर पर न्यूनतम औसत लागत AQ प्राप्त होती है।

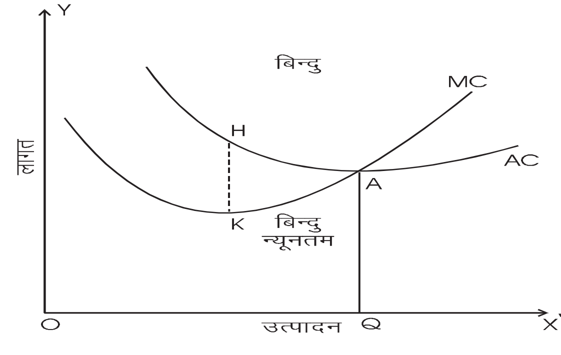

चित्र 9

AC एवं MC के सम्बन्ध को एक गणितीय उदाहरण की सहायता से भी समझा जा सकता है। कल्पना कीजिए, एक फर्म 10 इकाईयों का उत्पादन कर रही है और उनकी औसत लागत 5 रूपये है। यदि वह 11वीं इकाई का उत्पादन करती है जिसकी सीमान्त उत्पादन लागत -

1. यदि 5 रूपये ही हो, तब 11 इकाईयों की औसत लागत 5 रूपये रहेगी अर्थात् यदि MC स्थिर हो तो AC भी स्थिर रहेगी।
2. यदि 5 रूपये के स्थान पर 6 रूपये हो जाए तो ऐसी दशा में 11 इकाईयों की औसत लागत में वृद्धि हो जायेगी, जिसके कारण इस दशा में औसत लागत 5 रूपये से अधिक प्राप्त होगी अर्थात् MC बढ़ने पर ACबढ़ती है।
3. यदि 4 रूपये रह जाए तब 11 इकाईयों की औसत उत्पादकता 5 रूपये से कुछ कम हो जायेगी अर्थात् जब MC, AC से कम होती है तो AC धटती है।

12.6 औसत लागत एवं सीमान्त लागत में सम्बन्ध

मूल्य सिद्धान्त में AC तथा MC का सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ACऔर MC के सम्बन्ध में कुछ मुख्य बातें निम्नलिखित हैं -

1.दोनों की गणना उत्पादन की कुल लागत द्वारा की जाती है।

$$\text{औसत लागत} = \frac{\text{कुल लागत}}{\text{कुल उत्पादन}}$$

$$\text{सीमान्त लागत} = \frac{\text{कुल लागत में परिवर्तन}}{\text{कुल उत्पादन में परिवर्तन}}$$

2.आरम्भ में जब ACवक्र गिरता है तब MC वक्र एक सीमा तक गिरता है। किन्तु एक अवस्था के बाद MC वक्र बढ़ना आरम्भ हो जाता है जबकि ACवक्र गिरता रहता है। इस प्रकार MC सदैव घटती औसत लागत की दशा में औसत लागत से कम होती है ।

3.जब ACन्यूनतम होता है तब MC वक्र ACवक्र को नीचे बिन्दु पर काटता है अर्थात् न्यूनतम औसत लागत सीमान्त लागत के बाराबर होती है।

4.जब ACबढ़ता है तो MC वक्र ACसे ऊपर होता है एवं साथ ही साथ ACवक्र से तीव्र गति से बढ़ता है।

5.घटती औसत लागत की दशा में सीमान्त लागत घट भी सकती है, स्थिर भी हो सकती है एवं बढ़ भी सकती है।

सारणी - 1

TC, TFC, TVC, AFC, AVC तथा MC की गणितीय उदाहरण से व्याख्या

वस्तु की उत्पादन इकाइयां Q	कुल स्थिर लागत TFC (i)	कुल परि. लागत (ii) TVC	कुल लागत TC (iii) =(i)+(ii)	औसत स्थिर लागत AFC = Col. (I)/q	औसत स्थिर लागत AVC = Col. (II)/q	औसत लागत AC = (iv)+(v)	सीमान्त लागत MC
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**
0	200	0	200	00	-	-	-
1	200	180	380	200	180	380	180
2	200	340	540	100	170	270	160
3	200	480	680	66.66	160	226.66	140
4	200	600	800	50.00	150	200.00	120
5	200	740	940	40.00	148	188.00	140
6	200	900	1100	33.33	150	183.33	160
7	200	1080	1280	28.60	154.128	182.88	180
8	200	1300	1500	25.00	162.50	187.50	220
9	200	1560	1760	22.22	173.33	195.55	260
10	200	1860	2040	20.00	186.00	206.00	300

स्पष्टीकरण

उपर्युक्त सारणी में यदि TFC तथा TVC के स्तम्भ दिए हुए हों तब सारणी के शेष स्तम्भ निम्नवत् प्राप्त किये जा सकते हैं -

स्तम्भ 3 -TFC और TVC को प्रत्येक उत्पादन स्तर पर जोड़कर TC प्राप्त की जा सकती है।

स्तम्भ 4 -स्तम्भ 1 की राशि को सम्बन्धित उत्पादन स्तर से भाग देकर प्रत्येक स्तर के लिए AFC प्राप्त की जा सकती है क्योंकि

$$AFC = \frac{TFC}{Q}$$

स्तम्भ 5 -स्तम्भ 2 की राशि को सम्बन्धित उत्पादन स्तर से भाग देकर प्रत्येक उत्पादन के लिए AVCप्राप्त की जा सकती है क्योंकि;

$$AVC \frac{TVC}{Q}$$

स्तम्भ 6 -प्रत्येक उत्पादन स्तर के लिए AVCऔर AVCको जोड़कर AC प्राप्त की जा सकती है क्योंकि AC =AFC+ AVCअर्थात् प्रत्येक उत्पादन स्तर के लिए स्तम्भ 4 और 5 का योग करना चाहिए।

स्तम्भ 7 -स्तम्भ 3 की सहायता से MC की गणना की जाती है। दो क्रमिक उत्पादन स्तरों की TC का अन्तर दूसरी इकाई की सीमान्त लागत को बताती है। जैसे शून्य उत्पादन स्तर पर,

$$TC = 200$$

तथा इकाई उत्पादन स्तर पर

$$TC = 380$$

अतः पहली इकाई की

$$MC = 380 - 200 = 180$$

12.6.1 औसत लागत एवं सीमान्त लागत का गणितीय सम्बन्ध -

माना q उत्पादन स्तर पर औसत लागत = C

अतः q उत्पादन स्तर पर कुल लागत

TC = q x C = उत्पादन मात्रा X औसत लागत

हम जानते हैं कि,

$$AFC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$$

,

आकलनके अनुसार$MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$

$$MC = \frac{\Delta (C.Q.)}{\Delta Q}$$

$$= Q \frac{\Delta c}{\Delta Q} + c \frac{\Delta Q}{\Delta Q}$$

$$= Q \frac{\Delta c}{\Delta Q} + c$$

हम जानते हैं कि $\Delta c/\Delta Q$, AC वक्र के ढाल को बताता है। अतः तीन दशाएँ हो सकती है।

1.जब $\Delta c/\Delta Q < 0$ अर्थात्, AC वक्र का ढाल ऋणात्मक हो, तब

$$MC= Q \frac{\Delta c}{dQ} + c$$

इस समीकरण में घटक $Q(\Delta c/\Delta Q)$ ऋणात्मक होगा जिसके कारण MC औसत लागत c से कम होगा। दूसरे कारण MC औसत लागत c से कम होगा। दूसरे शब्दों में, जब ACवक्र गिर रहा होगा तब सीमान्त लागत औसत लागत से कम होती है।

2.जब $\Delta c/\Delta Q = 0$ अर्थात ACवक्र का ढाल शून्य हो तब

$$MC = Q \frac{\Delta c}{\Delta Q} + c = 0 + c = c$$

दूसरे शब्दों में, ACके न्यूनतम होने की दशा में सीमान्त लागत औसत लागत के बराबर होती है।

3.जब $\Delta c/\Delta Q > 0$ अर्थात् AC वक्र ऊपर बढ़ रहा हो, तब

$$MC = Q \frac{\Delta c}{\Delta Q} + c$$

इस समीकरण में घटक $Q(\Delta c/\Delta Q)$ धनात्मक होगा जिसके कारण MC औसत लागत C से अधिक हो जायेगा। दूसरे शब्दों में, जब AC वक्र ऊपर की ओर बढ़ता है तब सीमान्त लागत औसत लागत से अधिक हो जाती है।

इस प्रकार गणितीय रीति से भी औसत लागत और सीमान्त लागत के सम्बन्ध को प्राप्त किया जा सकता है।

12.6.2 MC वक्र का AVCसे सम्बन्ध

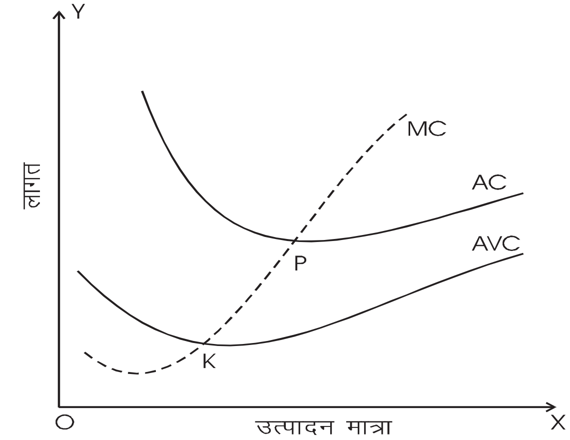

चित्र 11

चित्र 11 में इस सम्बन्ध को बताया गया है। हम AC वक्र तथा MC वक्र का सम्बन्ध पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं। MC वक्र का AVC के साथ भी वही सम्बन्ध होता है जो ACवक्र के साथ होता है।

दूसरे शब्दों में, MC वक्र AVCवक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु K पर काटता है। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि MC वक्र AVCवक्र के न्यूनतम बिन्दु K में से ACवक्र के न्यूनतम बिन्दु P से पहले गुजरता है। इसका कारण यह है कि AC वक्र, AVC वक्र तथा AFCवक्र दोनों का जोड़ होता है और जब AVCवक्र अपने न्यूनतम बिन्दु पर होता है उस समय भी AFC वक्र नीचे गिर रहा होता है। अतः ACवक्र का न्यूनतम बिन्दु AVCवक्र की तुलना में बाद में आता है। यही कारण है कि बिन्दु ज्ञ, बिन्दु च् के बायें स्थित है। इन बिन्दुओं के बाद MC वक्र तीब्रता से बढ़ता है तथा ACवक्र तथा AVC वक्र दोनों से ऊँचा हो जाता है।

अल्पकालीन लागत वक्र: औसत स्थिर लागत, औसत परिवर्तनशील , सीमान्त लागत एवं औसत कुल लागत वक्रों का एक साथ चित्र द्वारा निरूपण:-

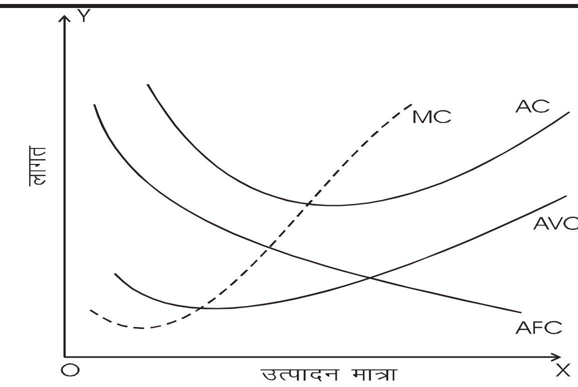

चित्र 12

सभी अल्पकालीन लागत वक्रों की व्याख्या के बाद अब हम इस स्थिति में हैं कि एक ही चित्र में इन सभी के सम्बन्धों को दर्षा सकें। यहाँ एक बात ध्यान देने की है कि जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे ACतथा AVCवक्र का अन्तर घटता जाता है जो घटती हुई AFCका सूचक है MC वक्र AVCतथा ACवक्रों के न्यूनतम बिन्दुओं से गुजरता है।

12.7 लघु उत्तरीय प्रश्न

1.किसी वस्तु की मौद्रिक लागत में निम्नलिखित मदें शामिल की जाती है -

A. दृश्य लागतें B. केवल अदृश्य लागतें

C. सामान्य लाभ D. उपर्युक्त सभी

2.निम्नलिखित में से किस लागत वक्र का आकार न् अक्षर की भांति होता है ?

a. औसत लागत
b. औसत परिवर्तनशील लागत
c. सीमान्त लागत
d. उपर्युक्त सभी

3.दृश्य एवं अदृश्य लागतें अंग हैं -

a. मौद्रिक लागत का
b. वास्तविक लागत का
c. अवसर लागत का
d. उपर्युक्त सभी

4.अल्पकाल में ,

a. सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं।
b. साधन स्थिर एवं परिवर्तनशील दोनों होते हैं।
c. सभी साधन स्थिर होते हैं।
d. उपर्युक्त सभी।

5.जब ACवक्र गिर रहा होता है तब सीमान्त लागत औसत लागत से -

a. कम होती है।

b. अधिक होती है।

c. बराबर होती है।

d. उपर्युक्त सभी दशाएँ सम्भव।

6.सीमान्त लागत को निम्नलिखित सूत्र से व्यक्त किया जा सकता है -

A. $MC = TC_{n-1} – TC_{n-1}$

B. $MCn = TC_n – TC_{n-1}$

C. $MC_n = TC/n$

D. $MC = TC – AC$

7.किसी वस्तु की एक निश्चित मात्रा का उत्पादन करने पर फर्म को जितना पड़ता है, उसे फर्म की

a. औसत लागत कहते हैं।

b. कुल लागत कहते हैं।

c. सीमान्त लागत कहते हैं।

d. अवसर लागत कहते हैं।

12.8 दीर्घकालीन लागत

दीर्घकालीन वह समयावधि है जिसेमं उत्पादक प्रत्येक उत्पत्ति के साधन को इच्छानुसार एवं आवष्यकतानुसार परिवर्तित कर सकता है। दीर्घकाल में उत्पत्ति का प्रत्येक साधन परिवर्तनशील होता है तथा कोई साधन स्थिर नहीं होता। दीर्घकाल में उत्पादन के प्लाण्ट का आकार भी परिवर्तनीय होता है। जैसा कि हम पहले अध्ययन कर चुके हैं कि अल्पकाल में प्लाण्ट का आकार स्थिर रहता है जिसे घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता। इसके विपरीत, दीर्घकाल में प्लाण्ट का आकार बदला जा सकता है अथवा उत्पादक एक प्लाण्ट को छोड़कर अपेक्षाकृत अधिक कुशल प्लाण्ट को अपना सकता है। प्रत्येक प्लाण्ट उत्पादन की एक निश्चित सीमा तक उपयोगी है। अतः एक फर्म उत्पादन के लिए उस प्लाण्ट का उस बिन्दु तक प्रयोग करेगी जहाँ तक उत्पाद में वृद्धि के साथ उत्पादन लागत में कमी होती जाय। दीर्घकाल में यदि कोई अन्य प्लाण्ट पहले से स्थापित प्लाण्ट की तुलना में किसी उत्पादन स्तर पर कम लागत को सम्भव बनाता है तब ऐसी दशा में उत्पादक कम लागत देने वाले प्लाण्ट पर स्थानान्तरित हो जायेगा।

12.8.1 दीर्घकालीन औसत लागत

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र, दीर्घकालीन कुल लागत वक्र की सहायता से उत्पन्न किया जाता है।

$$LAC = \frac{LTC}{Q}$$

जहाँ

LAC = दीर्घकालीन औसत लागत

LTC = दीर्घकालीन कुल लागत

Q = उत्पादन की मात्रा

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र उत्पादन की विभिन्न उत्पादन मात्राओं की न्यूनतम सम्भव औसत लागत को व्यक्त करता है।

प्रो0 लैफ्टविच के शब्दों में, ''दीर्घकाल एक वैकल्पिक अल्पकालीन स्थितियों का एक समूह है जिसमें से किसी भी स्थिति को फर्म अपना सकती है। एक दिए हुए समय में, हम वैकल्पिक उत्पादन स्तरों को विचार करते हुए, जो तत्कालीन यन्त्र की क्षमता के आधार पर प्राप्त किए जा सकते हैं। एक अल्पकालीन दृष्टिकोण अपना सकते हैं। फिर भी, एक दीर्घकालीन नियोजन की दृष्टि से फर्म की अल्पकालीन स्थिति को बदल ने के लिए सुविधाएं होगी। दीर्घकाल की तुलना चल चित्र के पूर्णकार्य श्रृंखला से की जा सकती है। यदि हम चल चित्र को रोक दे और केवल एक ही दृश्य की ओर देखें तो यह अल्पकाल की अवधारणा होगी। यदि दीर्घकाल में किसी वस्तु की मांग बढ़ जाये तब ऐसी दशा में उत्पादक बढ़ी मांग को पूरा करने के लिए अपने वर्तमान प्लाण्ट का विस्तार कर सकते हैं अथवा प्लाण्ट को ही बदल सकते हैं। प्रत्येक प्लाण्ट उत्पादन की एक निश्चित सीमा तक ही उपयोगी है। ऐसी दशा में फर्म किसी प्लाण्ट विशेष का उसी अवस्था तक प्रयोग करेगी जहाँ तक उत्पादन मात्रा मे वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन लागत में कमी होती जाए।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की व्याख्या सबसे सरल परिस्थिति में करने के लिए हम यह मान लेते हैं कि किसी उद्योग में प्लाण्ट केवल तीन भिन्न आकारों में उपलब्ध है। दूसरे शब्दों में, स्थिर पूंजी, जो प्लाण्ट के रूप में उपलब्ध होती है, केवल तीन आकारों - सूक्ष्म, मध्यम, तथा वृहत में उद्योग में विद्यमान है। चित्र 13 में इस स्थिति की व्याख्या दिखायी गई है। सबसे कम आकार वाले प्लाण्ट का अल्पकालीन औसत लागत वक्र SACमध्यम आकार वाले प्लाण्ट का SAC_2तथा दीर्घ आकार वाले प्लाण्ट का SAC_3दिखाया गया है।

दीर्घकाल में एक उद्यमी तीन वैकल्पिक विनियोगों में से किसी एक चुन सकता है। चित्र में तीनों विकल्पों को तीन अल्पकालीन लागत वक्रों द्वारा दिखाया गया है। उद्यमी तीनों प्लाण्टों में से किसका चुनाव करेगा यह उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि फर्म उत्पादन की OX_1 मात्रा उत्पादित करती है तब न्यूनतम आकार वाले प्लाण्ट का चुनाव किया जायेगा। यदि उत्पादन मात्रा OX_2 हो जाये तब उत्पादक पहले प्लाण्ट को छोड़कर मध्यम आकार वाले प्लाण्ट पर पहुँच जायेगा क्योंकि OX_2 उत्पादन यदि उद्यमी पहले प्लाण्ट पर ही करता है तो औसत लागत OC_1 आती है

जबकि उतनी ही मात्रा का उत्पादन उद्यमी दूसरे मध्यम आकार वाले प्लाण्ट के साथ OC_2 औसत लागत पर कर सकता है।

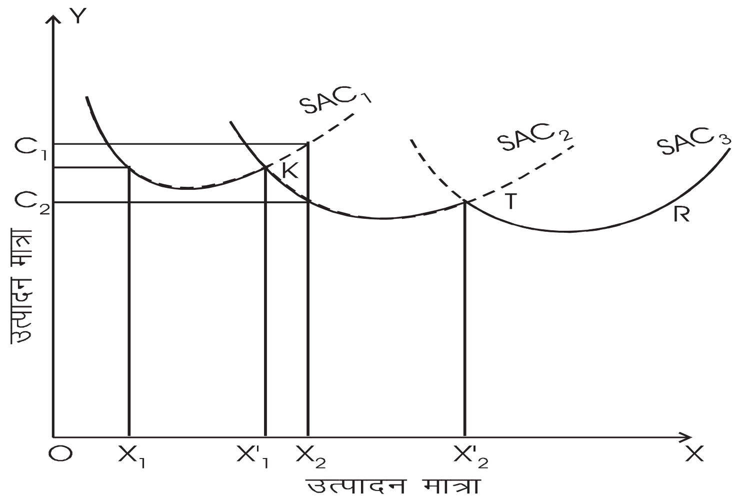

चित्र 13 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (तीन उपलब्ध प्लाण्टों की दशा में)

अतः उद्यमी के लिए ऊँचे लागत वाले प्लाण्ट से कम लागत वाले प्लाण्ट पर स्थानान्तरित होना हितकर रहेगा। उत्पादन स्तर OX_1 तक उद्यमी न्यूनतम आकार वाले प्लाण्ट के साथ उत्पादन करेगा, क्योंकि इस उत्पादन स्तर तक पहले प्लाण्ट से न्यूनतम लागत प्राप्त हो रही है। जब उत्पादन स्तर OX_1 हो जाता है तब न्यूनतम एवं मध्यम दोनों आकार वाले प्लाण्ट एक समान लागत KX_1 देते हैं। इस बिन्दु पर उद्यमी उदासीन रहेगा कि वह किसका चुनाव करें। किन्तु जैसे ही उत्पादन OX_1 से अधिक होगा न्यूनतम आकार वाला प्लाण्ट ऊँची लागत वाला प्लाण्ट बन जायेगा तथा उद्यमी कम लागत वाले प्लाण्ट SAC_2 पर स्थानान्तरित हो जायेगा। इसी प्रकार उद्यमी OX_2 मात्रा तक मध्यम आकार वाले प्लाण्ट का उपयोग करेगा किन्तु OX_2 से अधिक उत्पादन स्तर पर उद्यमी वृहत आकार वाले प्लाण्ट SAC_2पर स्थानारन्तरित कर दिया जायेगा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दीर्घकाल में फर्म को प्लाण्ट के आकार को बदल ने की स्वतन्त्रता होती है तथा दीर्घकाल में फर्म किसी उत्पादन स्तर को उत्पादित करने के लिए उस प्लाण्ट का प्रयोग करेगी जो न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादन कर सके। ऐसा दीर्घकालीन औसत लागत वक्र चित्र में च्ज्ञTR द्वारा दिखाया गया है। SAC_1, SAC_2 तथा SAC_3 के बिन्दुकित रेखाओं का दीर्घकालीन औसत लागत विश्ले षण में कोई महत्व नहीं है क्योंकि प्लाण्टों के इन भागों पर उत्पादन करने के बजाय उद्यमी प्लाण्ट के आकार को ही बदल देता है। ऐसी दशा में जिसमें उद्यमी को दीर्घकाल में तीन (अथवा बहुत कम) प्लाण्ट उपलब्ध होते हैं, दीर्घकालीन औसत लागत वक्र सीधा होकर उतार-चढ़ाव वाला होता है। देखें चित्र में PKTR वक्र । किन्तु वास्तव में उद्यमी का दीर्घकाल में चुनाव तीन प्लाण्टों तक ही

केन्द्रित नहीं होता बल्कि उसके समक्ष बड़ी संख्या में विभिन्न प्रकार आकार वाले प्लाण्ट उपस्थिति है तथा उसमें से किसी एक का चुनाव करता है। इसी स्थिति की व्याख्या चित्र 14 में की गई है।

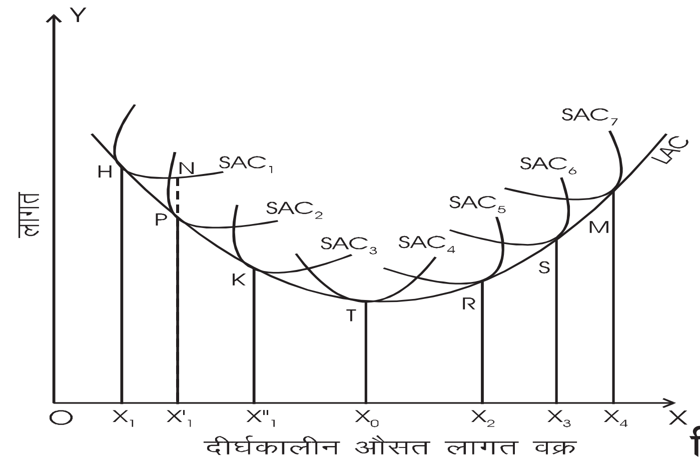

चित्र 14

चित्र में अनेक प्लाण्ट दिखाये गये हैं। उत्पादन की OX_1 मात्रा के उत्पादन के लिए फर्म SAC_1 के बिन्दु H का चुनाव करेगी क्योंकि इस प्लाण्ट से इसी मात्रा पर न्यूनतम लागत प्राप्त रही है। यह SAC_2 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को बिन्दु H पर स्पर्श करता है। उत्पादन की OX_1 मात्रा होने पर SAC1 लागत वाला प्लाण्ट NX_1 लागत देता है जबकि SAC_2 पर उत्पादन की समान मात्रा PX_1 की लागत प्राप्त की जा सकती है। अतः OX_1 उत्पादन मात्रा के लिए उत्पादक SAC_2 पर स्थानान्तरित हो जायेगा। ठीक उसी प्रकार OX_1, OX_0, OX_2, OX_3 तथा OX_4 उत्पादन करेगा। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र LAC इन विभिन्न प्लाण्टों को दर्शाने वाले अल्पकालीन औसत वक्रों को कहीं न कहीं एक बिन्दु पर स्पर्श अवश्य करेगा। इसलिए दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को आवरण भी कहा जाता है क्योंकि यह अनेक अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को घेरता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि LAC वक्र SAC को केवल स्पर्श करता है, SAC वक्र को किसी भी बिन्दु पर काटता नहीं है। इसका कारण यह है कि किसी भी उत्पादन मात्रा पर दीर्घकालीन औसत लागत, अल्पकालीन औसत लागत से अधिक नहीं हो सकता। दीर्घकाल में उत्पादक प्लाण्ट का समायोजन एवं चुनाव इस प्रकार करता है कि उत्पादन लागत को घटाया जा सके। दूसरे शब्दों में, ऐसी कोई भी दशा नहीं हो सकती जिसमें अल्पकालीन औसत लागत, दीर्घकालीन औसत लागत से कम हो अर्थात् सभी अल्पकालीन औसत लागत वक्र LAC से ऊपर होंगे। दीर्घकाल में उत्पादन करते समय उत्पादक वस्तुतः किसी अल्पकालीन प्लाण्ट पर ही क्रियाशील होता है। अतः प्रत्येक उत्पादन स्तर पर उससे सम्बन्धित अल्पकालीन औसत लागत वक्र किसी न किसी बिन्दु पर LAC को अवश्य स्पर्श करेगा।

LAC वक्र की दूसरी विशेषता दीर्घकालीन पैमाने के प्रतिफलों के कारण उपस्थिति होती है। पैमाने के प्रतिफलों की मान्यता की दशा में दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC वक्र) अंग्रेजी के अक्षर

U आकार का होता है। चित्र 14 में LAC को U आकार का दिखाया गया है। LAC अपने न्यूनतम बिन्दु ज् पर SAC_4 को उसके न्यूनतम पर स्पर्श करता है। यह स्थिर पैमाने के प्रतिफल की दशा है। यह स्थिति प्लाण्ट के अनुकूलतम आकार को बताती है। LAC वक्र बिन्दु H से T तक बायें से दायें नीचे गिर रहा है। इस गिरते हुए भाग पर LACसम्बन्धित SACवक्रों को उनके गिरते हुए भाग पर ही स्पर्श करता है। चित्र में जब तक उत्पादन की मात्रा OX_0 से कम है तब तक LAC अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को गिरते भागों के किसी बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है। दूसरे शब्दों में, जब उत्पादन मात्रा OX_0 से कम हो तब प्लाण्ट को न्यूनतम लागत से कम पर संचालित करना लाभप्रद होगा। इसके विपरीत, जब LAC बढ़ता है तब यह अल्पकालीन औसत वक्रों को बढ़ते भागों के किसी बिन्दु पर स्पर्श करेगा। दूसरे शब्दों में, यदि उत्पादन मात्रा OX0 से अधिक है तब प्लाण्ट को अनुकूलतम क्षमता से अधिक प्रयोग करना लाभप्रद होगा। देखें चित्र 14 में बिन्दु R, S तथा M की दशा। इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु पर स्पर्श नहीं करता, केवल अनुकूलतम प्लाण्ट पर वह SACके न्यूनतम बिन्दु पर उसे स्पर्श करता है। यही कारण है कि LAC वक्र U आकार का होता है।

12.8.2 दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र

दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पत्ति दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की सहायता से की जा सकती है जो सम्बन्ध अल्पकालीन सीमान्त लागत एवं अल्पकालीन औसत लागत के मध्य पाया जाता है ठीक वही सम्बन्ध दीर्घकालीन सीमान्त लागत एवं दीर्घकालीन औसत लागत के मध्य भी उपस्थित होता है। चित्र 15 में इस सम्बन्ध को दर्शाया गया है।

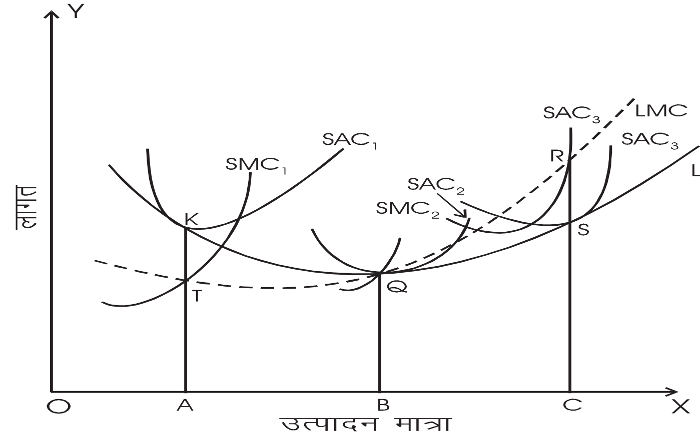

चित्र 15 - दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पत्ति

जहाँ कहीं भी SACवक्र LAC वक्र को स्पर्श करता है। वहाँ उससे सम्बन्धित क्रमश SMC तथा स्डब् परस्पर बराबर होते हैं। तब तक LAC वक्र नीचे गिर रहा होता है तब तक SMC तथा स्डब् की यह समानता SACतथा LAC वक्रों के स्पर्श बिन्दु से नीचे होती है। (देखें बिन्दु K तथा T)।

प्लाण्ट के अनुकूलतम आकार पर जहाँ LAC तथा SAC दोनों अपने न्यूनतम बिन्दुओं पर परस्पर स्पर्श करते हैं, वहाँ LMC तथा SMC परस्पर इस प्रकार बराबर होती है कि LMC = SMC = LAC= SAC(देखें बिन्दु Q)। प्लाण्ट इस न्यूनतम आकार बिन्दु के बाद SMC तथा SMV की समानता का बिन्दु SAC और LACके स्पर्श बिन्दु से ऊपर स्थित होता है। (देखें बिन्दु R तथा S) इस प्रकार LACतथा LMC में वही सम्बन्ध पाया जाता है जो SAC तथा SMC में अर्थात्

यदि LAC > LMC वक्र LACनीचे गिरेगा।
यदि LAC = LMC वक्र LAC स्थिर रहेगा।
यदि LMC > LAC वक्र LAC ऊपर की ओर बढ़ता हुआ होगा।

12.8.3 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की आकृति: बचतें एवं हानियां

अल्पकालीन औसत लागत वक्र तथा दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC Curve) दोनों की आकृति अंग्रेजी के अक्षर न् आकार की होती है। आकृति एक समान होते हुए भी उसका कारण दोनों वक्रों के लिए भिन्न-भिन्न होता है। SACकी आकृति न् आकृति का कारण परिवर्तनशील अनुपात का नियम है जबकि LACकी न् आकृति का कारण पैमाने के प्रतिफल होते हैं। दीर्घकाल में उत्पत्ति का कोई भी साधन स्थिर नहीं होता। उत्पादक दीर्घकाल में आवष्यकतानुसार उत्पादन के पैमाने को भी परिवतर्तित कर सकता है। पैमाने के बढ़ते एवं घटते प्रतिफल तथा उनके कारण उत्पन्न बचतें एवं हानियां दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को न् आकृति प्रदान करते हैं।

12.8.4 पैमाने की बचतें

दीर्घकाल में उत्पादक को उत्पादन आकार के विस्तृत होने के कारण, संगठन तथा उत्पादन तकनीक में सुधार होने के कारण विभिन्न प्रकार की बचतें प्राप्त होती है, जिन्हें दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

1. आन्तरिक बचतें
2. बाह्य बचतें।

12.8.5 आन्तरिक बचतें

आन्तरिक बचतें वह बचतें हैं जो किसी व्यक्तिगत फर्म के विस्तार के कारण उपस्थित होती हैं। जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा बढ़ती जाती है आन्तरिक बचतें फर्म के अन्दर ही उपस्थित होती है। आन्तरिक बचतें, इस प्रकार फर्म का आकार एक फलन है। उत्पादन के आकार में वृद्धि के कारण फर्म सभी उत्पत्ति के साधनों को विशिष्टीकरण नीति के अन्तर्गत अधिक कुशलता के साथ प्रयोग कर सकती है। श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण के प्रयोग से आन्तरिक बचतें उपस्थिति हैं जिससे दीर्घकालीन औसत लागत घट जाती है। प्रो0 कैल्डोर तथा श्रीमती जॉन राबिन्सन अर्थषास्त्रियों ने साधनों की अविभाज्यता को आन्तरिक बचतें उत्पन्न करने का कारण माना है। उनके अनुसार

उत्पत्ति के कुछ साधन अविभाज्य होते हैं तथा उन्हें छोटी इकाइयों में प्रयोग नहीं किया जा सकता। जैसे-जैसे उत्पादन मात्रा को बढ़ाया जाता है। वैसे-वैसे इन अविभाज्य साधनों को अनुकूलतम प्रयोग सम्भव हो पाता है जिसके कारण औसत लागत घटने लगती है। इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण के कारण बढ़ती हुई श्रम की सीमान्त उत्पादकता, उचित प्लाण्ट का प्रयोग होने के कारण उत्पन्न तकनीकी बचतें, अविभाज्य साधनों का पूर्ण उपयोग , बड़े पैमाने पर उत्पादन के कारण कम लागत पर उपलब्ध कच्चा माल आदि आन्तरिक बचतें उत्पन्न करते है। इन्हीं आन्तरिक बचतों के कारण LAC गिरने लगती है।

12.8.6 बाह्य बचतें

बाह्य बचतें वे बचतें हैं जो उद्योग के विस्तार के कारण उपस्थित होती हैं तथा जिनका लाभ एक या दो फर्मों तक केन्द्रित न होकर उद्योग की सभी फर्मों के लिए समान रूप से होता है। प्रो0 मार्षY ने बाह्य बचतों की विचारधारा प्रस्तुत की थी। उनके विचार में बाह्य बचतें उद्योग के आकार का फलन है। इस प्रकार बाह्य बचतें उद्योग की सभी फर्मों द्वारा चाहे वह किसी भी आकार की क्यों न हो - समान रूप से प्राप्त की जा सकती है। जैकब वाइनर बाह्य बचतों को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया है।

''बाहरी बचतें वे बचते हैं जो विशेष प्रतिष्ठानों को सम्पूर्ण उद्योग की उत्पादन मात्रा के विस्तार के कारण प्राप्त होती है तथा जो उनके व्यक्तिगत उत्पादन मात्रा से स्वतन्त्र होती है।''

दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि जब उत्पादन मात्रा में वृद्धि की जाती है तो बाह्य बचतों के कारण प्रत्येक फर्म का लागत वक्र नीचे स्थानान्तरित हो जाता है।

संक्षेप में, आन्तरिक बचतों को निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. श्रम विभाजन एंव विशिष्टीकरण की बचतें
2. तकनीकी बचतें
    - (i) प्लाण्ट का अनुकूलतम प्रयोग
    - (ii) अविभाज्य साधनों का पूर्ण उपयोग
    - (iii) उत्पादन प्रक्रिया में बचे पदार्थ का प्रयोग करके

सम्बद्ध प्रक्रियाएं आरम्भ करके - दो पृथक-पृथक प्रक्रियाओं को, जो भिन्न-भिन्न स्थानों पर विभिन्न उद्योगों द्वारा सम्पन्न की जाती थी, एक ही उद्योग के अन्तर्गत दो विभागों में करने से यातायात आदि के रूप में बचतें प्राप्त की जा सकती है।

3. प्रबन्धकीय बचतें

(i) कार्यकुशलता में वृद्धि हेतु प्रोत्साहन देकर

(ii) कार्यात्मक विशिष्टीकरण करके

4.विपणन की बचतें

5.वित्तीय बचतें

6.जोखिम सम्बन्धी बचतें - एक साथ कई वस्तुओं का उत्पादन करके हानि की सम्भावना को न्यूनतम करना।

बाहरी बचतों को निम्नलिखित रूप में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है।

1.कुशलश्रम का सस्ती दर पर उपलब्ध होना क्योंकि उत्पादकों के मध्य प्रतियोगिता कम हो जाती है तथा वे योग्य श्रमिकों को सस्ती दर पर प्राप्त करने में सफल हो जाते।

2.परिवहन तथा संचार के साधनों का सदुपयोगी विकास होने से यातायात लागत न्यूनतम हो जाती है।

3.वित्तीय संस्थाओं का विकास - सस्ती दर पर साख उपलब्ध ता।

4.एक क्षेत्र में अनेक उद्योगों का विकास कच्चे माल की सहज उपलब्ध ता।

5.उचित प्रशिक्षण द्वारा श्रमिक की कार्यकुशलता में वृद्धि।

6.अनुसन्धान एवं व्यावसायिक पत्रिकाओं से सूचना सम्बन्धी बचतों की प्राप्ति।

12.8.7 पैमाने की हानियां

एक सीमा के बाद जब उत्पादन मात्रा में वृद्धि की जाती है तो दीर्घकालीन औसत वक्र ऊपर की ओर बढ़ना आरम्भ कर देता है LAC की इस प्रवृत्ति का कारण यह है कि एक उत्पादन से हानियां उत्पन्न होने लगती है। यही कारण है कि कोई भी फर्म असीमित मात्र तक अपनी उत्पादन गति को कहीं बढ़ा सकता।

पैमाने की हानियां दो प्रकार की होती हैं:-

1. आन्तरिक हानियां

2.बाह्य हानियां

आन्तरिक हानियों के उपस्थिति होने का मुख्य कारण है कि जब उत्पादन का विस्तार होता है तो विस्तृत उत्पादन संगठन को नियन्त्रण में रखना कठिन हो जाता है। बड़े संगठन की विभिन्न इकाइयों में सामंजस्यता स्थापित करना प्रबन्ध तन्त्र के लिए असम्भव हो जाता हैं निरीक्षण कार्य अवरूद्ध हो जाता है, जिसके कारण उत्पादन लागत बढ़ने लगती है क्योंकि ऐसी दशा में साधनों का कुशलतम प्रयोग सम्भव नहीं हो पाता। इस प्रकार एक बिन्दु के बाद LAC वक्र ऊपर चढ़ने लगता है जो उत्पादन की अमितव्ययी दशा को सूचित करता है।

बाहरी हानियां मुख्यतः उद्योग के विस्तार के कारण विभिन्न साधनों की बढ़ती हुई मांग के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। जब उद्योग का विस्तार होता है तब कुछ उत्पत्ति के साधनों की मांग बढ़ जाने के कारण वे दुर्लभ हो जाते हैं जिसके कारण उनकी कीमतों में वृद्धि हो जाती है। साधनों की बढ़ती हुई कीमत समान रूप से उद्योगों की सभी फर्मो के लागत वक्रों को समान रूप से उठा देगी। साधनों की सीमितता उद्योग की फमों के मध्य स्पर्धा उत्पन्न करेगी क्योंकि प्रत्येक फर्म दुर्लभ

साधनों को अपने उत्पादन में आकर्षित करने के लिए उन साधनों को ऊँचा मूल्य देकर दूसरी फर्म से तोड़ने का प्रयास करेगी।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उत्पादन के एक सीमा के बाद विस्तार से आन्तरिक एवं बाह्य हानियां उत्पन्न होती है जिसके सम्मिलित प्रभाव से दीर्घकालीन औसत लागत बढ़ने लगती है।
उत्पादन के बचतों एवं हानियों के कारण LAC वक्र विभिन्न आकृतियाँ ले सकता है,जिनकी व्याख्या चित्र 16 में की गई है।
चित्र के भाग A में पैमाने की बचतें लगभग नगण्य है तथा पैमाने की हानियां मुख्यतः उपस्थित है जिसके कारण LACवक्र उत्पादन की बहुत कम मात्रा (चित्र में OX) के बाद ही बढ़ना आरम्भ कर दिया।

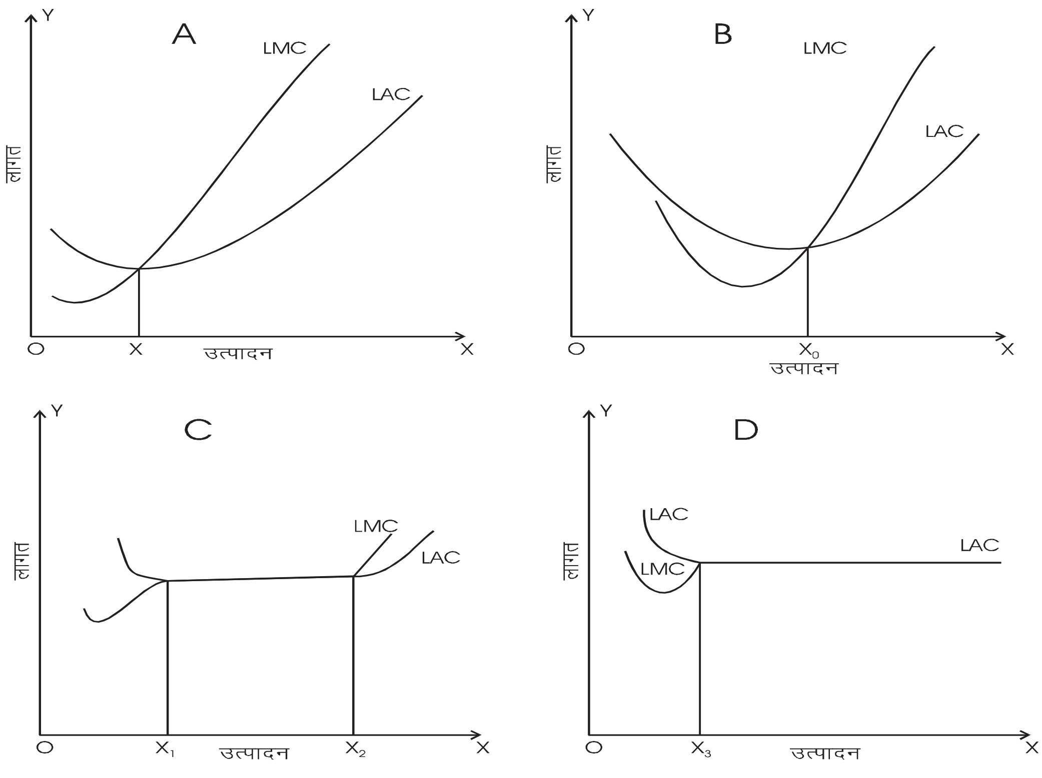

चित्र संख्या 16 में LACकी विभिन्न एकाइयां

चित्र के भाग B में पैमाने की बचतें उत्पादन की अधिक मात्रा तक (चित्र में OX_0) उपलब्ध होती है जिसके कारण LAC वक्र काफी समय तक नीचे गिरता हुआ प्राप्त होता है।

चित्र के भाग C में पैमाने के स्थिर प्रतिफल एक लम्बी उत्पादन मात्रा तक उपस्थित है जिसके कारण उत्पादन मात्रा तक उपस्थित है जिसके कारण उत्पादन की OX_2 तथा OX_1 मात्रा के मध्य LAC वक्र अक्ष-X के समानान्तर एक पड़ी रेखा के रूप में प्राप्त होता है।

चित्र के भाग D में उत्पादन की OX3 मात्रा के बाद उत्पादन की औसत लागत स्थिर है जिसके कारण LAC वक्र स्थिर है तथा इस वक्र में कोई भी बढ़ता हुआ भाग प्राप्त नहीं होता।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की आकृति के सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने योग्य यह है कि LACवक्र SACवक्र की तुलना में अधिक चपटा होता है। इसका कारण स्थिर पैमाने के प्रतिफल का उपस्थित होना है। जहाँ पैमाने की बचतें, हानियों के बराबर होती है। दूसरे शब्दों में, LAC वक्र उस भाग में अधिक चपटा होता है जहाँ उत्पादन की मितव्ययताएँ एक-दूसरे को संतुलित करती है।

12.9 लघु उत्तरीय प्रश्न

8. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की न् आकृति का कारण है -
   a. परिवर्तनशील अनुपात का नियम
   b. पैमाने के प्रतिफल
   c. उत्पत्ति ह्रास नियम
   d. उपर्युक्त सभी

9.दीर्घकालीन औसत लागत वक्र उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओं को उत्पन्न करने की प्रति इकाई -
   a. अधिकतम लागत को बताती है।
   b. न्यूनतम सम्भव लागत को बताती है।
   c. बढ़ती हुई लागत को बताती है।
   d. उपर्युक्त में से कोई नहीं।

10.दीर्घकालीन औसत लागत वक्र -
   a. फर्म का नियोजन वक्र कहा जाता है।
   b. U आकार का होता है।
   c. सभी अल्पकालीन औसत लागत वक्र को सदैव इसक न्यूनतम बिन्दु पर स्पर्श नहीं करेगा।
   d. उपर्युक्त सभी।

11.दीर्घकाल में औसत लागत तथा सीमान्त लागत का -
   a. वही सम्बन्ध है जो अल्पकाल में होता हैं।
   b. सम्बन्ध अल्पकाल से भिन्न होता है।
   c. सम्बन्ध बदलता रहता है।
   d. उपर्युक्त में से कोई नहीं।

12.कौन सा कथन सत्य है -

a. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र आवरण वक्र होता है।

b. अल्पकालीन औसत लागत वक्र आवरण वक्र होता है।

c. औसत परिवर्तनशील लागत वक्र आवरण वक्र होता है।

d. सीमान्त लागत (MC) वक्र आवरण वक्र होता है।

13.जब फर्म समान्य क्षमता से अधिक उत्पादन करती है तो उसका AVCवक्र -

a. नीचे दायी ओर गिरता है।

b. तेजी से ऊपर की ओर बढ़ता है।

c. धीरे से ऊपर बढ़ता है।

d. स्थिर रहता है।

14.निम्न में से किस वक्र को एनवYफ वक्र कहा जाता है -

A. SAC

B. LAC

C. SFC

D. AVC

12.10 सारांश

- उत्पादन लागत की प्रमुख अवधारणा तीन प्रकार की होती है, 1. मौद्रिक लागत, 2. वास्तविक लागत, 3. अवसर लागत
- दृश्य लागतें, अदृश्य लागतें तथा सामान्य लाभ मौद्रिक लागत के भाग हैं।
- वास्तविक लागतों से अभिप्राय उस मेहनत, प्रयास, त्याग व कष्ट से है जिससे किसी वस्तु का उत्पादन किया जाता है।
- किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करने में आने वाली अवसर लागत से तात्पर्य दूसरी वस्तु की उस उत्पादन मात्रा से है जिसके उत्पादन का परित्याग किया जा रहा है।
- कुल लागत के दो भाग स्थिर लागत व परिवर्तनशील लागत है।
- उत्पादन में वृद्धि के साथ कुल लागत में प्रति इकाई स्थिर लागत का अंश घटता व परिवर्तनशील लागत का अंश बढ़ता जाता है।
- सीमान्त लागत का अभिप्राय वस्तु की अन्तिम इकाई की उत्पादन लागत से है।

12.11 शब्दावली

उत्पादन लागत - किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले समस्त उत्पत्ति के साधनों को दिया जाने वाला भुगतान उत्पादन लागत कहलाता है।

मौद्रिक लागत - किसी फर्म द्वारा एक वस्तु के उत्पादन में किए गए कुल मुद्रा व्यय को मौद्रिक लागत कहते हैं।

दृश्य लागतें - वे लागते जिन्हें उत्पादक को उत्पत्ति के साधनों को एकत्र करने हेतु प्रत्यक्ष रूप से व्यय करना पड़ता है।

अदृश्य लागतें - अदृश्य अथवा सन्निहित लागतों में उत्पादक के वे व्यय शामिल रहते हैं जिनका उत्पादक को प्रत्यक्ष रूप में भुगतान नहीं करना पड़ता।

सामान्य लाभ - कम से कम वह लाभ जो फर्म अथवा उत्पादक को कार्य में लगाए रखने के लिए आवश्यक होता है।

वास्तविक लागत - किसी वस्तु की अवसर लागत वह सर्वश्रेष्ठ विकल्प है जिसका उत्पादन नहीं उत्पत्ति साधनों द्वारा उसी लागत पर उस वस्तु के साधनों के रूप में किया जा सकता है।

12.12 संदर्भ

- आहूजा, एच एल ''उच्चतर आर्थिक विश्ले षण'' एस चान्द एण्ड कम्पनी, रामनगर , नई दिल्ली, 2008
- सेठ, एम एल ''सूक्ष्म अर्थशास्त्र'' लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , अ कोर्स इन माइक्रो एकोनॉमिक्स थियरी, प्रिसंटन, यूनीवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन
- लॉयरड, पी आर जी एण्ड ए0डब्ल्यू0 बॉलटरस (1978), माइक्रों एकोनॉमिक थीयरी, मैग्रा हिल , नई दिल्ली
- स्टिंगलर जी (1996), थीयरी ऑफ प्राइस , प्रेनटिस हॉल ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली
- सेन ए (1999) माइक्रो एकोनॉमिक्स, थीयरी एण्ड अप्लीकेषन, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली
- कूटसियोनिस, ए मॉडर्न माइक्रो इकोनॉमिक्स, मैक मिल न प्रेस, लन्दन

12.13 लघु उत्तरी प्रश्नों के उत्तर

1. D
2. D
3 A

(4) B

(5) A

(6) A

(7) B

(8) B

(9) B

(10) D

(11) A

(12) A

(13) B

(14) B

12.14 दीर्घ उत्तरी प्रश्न

1.व्याख्या कीजिए कि अल्पकालीन में सीमान्त लागत कुल परिवर्तनशील लागत में होने वाले परिवर्तनों के ऊपर निर्भर करेगा।
2.स्थिर एवं परिर्तशील लागत पर टिप्पणी लिखिए।
3.औसत तथा सीमान्त लागत पर संक्षिप्त उत्तर दीजिए।
4.औसत लागत क्या है ? औसत एवं सीमान्त लागत के मध्य सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
5.विभिन्न आय एवं लागत वक्रों को समझाइए।
6.''सीमान्त लागत वक्र औसत लागत वक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु पर काटता है'' विवेचना कीजिए।
7.वास्तविक लागत व अवसर लागत में अन्तर बताइए और आर्थिक विश्लेषण में अवसर लागत के महत्व का परीक्षण कीजिए।

इकाई-13 आगम वक्र विश्लेषण

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 आगम का अर्थ एवं प्रकार
13.2.1 कुल आगम
13.2.2 औसत आगम
13.2.3 सीमान्त आगम
13.3 औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों का परस्पर सम्बन्ध
13.4 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत एवं सीमान्त आगम-वक्र
13.5 अपूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार के अन्तर्गत फर्म के आगम वक्र
13.6 आगम वक्रों की कुछ विशेष परिस्थितियां
13.6.1 प्रथम परिस्थिति
13.6.2 द्वितीय परिस्थिति
13.6.3 तृतीय परिस्थिति
13.7 कीमत-विश्लेषण में आगम-वक्रों की भूमिका
13.8 लघु उत्तरीय प्रश्न
13.9 सारांश
13.10 शब्दावली
13.11 संदर्भ
13.12 लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर
13.13 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में हम उत्पादन में आने वाली विभिन्न प्रकार की लागतों जैसे मौद्रिक लागत, अवसर लागत तथा सीमान्त लागत का अध्ययन कर चुके हैं। साथ ही उत्पादन में आने वाली अल्पकालीन और दीर्घकालीन लागतों का भी अध्ययन किया गया । हम जानते हैं कि उत्पादक का लाभ उस पर आ रही उत्पादन लागत पर ही नहीं बल्कि वस्तु की बिक्री से प्राप्त होने वाले आगम पर भी निर्भर करता है। उत्पादक के लाभ उसके कुल लागत एवं कुल आगम के अन्तर पर निर्भर करतें है। इस अध्याय में हम उत्पादक के आगम पक्ष का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

13.1 उद्देश्य

आगम पक्ष उत्पादन के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि आगम पर ही लाभ निर्भर करता है तथा लाभ व आगम का स्तर ही यह निर्धारित करता है कि उत्पादक को वर्तमान परिस्थितियों में अपना उत्पादन जारी अथवा बंद रखना चाहिए। इस अध्याय में हम यह अध्ययन करेंगें किः-

- आगम की विभिन्न धारणाएं कौन-कौन सी है।
- कुल आगम औसत आगम तथा सीमान्त आगम क्या होते है।
- औसत आगम व सीमान्त आगम में किस प्रकार का सम्बन्ध होता है।
- कीमत निर्धारण में आगम वक्र की क्या भूमिका होती है।
- पूर्ण प्रतियोगिता में औसत आगम तथा सीमान्त आगम वक्र किस प्रकार के होते है।
- अपूर्ण प्रतियोगिता में आगम वक्र कैसे होते है।
- एकाधिकार के अन्तर्गत आगम वक्र की क्या स्थिति होती है।

13.2 आगम का अर्थ एवं प्रकार

किसी वस्तु की निश्चित मात्रा में बिक्री करने से उत्पादक अथवा विक्रेता को जो कुल धनराशि प्राप्त होती है, उसे आगम कहते हैं। अर्थशास्त्र में आगम प्रायः निम्न तीन प्रकार के होते हैः

1. कुल आगम
2. औसत आगम
3. सीमान्त आगम

13.2.1 कुल आगम

किसी फर्म का कुल आगम वस्तु की एक इकाई की कीमत तथा कुल विक्रय की गई इकाइयों के गुणनफल द्वारा प्राप्त किया जाता है।

अर्थात कुल आगम = कुल बिक्री से प्राप्त राशि

= बिक्री इकाइयां X प्रति इकाई कीमत

13.2.2 औसत आगम

औसत आगम से अभिप्राय वस्तु की प्रति इकाई आगम से है। कुल आगम को वस्तु की बेची जाने वाली इकाईयों की संख्या से विभाजित करने पर औसत आगम सरलता से ज्ञात किया जा सकता है। औसत आगम = कुल आगम

कुल बेंची गई इकाइयां

$$AR = \frac{TR}{Q}$$

जहाँ
AR = औसत आगम
TR = कुल आगम
Q = कुल उत्पादन की बेची गयी इकाइयां
औसत आगम वस्तु के प्रति इकाई मूल्य को प्रदर्शित करता है।

13.2.3 सीमान्त आगम

बाजार में उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई के विक्रय से कुल आगम में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त आगम कहते हैं। दूसरे शब्दों में फर्म के किसी विशेष उत्पादन-स्तर पर सीमान्त आगम (MR) कुल आगम में जुड़ने वाली वह धनराशि है जो फर्म को वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई की बिक्री से प्राप्त होती है। फर्म की सीमान्त आगम कुल आगम में होने वाली वह वृद्धि है जो n इकाइयों के बजाय n_1 इकाइयों को बेचने से प्राप्त होती है। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि सीमान्त आगम कुल आगम में परिवर्तन की दर को दर्शाता है।

यदि $TR_{n+1} = (n+1)$ इकाइयों से प्राप्त आगम

तथा $RT_n = n$ इकाइयों से प्राप्त आगम

तब $MR_{n+1} = TR_{n+1} - TR_n$

दूसरे शब्दों में,

$$MR = \frac{\delta(TR)}{\delta Q} = \frac{\text{कुल आय में वृद्धि}}{\text{वस्तु की बिक्री मात्रा में वृद्धि}}$$

तीनों प्रकार के आगमों को एक सारणी द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

सारणी - 1

इकाइयों की संख्या	**कुल आगम (TR)**	**औसत आगम = वस्तु की कीमत (AR)**	**सीमान्त आगम (MR)**
1	20	20	20
2	38	19	18
3	54	18	16
4	68	17	14
5	80	16	12
7	98	14	10
8	104	13	8
9	108	12	6
10	110	11	4
11	110	10	0
12	108	9	-2

उपर्युक्त सारणी स्पष्ट है कि एक सीमा तक तो TR बढ़ता है परन्तु एक बिन्दु के पश्चात सीमान्त आगम (MR) के घटने के कारण कुल आगम (TR)में वृद्धि तो होती है किन्तु घटती दर से होने लगती है। सारणी से स्पष्ट है कि 11वीं इकाई पर सीमान्त आगम (MR) शून्य है। दूसरे शब्दों में TR अधिकतम है। 12वीं इकाई के लिए सीमान्त आगम (MR) ऋणात्मक हो जाता है। जिसके कारण कुल आगम (TR)घटने लगता है।

13.3 औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्रों का परस्पर सम्बन्ध

कीमत-सिद्धान्त का विश्लेषण करने हेतु कुल आगम-वक्र हमें कोई विशेष सहायता नहीं देता। अतः कुल आगम वक्र हमारे लिए महत्वपूर्ण नहीं है। फिलहाल हम इसका परित्याग कर देते हैं और

अपना समूचा ध्यान औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों पर ही केन्द्रित करते हैं। औसत एवं सीमान्त आगम-वक्रों के बीच सुव्यक्त एव सुनिश्चित सम्बन्ध होता है। जब औसत आगम वक्र

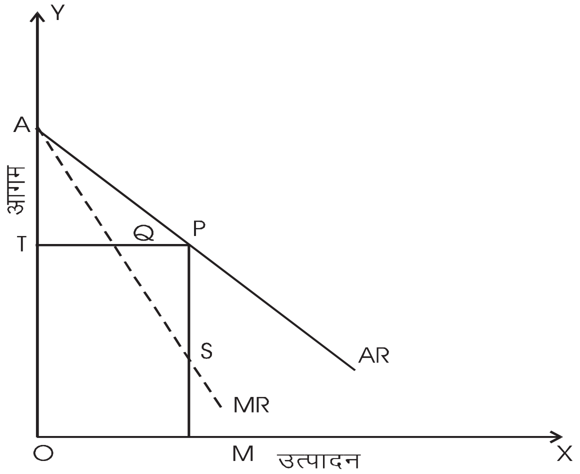

चित्र 1

गिरता है तब सीमान्त आगम औसत आगम से कम होता है और जब औसत आगम वक्र ऊपर उठता है तो सीमान्त आगम औसत आगम से अधिक होता है। सीमान्त आगम-वक्र ऊपर उठ सकता है नीचे गिर सकता है और क्षितिजीय हो सकता है लेकिन सामान्यतया यह वक्र नीचे ही गिरता है। जब औसत एवं सीमान्त आगम-वक्र दोनों सीधी रेखाएं होती है तो औसत आगम-वक्र से Y.अक्ष पर खींची गई लम्बात्मक रेखा को सीमान्त आगम-वक्र ठीक मध्य में काटता है। इसे चित्र 1 में प्रदर्शित किया गया है। इस रेखा कृति में हमने औसत आगम वक्र (AR) तथा उसके तत्सम्बन्धी आगम-वक्र (MR) को प्रदर्शित किया गया है। अब हमें ज्यामितीय विधि से यह सिद्ध करना है कि सीमान्त आगम-वक्र एवं AR वक्र Y.अक्ष के मध्य में से होकर गुजरता है। इसको सिद्ध करने हेतु आइए हम AR वक्र पर कोई बिन्दु P लेते हैं और Y.अक्ष एवं X.अक्ष पर क्रमश PT एवं PM रेखाएं खीचते हैं।

PT रेखा MR वक्र को Q बिन्दु पर काटती है। MP रेखा उसी MR वक्र को S बिन्दु पर काटती है। अब हमें सिद्ध करना है कि TQ=QP। जैसा कि रेखाकृति से स्पष्ट है, TPMO = ASMO। इसका कारण है कि TPMO एवं ASMO दोनों ही उस कुल आगम के बराबर है। जो OM मात्रा बेंचकर फर्म कमाती। TPMO आयत उस कुल आगम को व्यक्त करता है जो औसत आगम PM को OM मात्रा से गुणा करने पर प्राप्त होता है। ASMO क्षेत्रफल O तथा M के बीच विभिन्न मात्राओं के सीमान्त आग मों के जोड़ को व्यक्त करता है। दूसरे शब्दों में, ASMO, क्षेत्रफल OM मात्रा के कुल आगम को प्रकट करता है। इस प्रकार TPMO, क्षेत्रफल ASMO क्षेत्रफल + DQPS के बराबर है। लेकिन TPMO आयत TQSMO क्षेत्रफल + DQPS के बराबर है। इसका अभिप्राय यह हुआ

कि क्षेत्रफल की दृष्टि से ΔQPS, ΔATQ के बराबर है। $\angle ATQ = \angle QPS$ (क्योंकि ये दोनों ही लम्ब कोण है) इसी प्रकार $\angle AQT = \angle PQS$ (क्योंकि ये दोनों ही उर्ध्वाधरतः अभिमुखी हैं) अतः ΔATQ तथा ΔQPS सभी दृष्टियों से एक-दूसरे के समान है। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि TQ = QP। Y.अक्ष पर पड़ने वाली लम्बात्मक रेखा PT को MR सीमान्त आगम-वक्र Q बिन्दु पर द्विभाजित करता है। अतः MR वक्र औसत-आगम-वक्र एवं Y.अक्ष के मध्य में से होकर गुजरता है। इसका यह भी अभिप्राय है कि AT/TQ के सीधे वक्र की ढाल AT/TP के सीधा औसत वक्र की ढाल से दुगुनी है।

औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों का उक्त सम्बन्ध प्रायः सीधी रेखा वाले वक्रों पर ही सत्य उतरता है। यदि औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्र सीधी रेखाएं नहीं है बल्कि वास्तविक रूप में वक्र है, तब दोनों का उक्त सम्बन्ध सत्य नहीं होगा।

आइए अब हम एक ऐसा उदाहरण लें जिसमें औसत आगम-वक्र सीधी रेखा होने के बजाय ऊपर की ओर उत्तल है (देखिए रेखाकृति **2(A)**)। इस चित्र में AR ऊपर की ओर उत्तल है। यदि AR वक्र से Y.अक्ष पर हम कोई रेखा खींचते हैं तो सीमान्त आगम-वक्र इस रेखा को एक ऐसे बिन्दु से थोड़ी कम दूरी पर स्थिति है। जैसा कि रेखाकृति

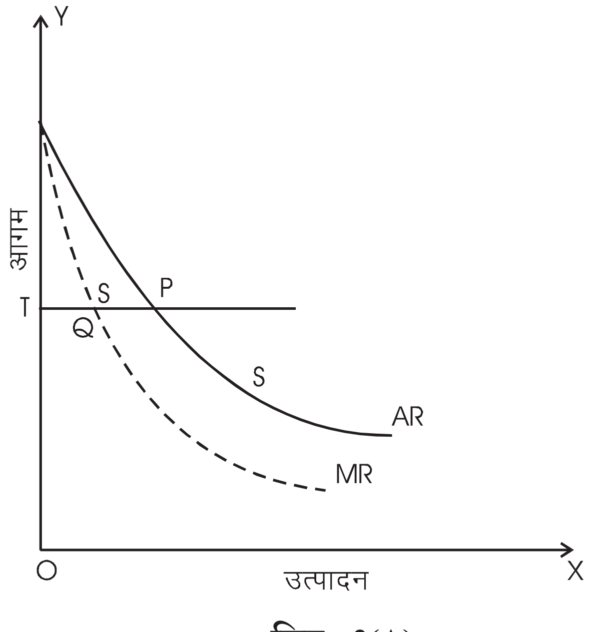

चित्र - 2(A)

2(A)में प्रदर्शित किया गया है, MR वक्र PT लम्बात्मक रेखा को Q बिन्दु पर काटता है, जबकि मध्य बिन्दु S है।

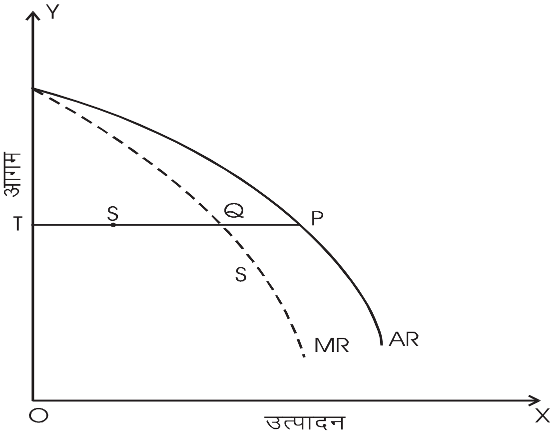

रेखाचित्र 2(B)

रेखाचित्र **2(B)**में AR वक्र नतोदर है। यदि AR वक्र से Y.अक्ष पर हम कोई रेखा खींचते हैं तो सीमान्त आगम-वक्र इस रेखा को एक ऐसे बिन्दु पर काटेगा जो AR वक्र एवं Y.अक्ष के मध्य-बिन्दु से थोड़ी अधिक दूरी पर स्थित है । जैसा कि चित्र **2(B)**में प्रदर्शित किया गया है, MR वक्र PT लम्बात्मक रेखा को Q बिन्दु पर काटता है, जबकि मध्य बिन्दु S है।

अब तक हमने Y.अक्ष पर पड़ने वाले लम्ब के सहारे औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों के पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन किया है। आइए अब हम X.अक्ष पर पड़ने वाले लम्ब के सहारे औसत आगम और सीमान्त आगम वक्रों के सम्बन्ध पर विचार करें। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अब हम वस्तु मात्रा के किसी विशेष स्तर पर दोनों वक्रों के सम्बन्ध की विवेचना करेंगे।

इस विवेचना से पूर्व यह बता देना उचित होगा कि फर्म का औसत आगम-वक्र (जिसे कभी-कभी बिक्री चक्र भी कहते हैं) ग्राहकों के दृष्टिकोण से फर्म की वस्तु का मांग -वक्र होता है क्योंकि यह वक्र फर्म की उन विभिन्न मात्राओं को व्यक्त करता है जिनकी मांग ग्राहकों द्वारा विभिन्न कीमतों पर की जाती है। सभी व्यावहारिक उद्देष्यों के लिए औसत आगम-वक्र को मांग वक्र के तुल्य ही समझा जाना चाहिए। X.अक्ष पर आधारित लम्ब के सहारे औसत आगम-वक्र के परस्पर सम्बन्ध की हमारी विवेचना तब तक पूर्ण नहीं समझी जा सकती जब तक कि हम इसमें फर्म की वस्तु की मांग की लोच को सम्मिलित नहीं करते। दूसरे शब्दों में, जिस बिन्दु पर हम औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों के परस्पर सम्बन्ध का अध्ययन करना चाहते हैं। औसत आगम-वक्र अथवा मांग वक्र पर स्थिति उस विशेष बिन्दु से सम्बन्धित उपज-स्तर पर हम औसत आगम-वक्रों के सम्बन्ध का अध्ययन नहीं कर सकते।

चित्र 3 में हमने यह बताने का प्रयास किया है कि औसत आगम-वक्र (AR) पर मांग की लोच को कैसे मापा जाता है। जिस विधि से मांग की लोच को मापा जाता है, उसे हम बिन्दु विधि कहते हैं।

इस चित्र में औसत आगम AR वक्र है। AR वक्र पर स्थित P बिन्दु पर हमें मांग की लोच को मापना है। इसके करना सरल है। स्पर्श रेखा पर स्थित P के निचले भाग (अर्थात् PT) को बिन्दु P के ऊपर वाले भाग (अर्थात् QP) से विभाजित करने पर संख्यात्मक मांग की लोच निकल आती है। दूसरे शब्दों में, AR वक्र पर स्थित P बिन्दु पर मांग की लोच को इस सूत्र से निकाला जा सकता है P = PT/QP ।

अतः औसत आगम-वक्र अथवा मांग वक्र पर संख्यात्मक मांग की लोच निकाल ने की विधि इस प्रकार है। वक्र पर स्थित P बिन्दु के सहारे QT स्पर्श रेखा खीचिए और फिर PT को QP से विभाजित करके संख्यात्मक मांग की लोच को निकाल लीजिए (P = PT/QP)। संख्यात्मक बिन्दु की मांग लोच ज्ञात कर लेने के पष्चात् X.अक्ष पर आधारित लम्ब के सहारे हम औसत आगम तथा सीमान्त आगम-वक्रों के सम्बन्ध का अध्ययन कर सकते हैं।

चित्र 4 में AR औसत आगम-वक्र हैं। P बिन्दु इसी वक्र पर आधारित है। इस बिन्दु पर संख्यात्मक बिन्दु मांग लोच PT/QP के बराबर है। दोनों त्रिकोणों अर्थात ΔNQP तथा ΔMPT के सभी कोण समान हैं। अतः PT/QT को PM/QN के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है। आइए, अब हम Q बिन्दु से एक ऐसी रेखा खींचे जो PN को R बिन्दु परद्विभाजित करती है और बाद में S बिन्दु पर PM को काटती है QL रेखा, वास्तव में, QT स्पर्श -रेखा की सीमान्त रेखा है क्योंकि यह PN लम्ब रेखा को Y.अक्ष तथा QT स्पर्श -रेखा के बीच मध्य-बिन्दु पर काटती है। अब हमारे पास दो छोटे त्रिकोण अर्थात् ΔQNR तथा ΔSRP हैं।

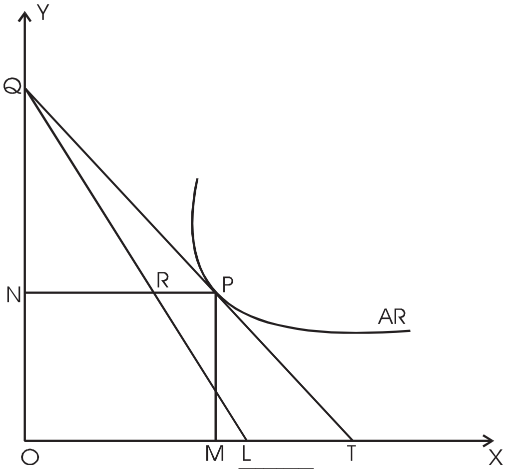

चित्र 4

इन दोनों त्रिकोणों में NR = PR

$\angle NRQ = \angle RPS$ (ये दोनों कोण उर्ध्वाधरतः अधिमुखी हैं)

$\angle QNR = \angle RPS$(क्योंकि ये दोनों ही लम्ब कोण हैं।)

अतः दोनों त्रिकोण अर्थात् ΔQNR एवं ΔSRP सभी दृष्टियों से एक-दूसरे के बराबर हैं । परिणामतः QN, PS के बराबर है। अतः बिन्दु P पर मांग लोच को PT/QP = PM/QN के रूप में व्यक्त करने के बजाय हम इसे PM/PS अथवा PM / (PM-SM)के रूप में प्रकट कर सकते हैं। लेकिन जैसा कि चित्र से स्पष्ट है कि, OM उपज पर PM औसत आगम है और SM सीमान्त आगम है। अतः औसत आगम वक्र पर मांग -लोच को मापने हेतु हम निम्न सूत्र को प्रस्तुत करते हैं।

$$e = \frac{\text{Average Revenue}}{\text{Average Revenue} - \text{Marginal Revenue}}$$

अथवा

$$e = \frac{AR}{AR - MR} \quad \text{or} \quad e = \frac{A}{A - M}$$

उक्त सूत्र में e = मांग की लोच, A = औसत आगत, M = सीमान्त आगम

वास्तव में, यह सूत्र हमारे लिए बहुत ही लाभदायक है। यदि औसत आगम एवं मांग की बिन्दु-लोच दिये हुए हैं तो इस सूत्र की सहायता से हम सीमान्त आगम को ज्ञात कर सकते हैं। इसी प्रकार, यदि सीमान्त आगम एवं मांग की बिन्दु लोच की बिन्दु लोच दिये हुए हैं तो हम औसत आगम निकाल सकते हैं। जैसे इस सूत्र की सहायता से हम सीमान्त आगम निम्न प्रकार निकाल सकते हैं -

$$e = \frac{AR}{AR - MR}$$

$$\therefore \quad eA = eM = A$$

$$\therefore \quad eM = A - eA$$

$$M = \frac{eA - A}{e}$$

$$M = A \frac{e - 1}{e}$$

इसी प्रकार, इस सूत्र की सहायता से हम औसत आगम निकाल सकते हैं।

$$e = \frac{A}{A - M}$$

$$eA - Me = A$$

$$eA - A = eM$$

$$\therefore A(e-1) = eM$$

$$A = \frac{eM}{e-1}$$

$$\therefore A = M \frac{E}{e-1}$$

अतः वस्तु मात्रा के किसी भी स्तर पर

$$\text{Marginal Revenue} = \text{Average Revenue X} \frac{e-1}{e}$$

और

$$\text{Average Revenue} = \text{Marginal Revenue X} \frac{e-1}{e}$$

यहाँ e औसत आगम-वक्र पर मांग की बिन्दु-लोच को व्यक्त करती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर अब हम औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों की बीच सुव्यक्त एवं सुनिश्चित सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। चित्र 5 में इसे प्रदर्शित किया गया है।

इस चित्र में P बिन्दु AR वक्र के मध्य में स्थित है इसलिए OM पर मांग की बिन्दु लोच 1 के बराबर है। परिणामतः OM मात्रा पर सीमान्त आगम शून्य होता है। हमारे उक्त सूत्र के अनुसार

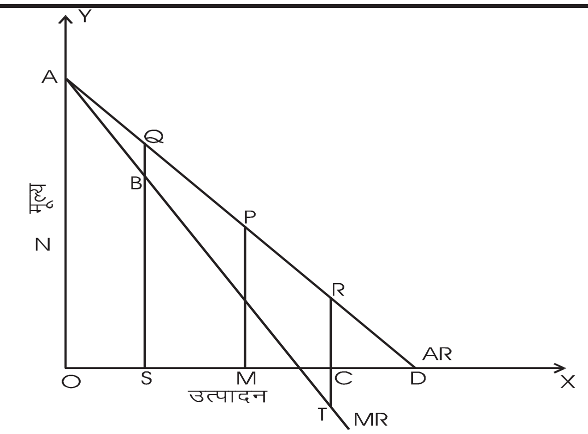

चित्र 5

सीमान्त

आगम=औसतआगम

$$= \frac{e-1}{1}$$

= औसत आगम X 0 = 0

रेखाचित्र से यह स्पष्ट हो जाता है। OM मात्रा पर सीमान्त आगम शून्य है। अतः हम यह कह सकते हैं कि जब औसत आगम वक्र की लोच 1 के बराबर होती है,S तो सीमान्त आगम शून्य के बराबर होता है। आइए, अब AR वक्र पर हम Q बिन्दु को लें। यह भी मान लेते हैं कि फ बिन्दु पर मांग की लोच 2 बराबर है। तब हम उक्त सूत्र को यहाँ पर लागू करते हैं:

$$M = A \frac{e-1}{E}$$

$$\frac{M}{A} = \frac{2-1}{2} = \frac{1}{2}$$

दूसरे शब्दों में, उक्त चित्र में BS = ½ QS । यहाँ पर सीमान्त आगम, औसत आगम का ठीक आधा है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जब औसत आगम-वक्र की लोच 1 से अधिक होती है तो उपज के प्रत्येक स्तर पर सीमान्त आगम सदैव धनात्मक होता है । तथा P के मध्य किसी भी बिन्दु पर यही स्थिति होगी।

आइए अब AR वक्र पर हम एक अन्य बिन्दु R को लें। आइए हम यह भी मान लें कि R बिन्दु पर मांग की लोच 1/5 है। तब हम उक्त सूत्र को यहाँ पर लागू करते हैं।

$$M = A \frac{e-1}{e}$$

$$M = A \frac{1/5-1}{1/5}$$

$$= A \frac{-4/5}{1/5}$$

$$= -4A$$

दूसरे शब्दों में उक्त रेखाकृति में OC उपज पर CT, RC का 4 गुना है (स्मरण रहें, RC औसत आगम है) OC उपज पर सीमान्त आगम ऋणात्मक है और औसत आगम का 4 गुना है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जब औसत आगम-वक्र की लोच 1 से कम होती है तो उपज के प्रत्येक स्तर पर सीमान्त आगम सदैव ऋणात्मक होता है T तथा D के बीच किसी भी बिन्दु पर ही स्थिति होगी।

इस प्रकार यदि औसत आगम-वक्र की मांग की बिन्दु लोच हमें ज्ञात है तो उपर्युक्त सूत्र की सहायता से उपज के किसी स्तर पर हम औसत आगम से सीमान्त आगम निकाल सकते हैं।

सारांशतः, यदि मांग की बिन्दु-लोच इकाई अथवा 1 है तो तत्सम्बन्धी सीमान्त आगम शून्य होगा। यदि मांग की बिन्दु लोच इकाई से अधिक है तो तत्सम्बन्धी सीमान्त आगम धनात्मक होगा। यदि मांग की लोच इकाई से कम है तो तत्सम्बन्धी सीमान्त आ गम ऋणात्मक होगा। इसके अतिरिक्त, औसत आगम-वक्र की लोच जितनी अधिक होती है उतना ही सीमान्त आगम-वक्र औसत आगम-वक्र के समीप स्थित रहता है। इसके विपरीत, औसत आगम-वक्र की लोच जितनी कम होती है। उतना ही अधिक अन्तराल औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों के बीच रहता हा। यदि औसत-वक्र पर मांग की लोच पूर्ण अथवा अनन्त है तो सीमान्त आगम-वक्र औसत आगम-वक्र के साथ एकीभूत हो जायेगा।

13.4 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत एवं सीमान्त आगम-वक्र अथवा पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म-उद्योग सम्बन्ध

पूर्ण प्रतियोगिता की मूलभूत मान्यता यह है कि इसके अन्तर्गत फर्मों की संख्या अधिक होती है। प्रत्येक फर्म वस्तु की कुल पूर्ति के एक छोटे से अंश का ही उत्पादन करती है। परिणामतः कोई भी फर्म वस्तु के उत्पादन का विस्तार अथवा संकुचन करके बाजार-कीमत को प्रभावित नहीं कर

सकती। अतः पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत जहाँ तक विभिन्न फर्मों का सम्बन्ध है, उनके लिए तो वस्तु की कीमत पहले से ही निश्चित होती है। इस प्रकार की बाजार स्थिति में हम यह मानकर चलते हैं कि उस निश्चित कीमत पर तो प्रत्येक फर्म वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। अपनी बिक्री को बढ़ाने के लिए फर्म को कीमत में कटौती करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसका कारण यह है कि फर्म की कुल उपज उद्योग के समूचे उत्पादन का एक छोटा सा अंश ही होती है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी व्यक्तिगत फर्म की वस्तु की मांग पूर्णतः लोचदार होती है। पूर्ण प्रतियोगिता की दूसरी मान्यता यह है कि सभी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तु सभी दृष्टियों से समान होती है अथवा समरूप होती है। इसका परिणाम यह होता है कि क्रेतागण एक फर्म को छोड़कर दूसरी फर्म की वस्तु को प्राथमिकता नहीं दे सकते। वास्तव में, उन्हें इस प्रकार की प्राथमिकता देने की आवष्यकता ही नहीं पड़ती। अतः यदि कोई एक फर्म अपनी वस्तु की कीमत को बढ़ा देती है तो उसकी बिक्री घटकर शून्य के बराबर हो जायेगी।

इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत उद्योग द्वारा निर्धारित होती है और इस प्रकार उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत की प्रत्येक फर्म ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेती है। इस कीमत पर प्रत्येक फर्म वस्तु की जितनी मात्रा चाहे, बेच सकती है। कोई भी फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत से अधिक कीमत पर अपनी वस्तु नहीं बेच सकती। यदि वह ऐसा करती है तो उसकी बिक्री गिरकर शून्य के बराबर हो जायेगी। अतः पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार में प्रचलित केवल एक ही कीमत होती है।

किसी प्रतियोगी फर्म के लिए किसी वस्तु X से सम्बन्धित की एक काल्पनिक अनुसूची को लेकर हम पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों की व्याख्या करेंगे। (देखिए सारणी 2)।

सारणी 2

किसी फर्म की मांग एवं आगम-अनुसूची (रूपयों में)

कीमत प्रति इकाई	बेची गई मात्रा	कुल आगम **(TR)**	औसत आगम **(AR)**	सीमान्त आगम **(MR)**
120	1	120	120	120
120	2	240	120	120
120	3	360	120	120
120	4	480	120	120
120	5	600	120	120
120	6	720	120	120

जैसा कि आगम-अनुसूची से स्पष्ट है कि उद्योग द्वारा निर्धारित 120 रूपये प्रति इकाई की कीमत को फर्म ने स्वीकार कर लिया है। फर्म का मांग -वक्र पूर्णतया लोचदार है क्योंकि फर्म 120 रूपये प्रति कुन्तल की कीमत पर वस्तु की अधिक अथवा कम मात्रा बेच सकती है। उपर्युक्त अनुसूची को हमने रेखाचित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। ऐसा करते

समय हमने कुल आगम को छोड़ दिया है। इसमें अब हमारी अभिरूचि नहीं है।

रेखा चित्र में DD केवल मांग वक्र ही नहीं है, बल्कि यह फर्म का औसत आगम वक्र भी है। जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं। पूर्ण लोच के अन्तर्गत औसत आगम-वक्र सीमान्त आगम-वक्र के साथ एकीभूत हो जाता है।

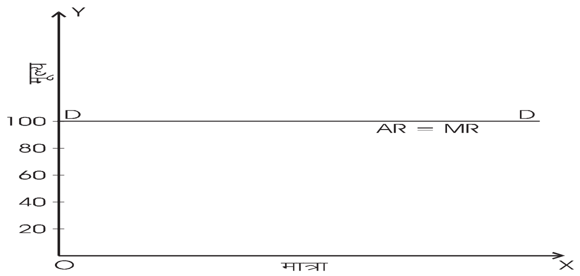

चित्र 6

13.5 अपूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार के अन्तर्गत फर्म के आगम वक्र

जैसा कि हम देखेंगे, एकाधिकार के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों की वह आकृति नहीं होती जो पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत होती है। एकाधिकार एवं अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्र दोनों ही बायीं से दायीं ओर नीचे झुकते हैं। जब ये दोनों वक्र नीचे गिरते हैं तब सीमान्त आगम-वक्र औसत आगम वक्र के नीचे होता है। ये दोनों वक्र नीचे क्यों गिरते हैं घ् इसका कारण यह है कि एकाधिकार तथा अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का मांग वक्र पूर्णतया लोचदार नहीं होती। ऐसी स्थिति में लोच कई तत्वों से निर्धारित होती है जैसे बाजार में विक्रेताओं की संख्या, परस्पर निर्भरता का अंश तथा वस्तु का स्वरूप। अब हम एक काल्पनिक मांग एवं आगम अनुसूची को लेकर एकाधिकार एवं अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी फर्म के आगम-वक्रों की व्याख्या करेंगे।

सारणी 3 में एक महत्वपूर्ण बात को नोट कीजिए। एकाधिकार तथा अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत में कटौती करके ही फर्म वस्तु की अतिरिक्त मात्रा बेच सकती है। वस्तु की कीमत में कटौती किए बिना फर्म अधिक मात्रा को बेचने की स्थिति में नहीं होती। स्मरण रहे कि वस्तु की सीमान्त इकाई की कीमत में केवल कटौती नहीं करती है बल्कि सभी पूर्वगामी अथवा सीमान्तोपरि

इकाइयों की कीमतों में कटौती करना अनिवार्य है। परिणामतः सीमान्त इकाई से जो आगम प्राप्त होता है। वह उसकी कीमत के बराबर नहीं होता, बल्कि उससे कम होता है। पूर्वगामी अथवा सीमान्तोपरि इकाइयों को कम कीमत पर बेचने से जो हानि होती है उसको सीमान्त इकाई की कीमत में से घटाने पर जो प्राप्ति होती है, वही सीमान्त इकाई का आगम होता है।

सारणी 3 फर्म की मांग एवं आगम अनुसूची (रूपये में)

प्रति इकाई कीमत	बेची गई इकाइयों की संख्या	कुल आगम **(TR)**	औसत आगम **(AR)**	सीमान्त आगम **(MR)**
15	1	15	15	15
14	2	289	14	13
13	3	39	13	11
12	4	48	12	9
11	5	55	11	7
10	6	50	10	5
9	7	63	9	3
8	8	63	8	1

उदाहरणार्थ, 4 इकाईयों को 12 रूपये प्रति इकाई की कीमत पर बेचा जाता है। इससे कुल आगम 48 रूपये होता है। लेकिन जब फर्म 5 इकाइयां बेचती हैं तो यह प्रति इकाई कीमत को घटाकर 11 रूपये कर देती है। कीमत में कटौती इसलिए करती है ताकि पहले से अधिक मात्रा को बाजार में बेचा जा सके। 5वीं अथवा सीमान्त इकाई की कीमत तो 11 रूपयो ही है, लेकिन इसको बेचने से फर्म को 11 रूपये प्राप्त नहीं होते । इस इकाई को बेचने से फर्म के प्रारम्भिक कुल आगम में केवल 7 रूपये की ही वृद्धि होती है क्योंकि 5 इकाईयों को बेचने से नया कुल आगम 55 रूपये बैठता है। इसका कारण यह है कि पांचवी इकाई को 1 रूपये कम पर बेचा जाता है और पहले वाली 4 इकाइयों को भी 11 रूपये प्रति इकाई के हिसाब से बेचा जाता है, यद्यपि उन्हें 12 रूपये प्रति इकाई की कीमत पर बेचा जा सकता था। इस फर्म ने सीमान्तोपरि इकाइयों पर 4 रूपये की हानि उठायी है। पांच इकाइयों को बेचने से नये कुल आगम में 11 रूपये की वृद्धि नहीं होती है। दूसरे शब्दों, नये कुल आगम एवं पुराने आगम में 11 रूपये का अन्तर नहीं होता है। नए सीमान्त आगम में 11 रूपये की वृद्धि न होकर केवल 7 रूपये की वृद्धि होती है। अतः स्पष्ट है कि एकाधिकार तथा अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु की अधिक मात्रा बेचने हेतु फर्म को प्रति इकाई कीमत घटानी पड़ती है। यही कारण है कि वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों पर औसत आगम घटता है तथा सीमान्त आगम और भी तेजी से घटता है।

उपर्युक्त अनुसूची को हम रेखाकृति के रूप में भी प्रकट कर सकते हैं। यहां पर हम कुल आगम-वक्र का परित्याग कर देते हैं।

रेखा चित्र में हमने एक एकाधिकार तथा अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी फर्म के औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्रों को प्रदर्शित किया है। DD वक्र (अथवा मांग वक्र) नीचे की ओर झुकता है। यह इस बात का प्रमाण है कि फर्म कीमत में कटौती क्रके ही वस्तु की अधिक मात्रा बेच सकती है। यही कारण है कि मांग -वक्र अथवा औसत आगम-वक्र बायी से दायी ओर नीचे गिरता चला जाता है। सीमान्त आगम-वक्र MR तो और भी अधिक तेजी से नीचे गिरता चला जाता है। उपर्युक्त अनुसूची को दखिए। जब औसत आगम में 1 रूपये की कमी होती है

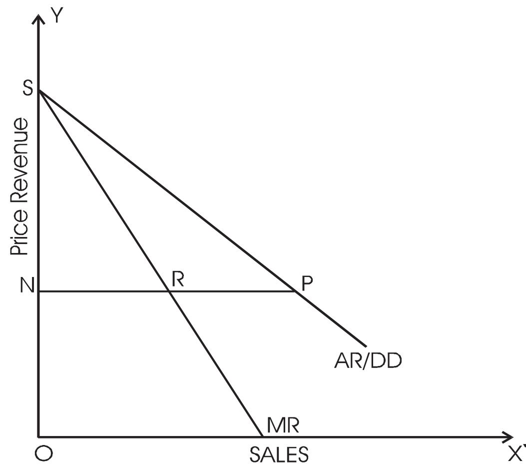

चित्र 7

तो सीमान्त आगम में 2 रूपये की कमी होती है। सीमान्त आगम औसत आगम की दुगुनी दर पर नीचे गिरता है। P बिन्दु से Y.अक्ष पर नीचे गिरता है। P बिन्दु Y.अक्ष पर खींची गई लम्बात्मक रेखा को R बिन्दु पर MR वक्र द्विभाजित करता है।

अब हमने एक ओर तो पूर्ण प्रतियोगिता और दूसरी ओर एकाधिकार (तथा अपूर्ण प्रतियोगिता) के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों की आकृतियों का परीक्षण कर लिया है। अब हम समूची स्थिति को इस प्रकार सामान्यीकृत रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। बाजार में फर्मों की संख्या जितनी अधिक होगी तथा विचाराधीन वस्तु के स्थानान्तरण जितने होंगे, उतना ही फर्म का औसत आगम-वक्र अधिक लोचदार होगा। इसके विपरीत, किसी वस्तु को बनने वाली फर्मों की संख्या जितनी कम होगी और उस वस्तु के निकटतम स्थानापन्नों की संख्या जितनी कम होगी उतना ही फर्म का औसत आगम-वक्र कम लोचदार होगा। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम वक्र X अक्ष के क्षितिजीय होता है विशुद्ध एकाधिकार के अन्तर्गत औसत आगम-वक्र प्रपाती होता है। वास्तविक जीवन में बाजार में न तो पूर्ण प्रतियोगिता होती है और न ही विशुद्ध एकाधिकार। वास्तविक बाजार में तो अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पाई जाती है। अतः औसत आगम-वक्र इन

दोनों आकृतियों के मध्य ही स्थिति होगा। ये दोनों आकृतियां कौन सी हैं ? पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वक्र की आकृति क्षितिजीय होती है। जबकि एकाधिकार के अधीन वक्र की आकृति प्रपाती होती है। दूसरे शब्दों में, वास्तविक बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम-वक्र न तो क्षितिजीय होता है और न ही प्रपाती बल्कि औसत आगम वक्र इन दोनों आकृतियों के बीच ही स्थिर रहता है। वैकल्पिक रूप में हम यह कह सकते हैं कि औसत आगम-वक्र जितना कम लोचदार होगा, बाजार में पायी जाने वाली प्रतियोगिता उतनी ही अधिक पूर्ण होगी।

यहाँ पर एक महत्वपूर्ण तथ्य ध्यान देने योग्य है। विभिन्न बाजार परिस्थितियों में फर्म के आगम-वक्रों से सम्बन्धित अपनी उक्त विवेचना में हमने निरन्तर एक महत्वपूर्ण तत्व अर्थात् समय की पूर्ण उपेक्षा की है। अपने विश्लेषण में हमने समय तत्व को कुछ भी स्थान नहीं दिया है। हमने फर्म के औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों का अध्ययन उस समयावधि में किया है। जिसमें मांग की दशाओं में तनिक भी परिवर्तन नहीं होता है। अब प्रश्न यह है कि हम इस मान्यता का परित्याग करके समय तत्व को अपने विश्ले षण में सम्मिलित कर लेते हैं तो इससे आगम-वक्रों के हमारे अध्ययन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? ऐसी स्थिति में आगम-वक्रों के बारे में कोई संतोषजनक निष्कर्ष निकाल ना कठिन प्रतीत होता है। यह मानने के लिए हमारे पास कोई विशेष कारण नहीं है कि समय बीतने पर मांग की दशाओं में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अतः हम यह मानकर चलेंगे कि अल्पकाल एवं दीर्घकाल में मांग की दशाओं में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इस प्रकार अल्पकाल एवं दीर्घकाल में आगम-वक्रों की आकृतियों में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

13.6 आगम-वक्रों की कुछ विशेष परिस्थितियां

अब हम आगम-वक्रों की कुछ विशेष परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे ये अग्रलिखित है।

13.6.1 प्रथम परिस्थिति

प्रथम परिस्थिति को रेखा चित्र 8 में निरूपित किया गया है। इसमें DD मांग -वक्र भी है और औसत आगम-वक्र भी। यह आयताकार अधीन्द्र मांग वक्र है। इस समूचे वक्र की लोच इकाई के बराबर है। दूसरे शब्दों में इस वक्र की सभी बिन्दुओं पर मांग की लोच 1 के

बराबर होती है। औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों के सम्बन्ध की चर्चा करते हुए हम पहले ही बता चुके हैं कि यदि औसत आगम-वक्र पर मांग की लोच 1 के बराबर होती है तो सीमान्त आगम शून्य होगा। चूंकि समूचे AR वक्र की लोच 1 के बराबर है, अतः सीमान्त आगम-वक्र शून्य के बराबर होगा। दूसरे शब्दों में, सीमान्त आगम वक्र का X.अक्ष में ही विलय हो जायेगा। इस रेखाकृति में X.अक्ष सीमान्त आगम-वक्र भी है।

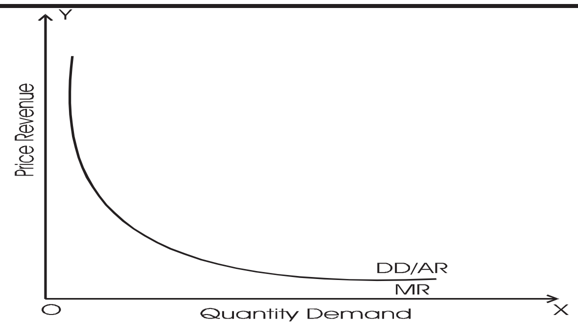

चित्र 8

13.6.2 द्वितीय परिस्थति

दूसरी परिस्थिति को रेखाचित्र 9 में निरूपित किया गया है। इसमें AC विकुंचित औसत आगम-वक्र है। इस वक्र में B बिन्दु पर विकुंचन विद्यमान है। यह औसत आगम-वक्र अल्पाधिकारात्मक फर्म का है। अल्पाधिकार के अन्तर्गत जब यह फर्म कीमत मे कटौती करती है तो अन्य प्रतियोगी फर्में भी इसका अनुकरण करती है। (अर्थात वे भी अपने माल की कीमतों में कटौती कर देती है।) लेकिन जब यह फर्म अपने माल की कीमत में वृद्धि कर देती है तब अन्य प्रतियोगी फर्में इसका अनुकरण नहीं करती। दूसरे शब्दों में, जब कभी भी यह फर्म अपनी वस्तु की कीमत को धटा देती है तब अन्य प्रतियोगी फर्में भी ऐसा ही करती हैं लेकिन जब यह फर्म अपनी वस्तु की कीमत को बढ़ा देती है, तब अन्य फर्में ऐसा नहीं करती। इससे इस फर्म का औसत आगम-वक्र विकुंचित हो जायेगा। स्मरण रहे कि विकुंचन वर्तमान कीमत स्तर पर ही घटित होगा।

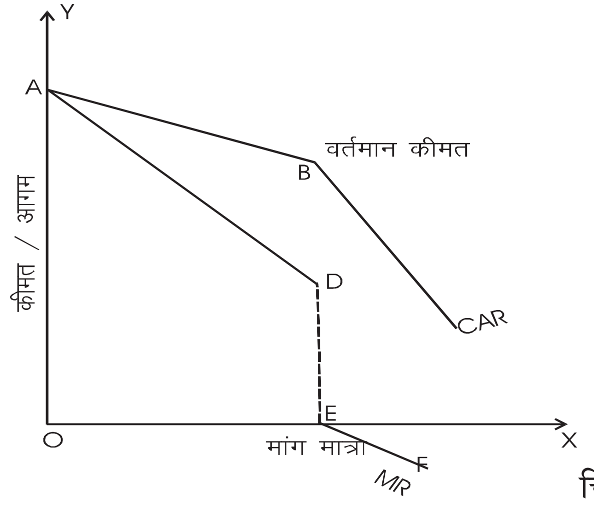

चित्र - 9

यह बात रेखा चित्र में स्पष्ट कर दी गई है। यदि यह फर्म वर्तमान स्तर से ऊपर अपनी वस्तु की कीमत को बढ़ाती है। अर्थात् यदि फर्म ठ बिन्दु से ऊपर को बढ़ाती है) तो बिक्री में तेजी से गिरावट आ जायेगी क्योंकि अन्य फार्मों ने अपनी वस्तुओं की कीमतें नहीं बढ़ाती हैं। यदि यह फर्म वर्तमान

स्तर अर्थात् B बिन्दु से नीचे कीमत को घटा देती है तो समूचे उद्योग की बढ़ी हुई बिक्री में इस फर्म को केवल इसका आनुपातिक अंश ही प्राप्त होगा। इसका कारण यह है कि अन्य प्रतियोगी फर्मों ने भी कीमत-कटौती नीति का अनुसरण किया है। जब औसत आगम वक्र में विकुंचन होता है तो, जैसा कि चित्र में प्रदर्शित किया गया है, सीमान्त आगम वक्र विच्छिन हो जाता है। यह विच्छिन्नता औसत आगम-वक्र में पाये

जाने वाले विकुंचन से नीचे घटित होती है। ।क् सीमान्त आगम-वक्र है। औसत आगम-वक्र का । तथा B के बीच वाला जो भाग है। (अर्थात् A से लेकर विकुंचन-बिन्दु AB तक), AD सीमान्त आगम-वक्र उसी का तदनुरूपी है। EF एक अन्य सीमान्त आगम-वक्र है। यह निम्न स्तर पर स्थित है और इसकी ढाल अधिक प्रपाती है। यह सीमान्त आगम-वक्र औसत आगम-वक्र के BC भाग का तदनुरूपी है। DE सीमान्त आगम-वक्र के विच्छिन्न भाग को निरूपित करता है लेकिन यह विच्छिन्न भाग अथवा अन्तराल निम्न स्तर के बजाय उच्च स्तर पर घटित होता है। इसका कारण यह है कि औसत आगम-वक्र का BC भाग ABभाग से अधिक लोचदार है। परिणामतः AB भाग का तदनुरूपी सीमान्त आगम वक्र उच्च स्तर पर प्रारम्भ होता है।

13.6.3 तृतीय परिस्थति

रेखाचित्र 10 में तीसरी स्थिति को व्यक्त करती है। AC विकुंचित औसत आगम-वक्र है। विकुंचन इस वक्र के B बिन्दु पर घटित होता है। विकुंचित औसत आगम - वक्र के AB भाग में लोच का कम अंश पाया जाता है जबकि विकुंचित बिन्दु B के नीचे BC भाग में मांग की लोच का अधिक अंश पाया जाता है। दूसरे शब्दों में, AB भाग में मांग की लोच कम है जबकि BC भाग में मांग की लोच अधिक है। स्मरण रहे कि विकुंचित औसत-आगम वक्र का प्रश्न केवल अल्पाधिकारात्मक फर्म के अन्तर्गत ही उत्पन्न होता है। जब अल्पाधिकारात्मक फर्म वर्तमान

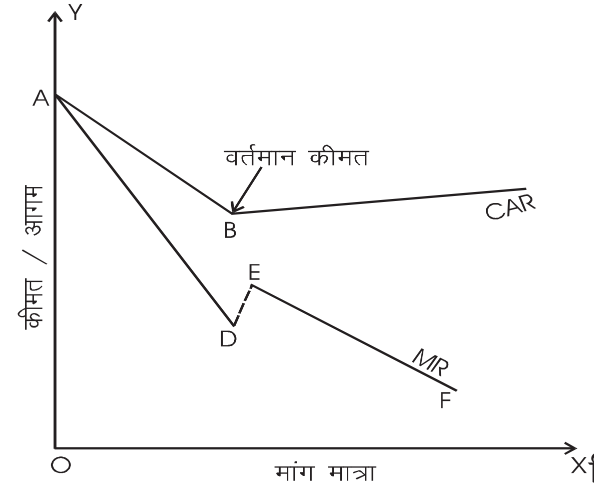

चित्र 10

कीमत में कटौती करती है तो प्रतियोगी फर्मों के बहुत से ग्राहक इसकी ओर आकर्षित होते हैं। लेकिन जब यही फर्म वर्तमान कीमत में वृद्धि करती है तो इससे प्रतियोगी फर्मों के ग्राहक उनसे टूटकर इस फर्म की ओर आकर्षित नहीं होते हैं। सीमान्त आगम-वक्र के AB भाग का तदनुरूपी है जबकि सीमान्त आगम-वक्र का ED भाग औसत आगम-वक्र के BC भाग का तदनुरूपी है। ED सीमान्त आगम-वक्र के BC भाग का तदनुरूपी है। ED सीमान्त आगम-वक्र के अन्तराल अथवा विच्छिन्न भाग को निरूपित करता है। लेकिन यह विच्छिन्न भाग अथवा अन्तराल निम्न स्तर के बजाय उच्च स्तर पर घटित होता है। इसका कारण यह है कि औसत आगम-वक्र का BC भाग ABभाग से अधिक लोचदार है। परिणामतः ABभाग का तदनुरूपी सीमान्त आगम-वक्र उच्च स्तर पर प्रारम्भ होता है।

13.7 कीमत-विश्लेषण में आगम-वक्रों की भूमिका

कीमत-सिद्धान्त में आगम-वक्र महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। इस अध्याय में हमने तीन प्रकार के आगम वक्रों का अध्ययन किया है। कीमत विश्लषण में कुल आगम-वक्र का कोई विशेष महत्व नहीं है। अतः हमने अपने अध्ययन को औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों तक ही सीमित रखेंगे। कीमत विश्लेषण में ये दोनों वक्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। मांग पक्ष का औसत आगम पूर्ति-पक्ष की औसत लागत का प्रतिरूप है। उत्पादन किया जाय या नहीं इस प्रश्न का निर्णय करने हेतु फर्म औसत आगम की तुलना औसत लागत से करती है। यदि औसत आगम औसत लागत से अधिक है तो इसका अभिप्राय हुआ कि फर्म लाभ कमा रही है, अतः उसे उत्पादन जारी रखना चाहिए। इसके विपरीत, औसत लागत की तुलन में यदि औसत आगम कम है तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि फर्म हानि उठा रही है, अतः उसे उत्पादन बन्द कर देना चाहिए। इस प्रकार औसत आगम की तुलना औसत लागत से करके हमें यह ज्ञात हो जाता है कि फर्म लाभ कमा रही है अथवा घाटे में चल रही है। उत्पादन करने का निर्णय लेने के बाद फर्म को एक अन्य निर्णय भी करना पड़ता है। अर्थात् फर्म को यह तय करना पड़ता है कि वस्तु की कितनी मात्रा का उत्पादन किया जाए। स्पष्टतया फर्म वस्तु की उस मात्रा का उत्पादन करना चाहेगी जो अधिकतम लाभ कमाने में सहायक हो। इस महत्वपूर्ण प्रश्न का निर्णय करते समय सीमान्त आगम की धारणा से बहुमूल्य सहायता मिल ती है। मांग -पक्ष का सीमान्त आगम पूर्ति-पक्ष की सीमान्त लागत का प्रतिरूप है। यदि फर्म अधिकतम लाभ कमाना चाहती है तो उसे वस्तु की उस मात्रा का उत्पादन करना चाहिए जिस पर सीमान्त आगम, सीमान्त लागत के बराबर (MR = MC) हो। दूसरे शब्दों में अधिकतम लाभ कमाने के लिए सीमान्त आगम (MR) सीमान्त लागत (MC) से अधिक है तो इसका अभिप्राय यह है कि फर्म अधिकतम लाभ नहीं कमा रही है और उत्पादन वृद्धि से सीमान्त आगम को घटाकर यह अपने लाभ को और अधिक बढ़ा सकती है। इसके विपरीत, यदि सीमान्त आगम (MR) सीमान्त लागत (MC) से कम है तो इसका अभिप्राय यह है कि उत्पादित की गई अतिरिक्त इकाइयों पर हानि

उठा रही है और उत्पादन-कमी द्वारा सीमान्त आगम को बढ़ाकर वह अपनी हानि को कम कर सकती है अथवा लाभ को बढ़ा सकती है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि फर्म अधिकतम लाभ उत्पादन के केवल उसी स्तर पर कमा सकती है जहाँ सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत में समानता होती है।

13.8 लघु उत्तरीय प्रश्न

1.पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में कीमत रेखा का स्वरूप होता है।

A. AR = MR

B. AR > MR

C. AR < MR

D. TR X MR

2.अपूर्ण प्रतियोगिता में

A. AR > MR

B. AR > MR

C. AR ÷ MR

D. TR X MR

3.पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म

A. कीमत प्राप्तकर्ता एवं मात्रा नियोजक होती है।
B. मात्रा प्राप्तकर्ता एवं कीमत नियोजक होती है।
C. केवल कीमत नियोजक होती है।
D. केवल मात्रा प्राप्तकर्ता होती है।

4.अपूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त लागत तथा कीमत में कम अन्तर होता है क्योंकि, मांग वक्र -

A. अधिक लोचदार होता है।
B. कम लोचदार होता है।
C. बेलोचदार होता है।
D. अत्यधिक बेलोचदार होता है।

5.एकधिकारी फर्म का मांग वक्र तथा सीमान्त आप वक्र एक ही वक्र होता है -

A. सही
B. गलत
C. अनिश्चित

6.किस बाजार मे फर्म के उत्पादन की मांग पूर्ण लोचदार नहीं होती ?

A. पूर्ण प्रतियोगिता में
B. पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार में
C. एकाधिकार और अपूर्ण प्रतियोगिता में
D. पूर्ण प्रतियोगिता एवं अपूर्ण प्रतियोगिता में

7.विकुंचित मांग -वक्र का सम्बन्ध है -

A. पूर्ण प्रतियोगिता बाजार से
B. एकाधिकारी बाजार से
C. अल्पाधिकार बाजार से
D. उपर्युक्त सभी से

13.9 सारांश

इस अध्याय में हमने अध्ययन किया कि कीमत सिद्धान्त में आगम वक्र महत्वपूर्ण भूमिका प्र्रस्तुत करते हैं। इस खण्ड में कुल आगम, औसत आगम तथा सीमान्त आगम-वक्रों का विस्तारपूर्वक विष्लेषणात्मक अध्ययन किया गया।

कीमत विश्ले षण में कुल आगम-वक्र का कोई विशेष महत्व नहीं होता है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार में प्रचालित केवल एक ही कीमत होती है अर्थात् मांग की लोच पूर्णतया लोचदार होती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्र दोनों ही बायीं से दायीं ओर नीचे झुकते हुए होते हैं।

हमारे वास्तविक जीवन में बाजार में न तो पूर्ण प्रतियोगिता होती है और न ही विशुद्ध एकाधिकार। वास्तविक जीवन में तो अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति ही पाई जाती है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम-वक्र X.अक्ष के क्षितिजीय होता है। जबकि विशुद्ध एकाधिकर के अन्तर्गत औसत आगम-वक्र प्रपाती होता है।

13.10 शब्दावली

आगम -आगम जिसे समान्यतया आय कहा जाता है, का अर्थ किसी फर्म या उत्पादक की उन प्राप्तियों से होता है जो उसे अपनी वस्तु की बिक्री से प्राप्त होती है।

औसत आगम- प्रति इकाई बिक्री से प्राप्त आय

$$AR = \frac{TR}{Q} = \frac{\text{कुल आगम}}{\text{कुल उत्पादन}}$$

सीमान्त आगम - उत्पादन की अन्तिम इकाई की बिक्री से प्राप्त आय

$$MR = TR_n - TR_{n-1}$$

पूर्ण प्रतियोगिता - पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति होती है जिसमें क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है, वस्तुएं समरूप होती है, क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार की पूर्ण जानकारी होती है। परिणाम स्वरूप किसी फर्म का कीमत पर कोई नियन्त्रण नही होता है।

एकाधिकार - एकाधिकार उस बाजार स्थिति को कहते हैं जिसमें किसी वस्तु का केवल एक ही उत्पादक होता है और उसका अपनी वस्तु की पूर्ति पर जिसका कोई निकट स्थानापन्न नहीं होता, पूर्ण नियंत्रण होता है।

अल्पाधिकार - अल्पाधिकार अपूर्ण प्रतियोगिता का ही एक रूप है। अल्पाधिकार बाजार की वह स्थिति होती है जिसमें विक्रेताओं की संख्या इतनी कम होती है कि प्रत्येक विक्रेता की पूर्ति का बाजार कीमत पर समुचित प्रभाव पड़ता है और प्रत्येक विक्रेता इस तथ्य से अवगत रहता है।

13.11 संदर्भ

- स्टोनियर एण्ड हेग, ‘‘अटेक्सट बुक ऑफ इकोनॉमिक्स ऑक्सफोड पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
- आहूजा, एच0एल0, ‘‘उत्तर आर्थिक विश्लेषण’’ एस चॉद एण्ड कम्पनी, रामनगर , नई दिल्ली, 2008
- स्टिगलर, जी (1996), थियरी ऑफ प्राइस, (4जी म्कपजपवद), प्रिन्सिटन हॉY ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली
- सेन, ए (1999), माइक्रोइकोनॉमिक्स, थियरी एण्ड अप्लीकेशन्स, ऑक्सफोड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली
- लॉयरड, पी0आर0जी0 एण्ड, ए, डब्ल्यू0 वालटरस (1978) माइक्रो इकोनॉमिक थियरी मैग्राहिल, नई दिल्ली

- क्रेप्स डेविड एम (1990), ''अ कोर्स इन माइक्रोइकोनॉमिक थियरी'', प्रिन्सटन यूनीवर्सिटी प्रेस, प्रिन्सटन

13.12 लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

1. A 2. A 3. A 4. A 5. B 6. C 7. C

13.13 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. फर्म की औसत तथा सीमान्त आगमों के बीच अन्तर बताइए। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उनका वस्तु के मूल्य से क्या सम्बन्ध है ?
2. आप कुल आगम, औसत आगम तथा सीमान्त आगम से क्या समझते हैं ? आगम विश्लेषण का महत्व स्पष्ट कीजिए ?
3. पूर्ण प्रतियोगिता और अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत रेखाओं के आकार की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। अपने उत्तर की पुष्टि उपयुक्त रेखाचित्रों के माध्यम से कीजिए।
4. ''किसी फर्म का सीमान्त आगम-वक्र उसके औसत आगम-वक्र से ऊँचा नहीं हो सकता है।'' व्याख्या कीजिए।

इकाई-17 बाजार संरचना एवं फर्म का संतुलन विश्लेषण

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 बाजार का अर्थ एवं वर्गीकरण
    17.3.1 क्षेत्र के आधार पर
    17.3.2 कार्य के आधार पर
    17.3.3 समय के आधार पर
    17.3.4 प्रतियोगिता के आधार पर
    17.3.5 बाजार के विस्तार को प्रभावित करने वाले तत्व
17.4 फर्म का सन्तुलन विश्लेषण
    17.4.1 फर्म का सन्तुलन कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा
    17.4.2 फर्म का सन्तुलन सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्रों द्वारा
17.5 सारांश
17.6 शब्दावली
17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
17.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र के बाजार संरचना एवं कीमत निर्धारण से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि उत्पादन फलन क्या है ? उपभोक्ता सन्तुलन कैसे होता है।

बाजार संरचना एवं फर्म की धारणाओं के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है कि बाजार संरचना क्या है इसके कितने प्रकार है। फर्म की धारणएं किस प्रकार से बाजार को प्रभावित करती है।इसके अतिरिक्त प्रस्तुत इकाई में फर्म के सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बाजार संरचना एवं फर्म की धारणाओं के महत्व को समझा सकेगें, तथा कीमत एवं उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में फर्म के विभिन्न दृष्टिकोण का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेगें।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- बता सकेंगे कि बाजार कितने प्रकार का होता है।
- समझा सकेंगे कि विभिन्न प्रतियोगिता बाजार में की मत निर्धारण कैसे होता है।
- फर्म की आगम और लागत धारणा में सन्तुलन की क्या शर्ते है।
- फर्म का संतुलन विश्लेषण को समझ सकेंगे।

17.3 बाजार का अर्थ एवं वर्गीकरण

बाजार शब्द का प्रयोग उस स्थान अथवा भवन से लिया जाता है जहाँ वस्तु, क्रेता तथा विक्रेता भौतिक रूप से उपस्थित होते है तथा क्रय-विक्रय करते है। आर्थिक दृष्टि से यह बाजार की एक आवश्यक एवं सम्पूर्ण विशषता नहीं है। वस्तुओं का क्रय-विक्रय अभिकर्त्ता द्वारा नमूना दिखाकर खरीदने का आदेश प्राप्त किया जाता है। वस्तु की खरीद टेलीफोन, पत्र, ई-मेल आदि द्वारा भी की जा सकती है। वस्तु का संचय एवं सुपुर्दगी एक स्थान पर हो सकती है पर उसका सौदा दूसरे स्थान पर हुआ हो। क्रेता तथा विक्रेता एक बडे क्षेत्र, प्रदेश या देश एवं सम्पूर्ण संसार में हो सकते है अतः अर्थशास्त्र में बाजार के लिए एक स्थान विशेष से होना आवश्यक नहीं है। आर्थिक दृष्टि से बाजार का अर्थ उस समस्त क्षेत्र से लेते है जिसमें क्रेता तथा विक्रेता फैले हों और उनमें प्रतिस्पर्द्धात्मक सम्पर्क हो । कूरनों के अनुसार "अर्थशास्त्री बाजार शब्द का अर्थ किसी स्थान विशेष से नहीं लेते

जहाँ पर कि वस्तुएँ खरीदी तथा बेची जाती है, बल्कि इसका अर्थ उस समस्त क्षेत्र से लेते है, जिसमें क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच इस प्रकार का स्वतन्त्र सम्पर्क होता है कि एक कस्तु की कीमत की प्रवृत्ति सुगमता से तथा शीघ्रता से समान होने की पायी जाती है।" स्टोनियर तथा हेX के अनुसार, "अर्थशास्त्री बाजार का अर्थ एक ऐसे संगठन से लेते है जिससे कि किसी वस्तु के क्रेता या विक्रेता एक दूसरे के निकट सम्पर्क में रहते है।"

के0 आर0 क्रॉस के अनुसार, "बाजार का अर्थ क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच किसी साधन या वस्तु के लेन देन का जालसूत्र है।"

प्रो0 जे0 के0 मेहता के अनुसार "बाजार एक स्थिति को बताता है जिसमें कि एक वस्तु की माँग ऐसे स्थान पर होती है जहाँ उसे विक्रय के लिए प्रस्तुत किया जाए।"

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर एक बाजार की निम्न विशेषताएं स्पष्ट होती है-

1. कोई एक भी वस्तु जिसका सौदा किया जाता है।

2.क्रेताओं तथा विक्रेताओं में निकट का सम्पर्क रहना चाहिए जो अनेक स्पर्द्धात्मक दशाओं को उत्पन्न करता है।

बाजार का वर्गीकरण : बाजार के वर्गीकरण के प्रमुख आधार निम्न है।

17.3.1 क्षेत्र के आधार पर

(1) स्थानीय बाजार:- जब किसी वस्तु की माँग स्थानीय होती है, तो उस वस्तु के बाजार को स्थानीय बाजार कहते है। जिसके क्रेता तथा विक्रेता एक छोटे से स्थान विशेष तक ही सीमित होते है। ये शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं साग-सब्जी, मछली ,दूध इत्यादि के बाजार और मूल्य की अपेक्षा भारी वस्तुओं ईटों इत्यादि के बाजार को स्थानीय बाजार कहते है।

(2) प्रादेशिक बाजार- जब किसी वस्तु की माँग एक प्रदेश या बड़े क्षेत्र तक होती है तो उस वस्तु के बाजार को प्रादेशिक बाजार कहते है। जैसे हिमाचल की टोपियों का बाजार, लाख चूड़ियों का बाजार प्रादेशिक बाजार है। क्योकि टोपियों की माँग हिमाचल प्रदेश तक और चूड़ियों की माँग राजस्थान प्रदेश तक ही सीमित है।

(3) राष्ट्रीय बाजार - जब किसी वस्तु की माँग पूरे देश में हो अर्थात उस वस्तु के क्रेता तथा विक्रेता पूरे देश में फैले हो तो उस वस्तु के बाजार को राष्ट्रीय बाजार कहते है, जैसे साड़ी,धोती एवं चूड़ियों का बाजार।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार - जब किसी वस्तु की माँग विश्वव्यापी हो अर्थात इनके क्रेता, विक्रेता पूरे संसार में फैले हो तो उस वस्तु के बाजार को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार कहते है, जैसे सोना, चाँदी का बाजार।

17.3.2 कार्य के आधार पर

1. सामान्य बाजार:- जब एक ही बाजार में विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ खरीदी एवं बेची जाती है तो उसे सामान्य बाजार कहते है जैसे शहरों में एक ही बाजार या स्टोर पर उपभोक्ता विभिन्न प्रकार की वस्तुऐं खरीद सकता है।

2. विशिष्ट बाजार:- जब केवल एक ही वस्तु का बाजार एक स्थान पर केन्द्रित होता है, तो उसे विशिष्ट बाजार कहते है जैसे कपड़े का बाजार बर्तनों का बाजार, किताबों का बाजार आदि।

बाजार का वर्गीकरण

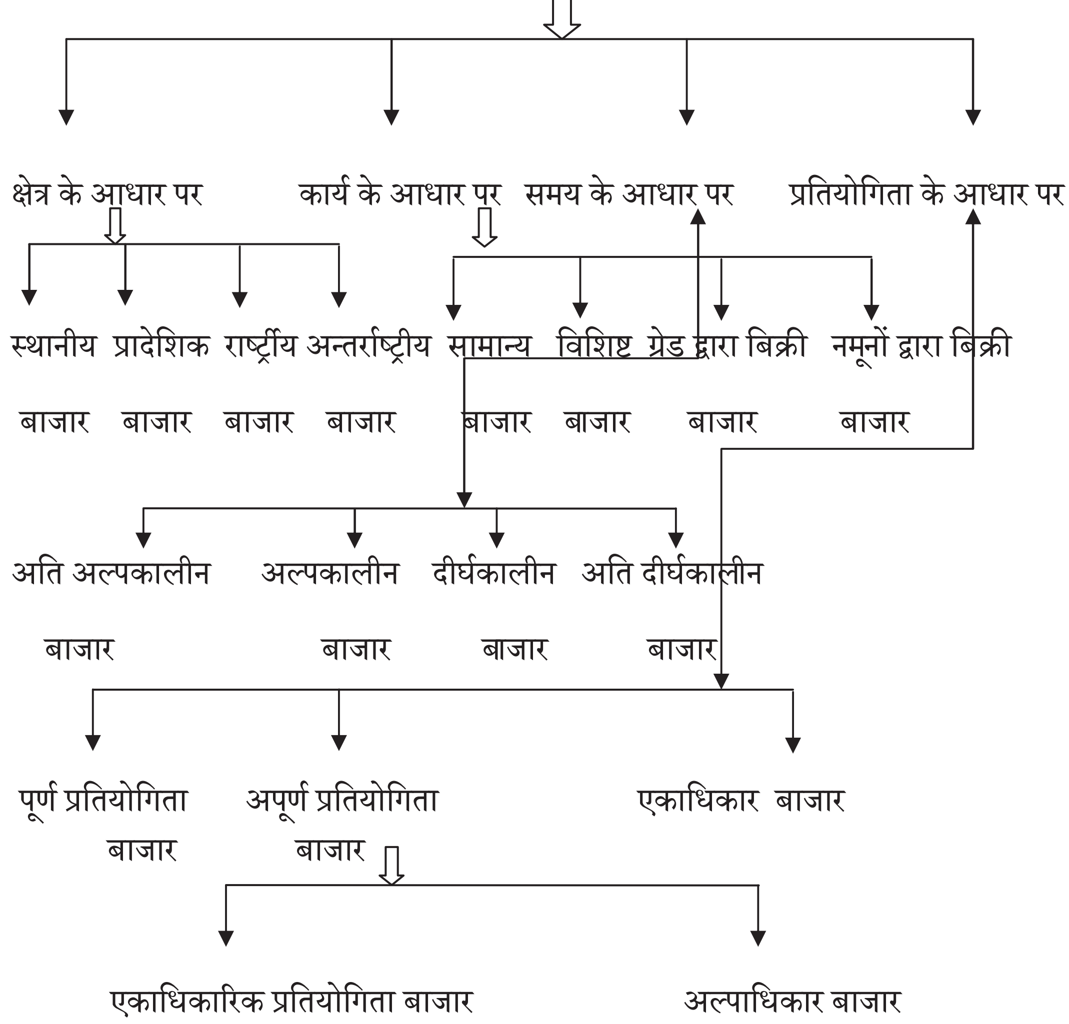

3. ग्रेड द्वारा ब्रिक्री बाजार:- कुछ वस्तुओं को ग्रेड या विभिन्न वर्गो में विभक्त कर क्रय करते है उसे ग्रेड द्वारा बिक्री बाजार कहते है जैसे विभिन्न देशों में गेहुँ एवं इस्पात का क्रय विक्रय ग्रेड के आधार पर करते है।

4. नमूनों द्वारा बिक्री बाजार:- जिन वस्तुओं का क्रय-विक्रय नमूनों के आधार पर होता है जैसे - ऊनी कपड़े एवं इमारती पत्थर।

17.3.3 समय के आधार पर

1. अतिअल्पकालीन बाजार:- वह बाजार जिसमें वस्तु की पूर्ति उसके स्टाँक तक ही समिति होती है उसे घटाया बढ़ाया नहीं जा सकता। मूल्य निर्धारण में माँग का ही मुख्य प्रभाव पड़ता है उसे अति अल्पकालीन बाजार कहते है जैसे सब्जी, मछली, दूध आदि।

2. अल्पकालीन बाजार:- अल्पकालीन बाजार वह होता है जहाँ पूर्ति को वस्तु की उत्पादन क्षमता तक बढाया जा सकता है, इस कारण यहाँ भी मूल्य निर्धारण में माँग का ही मुख्य प्रभाव पड़ता है।

3. दीर्घकालीन बाजार:- वह बाजार होता है जिसमें बाजार में इतना समय रहता है कि उत्पादन क्षमता में माँग के साथ पूरा पूरा समायोजन किया जाता है, अर्थात नये यन्त्रों तथा प्लाटों में वृद्धि या वर्तमान यन्त्रों तथा प्लाटों में कमी की जा सकती है। मूल्य निर्धारण में पूर्ती का महत्वपूर्ण प्रभाव रहता है।

4. अति दीर्घकालीन बाजार:- वह बाजार होता है जिसमें जनसंख्या में वृद्धि, उपभोक्ताओं की रूचियों और फैशन में परिर्वतन होने से माँग में परिर्वतन हो सकता है, साथ ही नई खोज,उत्पादन की तकनीक तथा प्रविधि में परिवर्तन के फलस्वरूप लागत में बहुत कमी हो जो पूर्ति में परिर्वतन ला दे। इतना विस्तृत समय होता है जो किसी वस्तु की उत्पत्ति के साधनों को उत्पन्न करने वाले साधनों में भी परिर्वतन किया जा सकता है और माँग एवं पूर्ति में समायोजन प्रक्रिया चल ती रहती है।

17.3.4 प्रतियोगिता के आधार पर

बाजार का रूप वस्तु स्वभाव, क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या और उनके बीच निर्भरता पर निर्भर करती है, जिसे संक्षेप में प्रतियोगीता कहते है। जिसके निम्न रूप है-

1. पूर्ण प्रतियोगिता:- पूर्ण प्रतियोगिता बाजार वह है जहाँ स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले छोटे क्रेताओं तथा विक्रेताओं की अधिक संख्या होती है जो समरूप वस्तु का उत्पादन करते हो। वहाँ वस्तु का ही नहीं विक्रेताओ का भी प्रमापीकरण होता हों। सभी को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है। कोई गैर कीमत प्रतियोगिता नहीं होता। उत्पादन के साणन पूर्ण गति शील होते है फलस्वरूप एक कीमत (माँग की मुल्य लोच अनेक) पाई जाती है, और एक व्यक्तिगत विक्रेता या उत्पादक या फर्म के लिए उसकी वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार होती है।

श्रीमती जाँन राबिन्स के अनुसार ‘‘पूर्ण प्रतियोगिता तब प्रचलित होती है जबकि प्रत्येक उत्पादक के लिए माँग पूर्णतया लोचदार होती है। इसका अर्थ है- प्रथम, विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है

जिससे किसी एक विक्रेता का उत्पादन वस्तु के कुल उत्पादन का बहुत थोड़ा अंश होता है तथा द्वितीय,सभी क्रेता , प्रतियोगी विक्रेताओ के बीच चुनाव करने की दृष्टि से समान होते है जिससे बाजार पूर्ण हो जाता है।"

2. एकाधिकार:- एकाधिकार वह है जिसका वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण हो, प्रतियोगिता शून्य होती है। एक फर्म उद्योग पाया जाता है, वस्तु के कोई निकट या अच्छे स्थानापन्न नहीं होते या वस्तु की माँग की आड़ी लोच शून्य होती है। साथ ही नए उत्पादको के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रूकावट होती है।

प्रतियोगिता बाजार का वर्गीकरण

विशेषताएँ	पूर्ण प्रतियोगिता	एकाधिकार	अपूर्ण प्रतियोगीता (अ) एकाधिकार	अल्पाधिकार
1.फर्मो की संख्या	बहुत अधिक	एक	अधिक संख्या	कुछ अधिक परन्तु दो से कम नहीं
2. वस्तु का स्भाव	प्रमापित या समरूप	निकट के स्थानापन्न	विभेदीकृत	प्रमापित या विभेदित
3. फर्म के लिए माँग की कीमत लोच	अनन्त	बहुत कम	अधिक	कम
4. जानकारी की पूर्ण प्राप्यता	हाँ	नहीं	न्हीं	नहीं
5. कीमत पर नियन्त्रण की मात्रा	कुछ नहीं	पर्याप्त या पूर्ण	कुछ	कुछ
6. गैर कीमत प्रतियोगिता	कोई नहीं	मात्रा जनता से अच्छे सम्बन्ध दिखाने के लिए	विज्ञापन,टेडमार्क ब्राण्ड पर जोर	भेदित अल्पाधिकार में पर्याप्त
7. फर्मो के प्रवेश एवं निकासी की सुगमता	बाधारहित बिल्कुल सुगम	पूर्णतया बन्द	आसान	कठिन कुछ बाधाएँ

3. अपूर्ण प्रतियोगिता:- अपूर्ण प्रतियोगिता का आशय पूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार की किसी भी दशा का अभाव होना है। इस प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अनेक उपश्रेणियाँ होती है प्रथम महत्वपूर्ण उपश्रेणी एकाधिकारिक प्रतियोगिता है जिस पर प्रो0 ई0 एच0 चैम्बरलिन ने अधिक बल दिया है। एकाधिकार प्रतियोगिता वह जिसमें बड़ी संख्या में फर्मे विभेदीकृत पदार्थो का उत्पादन

करती है जो एक दूसरे के निकट के स्थानापन्न होते है। इनके परिणामस्वरूप एक फर्म का माँग वक्र अधिक लोचदार होता है। जो यह संकेत करता है कि इसमें फर्म कीमत पर कुछ नियन्त्रण रखती है। अपूर्ण प्रतियोगिता की दूसरी श्रेणी जिसे श्रीमती जोन राबिन्सन ने अल्पाधिकार कहा है इसकी प्रथम उपश्रेणी पदार्थ विभेदीकरण बिना अल्पाधिकार है जिसे शुद्ध अल्पाधिकार कहते है इसमें समरूप पदार्थ का उत्पादन करने वाली कुछ फर्मो के बीच प्रतियोगिता होती है। फर्मों की कमी सुनिश्चित करती है कि उनमें से प्रत्येक का पदार्थ कीमत पर कुछ नियन्त्रण होगा तथा प्रत्येक फर्म का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है जो यह इंगित करता है कि प्रत्येक फर्म कीमत पर कुछ नियन्त्रण रखती है। इसकी दूसरी उपश्रेणी पदार्थ विभेदीकरण सहित अल्पाधिकार है जो विभेदीकृत अल्पाधिकार कहलाता है। इसमें विभेदीकृत पदार्थ जो एक दूसरे के निकट स्थानापन्न होते है। उत्पादन करने वाली कुछ फर्मों के बीच प्रतियोगिता पायी जाती है। इसके अर्न्तगत व्यक्तिगत फर्म के बीच का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। अतः फर्म अपने व्यक्तिगत पदार्थ की कीमत पर नियन्त्रण रखती है।

17.3.5 बाजार के विस्तार को प्रभावित करने वाले तत्व

किसी भी वस्तु का बाजार विस्तृत और संकुचित हो सकता है। वर्तमान समय में वस्तुओं के बाजार के विस्तार को प्रभावित करने वाले तत्वों को दो वर्गो में रखा गया है-

1. वस्तु की विशेषताएँ

वस्तु की विशेषताओं में प्रमुख रूप से वस्तु की व्यापक माँग, उसकी वहनीयता, टिकाऊपन, नमूना या ग्रेड बनाने की उपयुक्तता एवं पूर्ति की पर्याप्तता उसके बाजार के आकार को निर्धारित करते है। जिस वस्तु की माँग व्यापक होगी उसका बाजार विस्तृत होगा जैसे गेहूँ, सेना आदि। इसी तरह कम भार और अधिक मूल्य एवं टिकाऊ वस्तु सोना, चाँदी का बाजार विस्तृत होता है। गेहूँ जैसी वस्तुओं जिनका नमूना और ग्रेड बनाया जा सकता है। उनका बाजार विस्तृत होता है,जबकि सब्जी,दूध, और मछली इत्यादि में ये गुण नहीं होता, इसलिए इनका बाजार संकुचित होता है। वस्तु की पूर्ति की पर्याप्तता उसके बाजार के विस्तार को बढ़ती है जब वस्तु की पूर्ति पर्याप्त मात्रा में नहीं होती तो उपभोक्ता उसके स्थान पर अन्य वस्तु का प्रयोग करने लगता   है और उसका बाजार संकुचित होता है।

2. देश का वातावरण तथा उसकी आन्तरिक दशाएँ

वस्तु के बाजार के विस्तार को देश का वातावरण तथा उसकी आन्तरिक दशाओं का विशेष प्रभाव पड़ता है। जैसे यातायात एवं संवादवाहन के साधन, श्रम विभाजन की मात्रा, दृढ़ मुद्रा तथा कुशल साख व्यवस्था, विक्रय की नयी तथा वैज्ञानिक रीतियाँ, सरकार की कर तथा व्यापार नीति और देश में शान्ति तथा सुरक्षा आदि।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरिए

(क) समय के आधार पर बाजार कितने प्रकार....................... का होता है।
(ख) प्रतियोगिता के आधार पर बाजार कितने प्रकार................................. का होता है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

क. निम्न में प्रतियोगिता के आधार पर बाजार नहीं है।
(अ) अल्पकालीन बाजार (ब) पूर्ण प्रतियोगिता
(स) अपूर्ण प्रतियोगिता (द) एकाधिकार

ख. लाख की चूड़ियों का बाजार उदाहरण है-
(अ) स्थानीय बाजार (ब) प्रादेशिक बाजार
(स) देशीय बाजार (द) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार

17.4 फर्म का सन्तुलन विश्लेषण

आगम धारण, लागत धारण एवं बाजार की जानकारी के बाद हम इस योग्य हैं कि इस बात का निर्णय कर सकें कि फर्म अथवा कोई उत्पादक कब सन्तुलन में होगा। किसी एक फर्म के सन्तुलन में हम यह जानते है कि वह फर्म अथवा उत्पादक वस्तु की कितनी मात्रा उत्पादित करेगा। वास्तव में सन्तुलन शब्द का आशय 'सन्तुलन की स्थिति अथवा अपरिवर्तन की स्थिति' से है। अतः जब कोई आर्थिक इकाई उपभोक्ता, उत्पादक कोई सन्तुलनावस्था को प्राप्त होते है, वह उस स्थिति में किसी प्रकार का परिर्वतन नहीं चाहता कि वह वस्तु का उत्पादन को घटाये या बढ़ाये। जैसा कि बोल्ड़िग कहते है कि, "एक उद्योग या फर्म उस समय सन्तुलन की स्थिति में कहा जाता जबकि उसके विस्तार या संकुचन की कोई प्रवृति नहीं होती है" इस तरह की स्थिति तब होगी जब वह फर्म अधिकतम लाभ अर्जित कर रही होगी। क्योंकि कोई भी विवेक्शील उत्पादक यह जानता है कि उत्पादन मात्रा घटाने-बढाने से अपना लाभ बढ़ाया जा सकता है तो वह उत्पादन मात्रा में परिर्वतन करता है। परन्तु जिस उत्पादन मात्रा पर वह अधिकतम लाभ अर्जित कर रहा है यहाँ उत्पादन मात्रा घटाने-बढ़ाने से तो उसका कम ही होगा बढ नहीं सकता। इस सन्दर्भ में अधिकतम लाभ की उस स्थिति में फर्म की लागत, कीमत उत्पादन मात्रा आदि को देखना होगा जिस पर उस फर्म का सन्तुलन बिन्दु होगा।

इस विश्लेषण में हम यह मान लेते है कि फर्म केवल एक पदार्थ का उत्पादन करती है, जबकि वास्तविक जगत में फर्म एक अधिक पदार्थ का उत्पादन करती है यदि उसे लेते है तो भी हमारे विश्लेषण के मैलिक निष्कर्षो पर कोई प्रभाव नहीं पडेगा। यहाँ हम एक पदार्थ उत्पादित करने वाली फर्म के सन्तुलन का विश्लेषण केवल सामान्य रूप में ही करेंगें। फर्म के सन्तुलन की व्याख्या विभिन्न बाजार के रूपों अर्थात् पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार, एकाधिकारिक प्रतियोगिता और अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अगले इकाईयों में की जाएगी। इस इकाई में सन्तुलन की सामान्य शर्तो की व्याख्या करेंगे जो सभी प्रकार के बाजारों पर लागू होती है।

फर्म के सन्तुलन की व्याख्या के सन्दर्भ में दो दृष्टिकोण प्रचलित है, प्रथम, पुराना तथा वास्तविक व्यावसायिक जगत में लोकप्रिय कुल आगम और कुल लागत वक्र अवधारणा द्वितीय सीमान्तवादी अवधारणा के अन्तर्गत सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्र की सहायता द्वारा।

17.4.1 फर्म का सन्तुलन कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा

फर्म का सन्तुलन कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा फर्म का सन्तुलन उस बिन्दु पर होता है जहाँ वह अधिकतम लाभ अर्जित करती है। लाभ कुल आगम और कुल लागत का अन्तर होता है। अतः फर्म उस उत्पादन मात्रा पर सन्तुलन में होगी। जिस पर कि उसकी कुल आगम और कुल लागत में अन्तर अधिकतम होगा। कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा फर्म के सन्तुलन को रेखाचित्र 17.1 में स्पष्ट किया गया है।

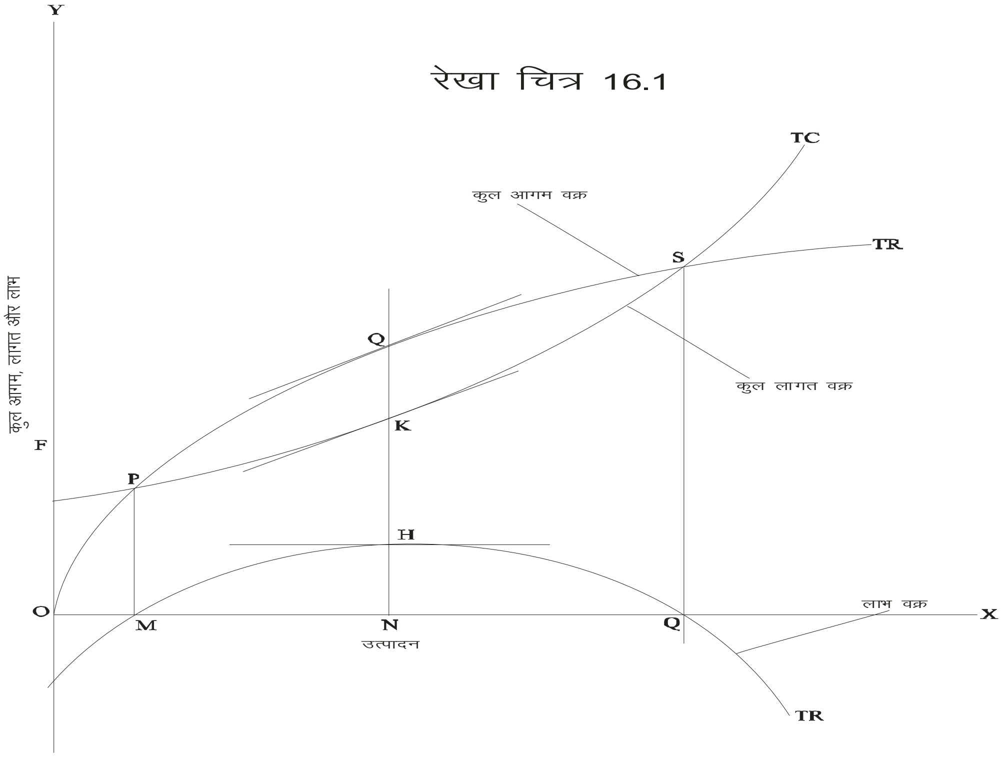

जहाँ TR कुल आगम वक्र तथा TC कुल लागत वक्र है। कुल आगम वक्र TR मूल बिन्दु o से प्रारम्भ होता है जिसका आशय है कि जब कुछ भी उत्पादन नहीं किया जाता तो आगम शून्य होता है। उत्पादन की मात्रा में जैसे-जैसे वृद्धि होती है, कुल आगम बढ़ता जाता है। इसी करण कुल आगम वक्र TR बाएँ से दाई ओर को ऊपर चढ़ता है। जबकि कुल लागत वक्र TC मूल बिन्दु से शुरू न होकर बिन्दु F से शुरू होता है, अर्थात जब फर्म कोई उत्पादन नहीं करती तो भी उसे OF के बराबर लागत उठानी पड़ती है। ऐसा अल्पकाल में होता है, जिसमें फर्म यदि उत्पादन करना बन्द भी कर दे तो भी उसे स्थिर लागत वहन करना पड़ता है।

फर्म OM से कम मात्रा उत्पादित करने पर हानि प्राप्त करती है, क्योंकि प्रारम्भ में कुल लागत कुल आगम से अधिक है। फर्म OM उत्पादन मात्रा पर कुल आगम कुल लागत के बराबर इसलिए न तो हानि हो रही है न ही लाभ इसलिए OL उत्पादन मात्रा के इस S बिन्दु को समस्थिति बिन्दु कहते है। अब फर्म OM से उत्पादन बढ़ता है,तो कुल आगम कुल लागत से बढ़ता जाता है और फर्म को लाभ प्राप्त होता है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि उत्पादन मात्रा ON पर कुल आगम वक्र TR और कुल लागत वक्र TC के बीच की दूरी अधिकतम है और इस मात्रा पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। इस कारण फर्म ON उत्पादन मात्रा पर सन्तुलन में होगी। कुल आगम और कुल लागत वक्रों के बीच अधिकतम दूरी की जानकारी दो प्रकार से होती है,प्रथम ON उत्पादन पर ही जहाँ कुल आगम और कुल लागत वक्रों पर खीची गई स्पर्श रेखाएं एक दूसरे के समान्तर है। इसी बीच उनके मध्य दूरी अधिकतम है, और वहाँ लाभ अधिकतम प्राप्त हो रहा है। दूसरा विधि कुल लाभ वक्र है जो कि उत्पादन की विभिन्न मात्राओं पर कुल आगम और कुल लागत में अन्तर को व्यक्त करता है। इस प्रकार जिस उत्पादन मात्रा पर कुल लाभ वक्र का उच्चतम बिन्दु होगा उस उत्पादन मात्रा पर लाभ अधिकतम होगा। रेखा चित्र से स्पष्ट है कि ON उत्पादन मात्रा पर कुल लाभ वक्र का उच्चतम बिन्दु H है, अर्थात ON उत्पादन मात्रा पर ही लाभ अधिकतम है। अतः ON से कम या अधिक उत्पादन मात्रा पर कुल लाभ NH से कम होगा। कुल लाभ वक्र OM उत्पादन मात्रा से कम पर X अक्ष के नीचे स्थित है जिसका अर्थ यह है कि फर्म OM उत्पादन मात्रा से कम उत्पादन मात्रा पर ऋणात्मक लाभ (हानि) प्राप्त हो रही है। बिन्दु ड के बाद लाभ प्राप्त होना शुरू होता है जो ON उत्पादन मात्रा पर अधिकतम होता जाता है इसके बाद भी फर्म यदि उत्पादन करती है तो लाभ वक्र नीचे को गिरने (लाभ घटने लगता है) लगता है। ON उत्पादन मात्रा पर ही कुल आगम और कुल लागत वक्र के बीच अधिकतम अन्तर है ऐसा उस बिन्दु पर खीची गई स्पर्श रेखाओं द्वारा भी स्पष्ट होता है। इस बिन्दु पर ही फर्म को अधिकतम लाभ छभ् की प्राप्ति होती है। इसके बाद फर्म उत्पादन नहीं करेगीं क्योकि कुल आगम और कुल लागत के बीच अन्तर घटने लगताहै, फलस्वरूप कुल लाभ भी कम हो जायेंगा। उत्पादन मात्रा OQ पर कुल लागत और कुल आगम वक्र एक दूसरे को पुनः काटते है अर्थात इस उत्पादन मात्रा OQ पर कुल आगम कुल लागत के बराबर है। अतः बिन्दु S पुनः एक समस्थिति बिन्दु (ब्रेक ईवेन प्वाइन्ट) है। यदि उत्पादन को OQ से

अधिक बढ़ाते है, तो फर्म की कुल आगम कुल लागत की अपेक्षा कम होगी और हानि उठानी पडेगी। जैसा कि कुल लाभ वक्र TP से भी पता चल रहा है कि OQ उत्पादन मात्रा के बाद वह X अक्ष के नीचे जा रहा है।

फर्म के संन्तुलन के सम्बन्ध में उपर्युक्त दृष्टिकोण का प्रयोग प्रायः व्यावसायिक व्यक्तियों द्वारा किया जाता है किन्तु इसमें कई कमियाँ है प्रथम कमी तो यह है कि कुल आगम और कुल लागत के बीच अधिकतम अन्तर ज्ञात करना बहुत कठिन है। बहुत से स्पर्श रेखाएँ खीचनी पड़ती है और तब कही दो समान्तर स्पर्श रेखाएं दोनों वक्रों पर ज्ञात होती है। जिनके अनुरूप कुल लाभ अधिकतम होते है। यदि कुल लाभ वक्र खीचा जाता है तो अधिकतम लाभ बिन्दु ज्ञात करना कम कठिन है कोई कुल लाभ वक्र का उच्चतम बिन्दु अधिकतम लाभ को व्यक्त करता है। दूसरी कमी प्रति इकाई कीमत की जानकारी नहीं होती। चूंकि रेखाचित्र में कीमत प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं जाती। अतः कीमत जानने के लिए अधिकतम लाभ बिन्दु पर कुल आगम को कुल उत्पादन से भाग देकर प्राप्त करते है। इसलिए आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त में फर्म के सन्तुलन की व्याख्या सीमान्त विश्लेषण से जिसमें सीमान्त आगम और सीमान्त लागत की धारणाओं का प्रयोग कर ज्ञात करते है।

17.4.2 फर्म का सन्तुलन सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्रों द्वारा

एक फर्म एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन करने पर जो लागत आती है उसें सीमान्त लागत कहते है, एवं इस अतिरिक्त इकाई के बिक्री से जो आय प्राप्त होती है उसे सीमान्त आगम कहते है। एक फर्म का लाभ तब तक बढ़ेगा जब तक उसे अतिरिक्त इकाई की बिक्री से लागत की तुलना में आगम अधिक प्राप्त होता है।

उत्पादन इकाई	सीमान्त लागत MC रू0	सीमान्त आगम MR रू0	प्रति इकाई लाभ	कुल लाभ	MR एवं MC की स्थिति
1	7	8	1	1	MR>MC
2	6	8	2	3	MR>MC
3	5	8	3	6	MR>MC
4	6	8	2	8	MR>MC
5	7	8	1	9	MR>MC
6	8	8	0	9	MR=MC
7	9	8	-1	8	MR<MC
8	10	8	-2	6	MR<MC

अर्थात फर्म का उत्पादन तब तब बढ़ेगा जब तक सीमान्त आगम सीमान्त आय से अधिक होगा। जैसाकि तालिका 16.1 से स्पष्ट है कि फर्म अपना उत्पादन तब तक बढ़ाती है जब तक सीमान्त आगम सीमान्त लागत के बराबर न हो जाए उस अवस्था में फर्म का कुल लाभ अधिकतम होगा जोकि तालिका में उत्पादन की 6 इकाइयों पर सीमान्त लागत रू0 8 और सीमान्त आगम भी रू0 8 रू है इस अवस्था में कुल लाभ 9रू0 अधिकतम है। यदि फर्म इससे अधिक उत्पादन करती है तो उसे हानि होगी क्योंकि सीमान्त आगम सीमान्त लागत से अधिक है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जब फर्म वस्तु की इतनी मात्रा उत्पादित कर रही होती है। जिस पर की सीमान्त आगम MR और सीमान्त लागत MC बराबर हो तो फर्म सन्तुलन की स्थिति में होगी।

फर्म के सन्तुलन को रेखाचित्र 16.2 के द्वारा और अच्छे से स्पष्ट किया जाता है। MR और MC फर्म के सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्र हैं, जो एक दूसरे को म् बिन्दु पर काटते है अर्थात ON उत्पादन मात्रा पर फर्म की सीमान्त आगम उसके सीमान्त लागत के बराबर है और फर्म को अधिकतम लाभ की प्राप्ति होती है। इसके कम उत्पादन करने पर फर्म की सीमान्त आगम उसके सीमान्त लागत से अधिक है अतः उत्पादन बढ़ाकर लाभ बढ़ाये जा सकते है जैसे OM उत्पादन पर

रेखाचित्र 16.2

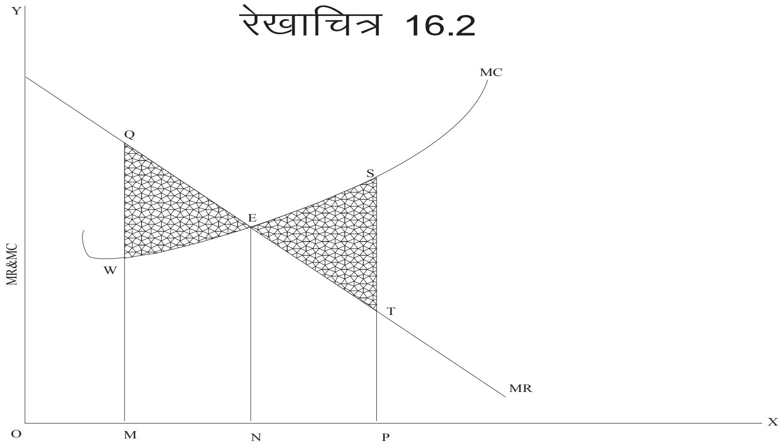

सीमान्त आगम MQ और सीमान्त लागत डॕ है जो कि उससे कम है इस कारण छवीं इकाई तक उत्पादन करना लाभकारी होगा। फर्म का उत्पादन यदि ON मात्रा से आगे बढ़ता है तो सीमान्त लागत सीमान्त आगम से अधिक हो जाता है जो फर्म के लाभ में कमी को दर्शाता है। इसलिए फर्म ON मात्रा उत्पादित करके अधिकतम सम्भव लाभ कमाएगी और संतुलन में होगी। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि फर्म अधिकतम लाभ और सन्तुलन को तब प्राप्त करके जब निम्न शर्त पूरी होती है-

सीमान्त आगम (MR) = सीमान्त लागत (MC)

यह फर्म के सन्तुलन की प्रथम शर्त है।

फर्म के सन्तुलन के लिए सीमान्त आगम MR का सीमान्त लागत से बराबर होना ही जरूरी नहीं है। बल्कि फर्म का सन्तुलन तब पूर्ण माना जाता है। जबकि सन्तुलन बिन्दु पर सीमान्त लागत MC वक्र सीमान्त आगम MR वक्र को नीचे से (अथवा बायें से दायें) काटे अर्थात सन्तुलन उत्पादन मात्रा के आगे सीमान्त लागत MC सीमान्त आगम MR से अधिक हो। इसी को फर्म के सन्तुलन की दूसरी शर्त कहते है।

रेखाचित्र 16.3

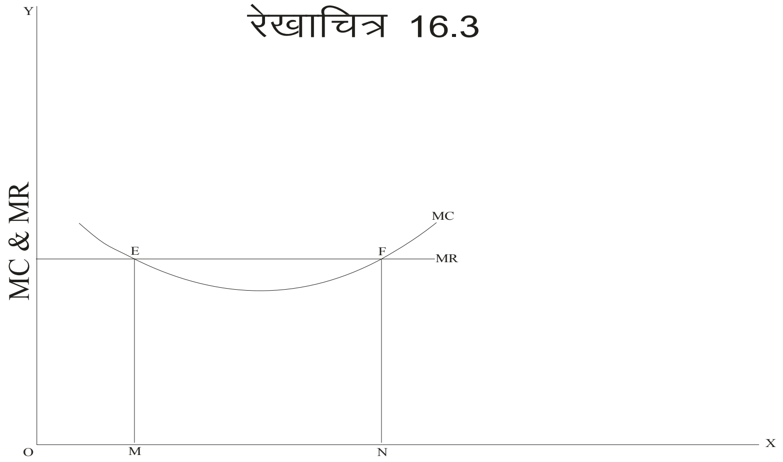

जिसको रेखाचित्र 16.2 एवं 16.3 में देखा जा सकता है। रेखाचित्र 16.3 में सीमान्त आगम वक्र क्षितिज के समानान्तर सरल रेखा है जैसा पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में होता है। और सीमान्त लागत MC वक्र शुरू में तो नीचे को गिरता हुआ ओर कुछ सीमा बाद यह ऊपर चढ़ता है जो सीमान्त आगम MR वक्र को दो बिन्दुओं E और Fपर काटता है जिस पर दोनों बराबर होते है। बिन्दु E पर सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को ऊपर से काटता है और OM उत्पादन होता हैं, परन्तु ON उत्पादन मात्रा तक सीमान्त लागत सीमान्त आगम से कम है इसलिए म् बिन्दु या OM उत्पादन पर सन्तुलन फर्म के लिए अलाभकारी है। बिन्दु F (ON उत्पादन) पर सीमान्त लागत MC वक्र सीमान्त आगम MR वक्र को नीचे काटता है और इस बिन्दु के बाद सीमान्त लागत सीमान्त आगम से अधिक है। अतः स्पष्ट है

कि फर्म का सन्तुलन F बिन्दु पर होगा और वह ON मात्रा उत्पादित करेगा। जहाँ फर्म सन्तुलन की दोनों शर्तें पूरी हो रही है-

(i) सीमान्त लागत (MC) = सीमान्त आगम (MR)

(ii)सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम को संतुलन बिन्दु पर नीचे से काटता है। अर्थात सीमान्त आगम वक्र की ढाल सीमान्त लागत की ढाल से कम है।

सन्तुलन की उपर्युक्त शर्ते पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार और अपूर्ण प्रतियोगिता सभी में पूरी होनी चाहिए। अर्थशास्त्र में इस विधि के प्रयोग द्वारा ही अधिकतर फर्म एवं उद्योगके सन्तुलन का विश्लेषण किया जाता है। सीमान्त वक्रों की सहायता से सन्तुलन ज्ञात करना एक तो सुगम है और इससे न केवल सन्तुलन मात्रा और लाभ ज्ञात हो जाते वरन् फर्म या उत्पादक प्रति इकाई मूल्य भी जान सकते है। साथ ही लाभ के सम्बन्ध में सही स्पष्टीकरण भी हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न 2 -

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

(अ) सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को नीचे से क्यों काटता है ?

(ब) एक फर्म का अधिकतम लाभ सीमान्त आगम के सीमान्त लागत के बराबर होने पर क्यों होता है ?

(स) कुल लाभ वक्र के उच्चतम बिन्दु पर फर्म का सन्तुलन क्यों होता है ?

2. बहुविकल्पीय प्रश्न

(अ) किसी फर्म सन्तुलन के लिए पहली आवश्यक शर्त क्या है?

1. AC = MR
2. MC = AC
3. MR = AR
4. MR = MC

(ब) किसी फर्म के सन्तुलन के लिए द्वितीय आवश्यक शर्त क्या है?

1. ACवक्र MR वक्र के नीचे से काटता है।
2. MC वक्र MR वक्र के नीचे से काटता है।
3. AR वक्र MR वक्र के नीचे से काटता है।
4. ACवक्र AR वक्र के नीचे से काटता है।

(स) सीमान्त लागत की धारणा का सम्बन्ध निम्न में से किसके साथ है ?

1. परिवर्ती लागत
2. कुल आगम
3. स्थिर लागत
4. आर्थिक लागत

17.5 सारांश

बाजार वस्तु, क्रेता, एवं विक्रेता के भौतिक रूप को इंगित करते है, जहाँ क्रय विक्रय करते है। यह बाजार की एक सामान्य विशेषता है पूर्ण नहीं। बाजार के स्वरूप का निर्धारण क्षेत्र के आधार पर, कार्य के आधार पर, समय के आधार पर, और प्रतियोगिता के आधार पर करते है। अर्थशास्त्र में प्रतियोगिता के आधार पर पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार और अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार का सामान्य विवेचन किया जाता है।

विभिन्न प्रतियोगी बाजार में फर्म का सन्तुलन कुल आगम एवं कुल लागत वक्र विधि एवं सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि के आधार पर किया जाता है। जिसमें सीमान्त विश्लेषण विधि अधिक यथार्थ एवं उपयोगी है।

17.6 शब्दावली

कुल लागत:- किसी वस्तु के उत्पादन में सम्मिलित होने वाली सभी मदों पर फर्म द्वारा किए गए व्यय के सम्मिलित योग को कुल लागत कहते है।
कुल आगम:- किसी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल इकाईयों के बिक्री से होने वाली कुल प्राप्ति को कुल आगम कहते है।
कुल लाभ:- कुल लागत से कुल आगम के अन्तर को कुल लाभ कहते है।
सीमान्त लागत:- वस्तु की अन्तिम अथवा सीमान्त इकाई का उत्पादन करने की लागत को सीमान्त लागत कहते है। जैसे सीमान्त लागत त्र उत्पादन की द इकाईयों की कुल लागत - उत्पादन की द्र1 इकाइयों की कुल लागत।
सीमान्त आगम:- फर्म के द्वारा उत्पादित अन्तिम या सीमान्त इकाई के बिक्री से प्राप्त आगम को सीमान्त आगम कहते है। दूसरे रूप में सीमान्त आगम कुल आगम में होने वाली वृद्धि है जो द इकाइयों के बजाय द्र1 इकाइयों को बेचने से प्राप्त होती है।

17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लघु उत्तरीय प्रश्न (अ)देखिए 17.4.2 (ब)देखिए 17.4.2 (स)देखिए 17.4.1
2. बहुविकल्पीय प्रश्न (अ)4ण् MR त्र MC (ब) 2. MC वक्र MR वक्र के नीचे से काटता है। (स)1. परिवर्ती लागत

17.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सेठी, टी. टी. (मक 2008) व्यष्टि अर्थशास्त्र लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा
2. झिंगन, एम.एल. (2007) ‘उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त वृन्दा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
3. आहूजा, एस.एल. (2006)उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त व्यष्टिपरक विश्लेषण’’,चन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली

17.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

1. Koutsoyinuis.A. (1979) Modern Microeconomics, (2nd Edition), Macmillian Press, London.
2. Ahuja,H.L. ((2010)Principles of MicroEconomics,S&Chan Publishing House.
3. Peterson, L. and Jain (2006)) Managerial Economics, 4th edition, Pearson Education.
4. Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
5. Mishra, S. K. and Puri, V. K., (2003), Modern Micro-EconomicsTheory, Himalaya Publishing House.

17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. "एक फर्म उस समय सन्तुलनावस्था में होती है जबकि वह अधिकतम मौद्रिक लाभ कमा रही हो। परन्तु किसी भी फर्म का मौद्रिक लाभ उसी समय होता है जब उसका सीमान्त आगम उसकी सीमान्त लागत के बराबर हो"। व्याख्या कीजिए ?

2. कुल आगम वक्र और कुल लागत वक्र की सहायता से फर्म के सन्तुलन की व्याख्या कीजिए ?

3. बाजार शब्द की परिभाषा दीजिए। आर्थिक बाजार के विभिन्न दृष्टिकोणों को समझाइए एवं बाजार विस्तार के निर्धारण तत्वों को स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 18 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उत्पादन एवं कीमत निर्धारण

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 प्रतियोगिता बाजार का अर्थ एवं विशेषताएं
18.4 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में फर्म का सन्तुलन
    18.4.1 फर्म का अल्पकालीन सन्तुलन
    18.4.2 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अल्पकाल में हानि की स्थिति में उत्पादन की अन्तिम सीमा
    18.4.3 फर्म का दीर्धकालीन सन्तुलन
18.5 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उद्योग का सन्तुलन
    18.5.1 उद्योग का अल्पकालीन सन्तुलन
    18.5.2 उद्योग का दीर्धकालीन सन्तुलन
18.6 पूर्ण प्रतियोगिता के लाभ
18.7 सारांश
18.8 शब्दावली
18.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
18.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
18.12 निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र के पूर्ण प्रतियोगिता बाजार से सम्बन्धित यह 18वीं इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि बाजार संरचना क्या है? फर्म और उद्योग में उत्पादन एवं कीमत निर्धारण कैसे होता है।

इस इकाई में पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उत्पादन एवं कीमत निर्धारण को बड़े ही स्पष्ट रूप से बताया गया है कि पूर्ण प्रतियोगिता क्या है। पूर्ण प्रतियोगिता में पूर्ति वक्र एवं मॉX वक्र का निर्धारण किस प्रकार से होता है,और साथ ही प्रस्तुत इकाई में पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में फर्म एवं उद्योग का सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की विशेषताएं एवं अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन में एक फर्म और उद्योग में सन्तुलन का विश्लेषण कर सकेगें।

18.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की विशेषताओ को जान सकेंगे।
- पूर्ण प्रतियोगिता एवं शुद्व प्रतियोगिता अन्तर बता सकेंगे।
- पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की विशेषताओं को जान सकेगें।
- अल्पकालीन एवं दीर्धकालीन में एक फर्म और उद्योग में सन्तुलन को जान सकेंगे।
- अल्पकालीन एवं दीर्धकालीन सन्तुलन में अन्तर कर सकेगें।

18.3 प्रतियोगिता बाजार का अर्थ एवं विशेषताएं

बाजार ढाँचे का निर्धारण वस्तु को उत्पादित करने वाले फर्मो की संख्या, वस्तु के समरूप या विभेदीकृत प्रारूप नई फर्मो के प्रवेश निकासी एवं प्रतिबन्ध और प्रचलित कीमत के विसाय में जानकारी के आधार पर करते है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में तब विद्यमान होते है जब निम्न विशेषताएँ पूरी होती है पदार्थ को उत्पादित करने तथा बेचने वाली क्रेताओं एवं विक्रेताओं की अधिक संख्या अत्याधिक होती है। इसमें एक विक्रेता की दशा उस उद्योग या बाजार में समुद्र में पानी की एक बूदँ के समान होती है। इसमें क्रेता एवं विक्रेता द्वारा इतना कम क्रय-विक्रय किया जाता है कोई भी बाजार में प्रचलित कीमत को प्रभावित करने की स्थिति तें नही होता है इस बाजार में वस्तु की बाजार कीमत सभी क्रेताओं और विक्रेताओं की संयुक्त क्रियाओं द्वारा निर्धारित होती है।

वह व्यक्तिगत रूप में अपनी उत्पादन मात्रा घटा-बढ़ा कर उस कीमत को प्रभावित नहीं कर सकते है। इस प्रकार क्रेता एवं विक्रेता दोनों प्रचलित बाजार कीमत पर अपनी मात्रा को समायोजित करते है।

समरूप वस्तु का उत्पादन:-प्रत्येक विक्रेता (फर्म) द्वारा उत्पादित पदार्थ समरूप होते है जिनमें कोई अन्तर नहीं होता और वे एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न होते है। वस्तुओं की प्रतिलोच अनन्त होती है। जैसे ही कोई विक्रेता सवतक की थोड़ी सी अधिक कीमत लेता है क्रेता उसे छोड़ जायेगें।

प्रचालित कीमत की पूर्ण जानकारी:-इस बाजार में क्रेता एवं विक्रेता को कीमत की पूर्ण जानकारी होती है, कोई इसें प्रभावित नहीं कर सकते अर्थात वस्तुओं तथ उत्पादन के साधनों की माँगों पूर्तियों तथा कीमतों के ऊपर किसी प्रकार के कृत्रित प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए।

फर्मो का स्वतन्त्र रूप से उद्योग में प्रवेश करना तथा उसको छोड़ना:-इसके अन्तर्गत उद्योग में फर्मो के प्रवेश पर काई प्रतिबन्ध नही रहता अल्पकाल में तो न कोई फर्म प्रवेश कर सकती है, न ही कोई पुरानी फर्म जा सकती है, परन्तु दीर्घकाल में यदि फर्म सामान्य लाभ से अधिक पा रही है तो नई फर्म आएगी तथा यदि कोई फर्म हानि पर है तो वह चली जाएगी। अन्तिम रूप से फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती है।

क्रेताओं एवं विक्रेताओं को पूर्ण जानकारी होती है:-इस बाजार में क्रेता एवं विक्रेता को बाजार की पूर्ण जानकारी होती है, अतः फर्मो को प्रचार एवं विज्ञापन पर व्यय करने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

उत्पादन साधनों की पूर्ण गति शीलता:-उत्पदान के साधन पूर्ण गति शील होते है, उन्हें जिस उपयोग या उद्योग में पर्याप्त पारिश्रामिक उपलब्ध नहीं होते वे ऐसे उपयोग अथवा उद्योग को छोड़ने में वे पूर्णतः स्वतन्त्र होते है। ऐसा बाजार में क्रेताओं एवं विक्रेताओं की संख्या अधिक होने के सन्दर्भ में भी आवश्यक है।

परिवहन लागतें नही होती:-यह बाजार इस मान्यता पर आधारित होता है, कि वे समरूप वस्तु का उत्पादन करती है, और दुसरे के बहुत निकट स्थित होती है, अतः परिवहन लागत का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता है। दीर्घकाल में सामान्य लाभ प्राप्त करती है। सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं रहता।

18.4 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का सन्तुलन

एक फर्म साम्य में तब होगी जब उसके उत्पादन में कोई परिर्वतन नहीं होता। फर्म अपने उत्पादन में तब तक कोई परिर्वतन नहीं करती जब तक उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है, जो उसे तब होगा जब सीमान्त आगम (MR) = सीमान्त लागत (MC) है। यह स्थिति प्रत्येक बाजार में होती है, इसलिए इस दशा को फर्म के साम्य की सामान्य दशा कहते है दूसरा पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के लिए

अपनी वस्तु की माँग रेखा अर्थात औसत आगम रेखा एक पड़ी रेखा होती है तथा औसत आगम (AR)= सीमान्त आगम (MR)के होता है, ऐसा पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मो के स्वतन्त्र प्रवेश एवं बर्हिXमन के

कारण होता है, जो दीर्घकाल में फर्मो को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त है कि गारन्टी देता है। जैसा कि रेखाचित्र से भी स्पष्ट है कि आरम्भ में एक वस्तु का माँग वक्र DD और पूर्ति वक्र SS जो E बिन्दु पर दूसरे को काटते है और OP कीमत निर्धारित होती है। जिस स्थिर कीमत पर औसत आगम (AR) वक्र, सीमान्त आगम (MR)वक्र के बराबर होगा। यदि माँग वक्र ऊपर बढ़कर D_1D_1 हो

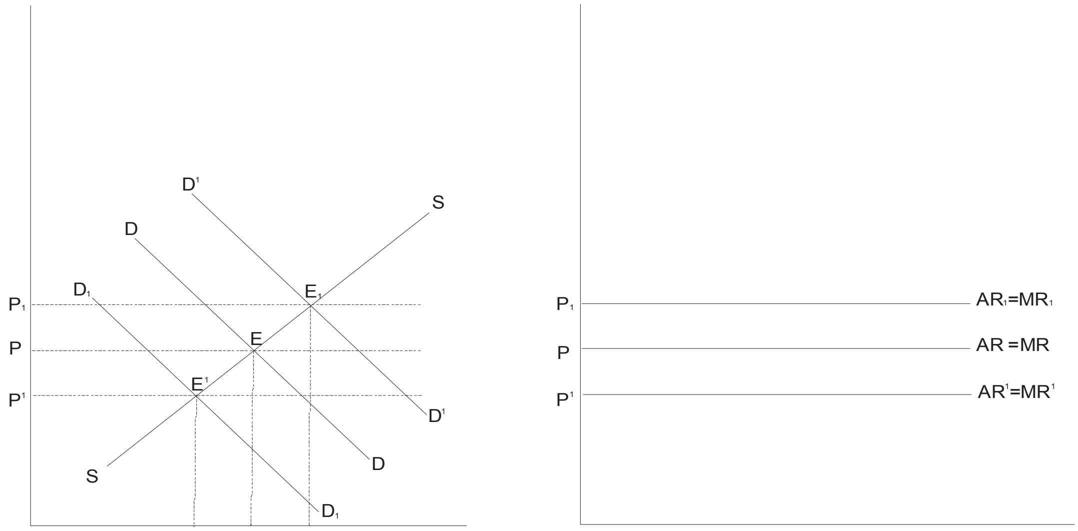

जाए तो की कीमत बढ़कर OP1 हो जाती है, जिसे स्थिर कीमत मानने पर नई औसत आगम तथा सीमान्त आगम (AR_1=MR_1) वक्र OP_1 पर स्थिर है। इसी तरह माँग घटने पर D_1D_1माँग वक्र पहुँच जाता है और कीमत OP1हो जाएगी। जिस पर सीमान्त आगम औसत आगम (MR_1= AR_1) के बराबर हो जाते है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता फर्म के लिए वस्तु की कीमत एक ही रहती है, और दी हुई कीमत पर फर्म वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। इस लिए फर्म के साम्य पर औसत आगम(AR)त्र सीमान्त आगम ;डत्द्धत्र सीमान्त लागत ;डब्द्ध होगा, और इसके अतिरिक्त लाभ के अधिकतम होने के लिए सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय वक्र को नीचे से काटे।

18.4.1 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अल्पकाल में फर्म का साम्य

अल्पकाल फर्म को इतना समय नहीं होता कि पूर्ति को घटा बड़ाकर माँग के अनुरूप किया जाए। अतः अल्पकाल में एक फर्म को असामान्य लाभ, सामान्य लाभ या हानि कुछ भी हो सकता है।

जैसाकि रेखाचित्र 2 में फर्म का सन्तुलन E बिन्दु पर दिखाया गया है जहाँ MR= MC है एवं MC वक्र MR वक्र को नीचे से काट रहा है। अल्पकालीन लागत वक्र की स्थिति में अन्तर के कारण फर्म

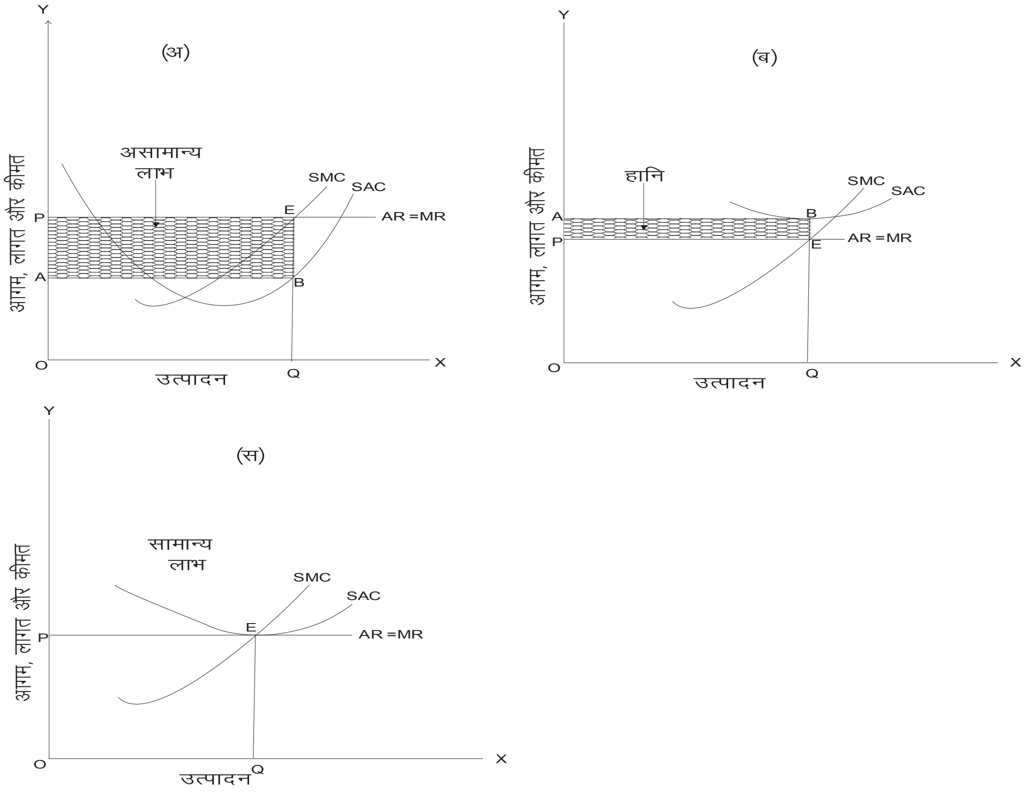

असामान्य लाभ, सामान्य लाभ अथवा हानि अर्जित करती है। जबकि तीनों ही स्थिति में प्रति इकाई कीमत OP ही है। रेखाचित्र (अ) में सन्तुलन बिन्दु E पर फर्म OQ मात्रा का उत्पादन कर रही है। सीमान्त आगम (MR) और औसत लागत (SAC)के बीच अन्तर BE है, जोकि प्रति इकाई लाभ को बताता है, कुल लाभ (असामान्य) ज्ञात करने के लिए BE को कुल उत्पादन OQ याAB से गुणा कर देते है, अर्थात कुल लाभ आयात AREP का क्षेत्रफल होगा, रेखाचित्र (ब) में सन्तुलन बिन्दु E पर OQ उत्पादन पर कीमत OP प्रति इकाई लागत BQ से कम है अतः फर्म को प्रति इकाई ठम् की हानि है, जबकि कुल हानि AREP के बराबर होगी। रेखाचित्र (स) में OQ उत्पादन स्तर पर औसत आगम और औसत लागत बराबर अतः बिन्दु E को शून्य लाभ बिन्दु या सामान्य लाभ बिन्दु कहते है।

18.4.2 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अल्पकाल में हानि की स्थिति में उत्पादन की अन्तिम सीमा

इस सन्दर्भ हम लोगों के स्थिर एवं परिर्वतनशील भाग को ध्यान में रखते है। अल्पकाल में फर्म हानि होने पर उत्पादन स्थगित या बन्द नहीं करते क्योंकि पूँजी, उपकरण सयंत्र आदि जैसे बधे एवं स्थिर साधनों को बदल नहीं सकते और इनके बराबर हानि उठाना पड़ेगा चाहे वे उत्पादन करें अथवा न करें। परन्तु अल्पकाल में यदि उत्पादन लागत में से केवल परिवर्तनशील प्राप्त हो रही है तो फर्म हानि की स्थिति में उत्पादन जारी रखेगी जबकि दीर्घकाल में उसकी कुल लागत (स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत) निकल आए तभी वह उत्पादन जारी रखती है। अतः यदि अल्पकाल में फर्म परिवर्तनशील लागतों को भी पूरा नहीं तो वह अनावश्यक हानि से बचने के

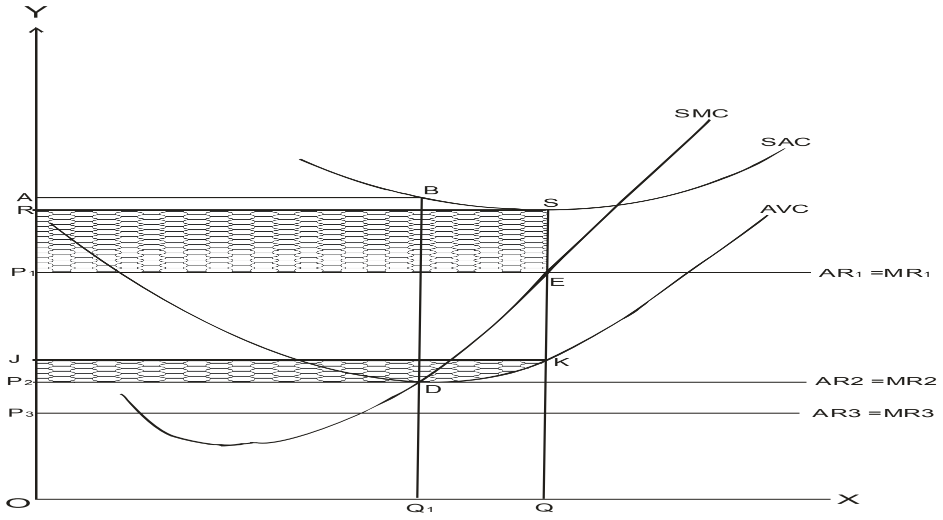

लिए उत्पादन बन्द कर देगी। जैसाकि रेखाचित्र द्वारा भीस्पष्ट है जिसमें अल्पकालीन औसत लागत (SAC) वक्र और सीमान्त लागत (SMC) वक्र तथा औसत परिवर्तनशील (AVC) वक्र द्वारा यहाँ दर्शाया गया है, जब बाजार में वस्तु की कीमत OP_1 है तो फर्म E बिन्दु पर सन्तुलन में है और OQ मात्रा उत्पादित कर रही है। यहां पर वस्तु की औसत लागत QS_1 औसत आय QE या OP_1 से अधिक होने के कार्रण फर्म P1ESR के समान हानि हो रही है। परन्तु औसत परिवर्तनशील लागत फज्ञ है जो कीमत OP_1 या QE से कम अतः फर्म उत्पादन जारी रखेंगें। क्योकि यह फर्म की कुल हानि P1ESR है जो उत्पादन बन्द करने पर स्थिर लागत हानि JKSP से कम है इसमें से श्रज्ञम्च्1 हानि वह उत्पादन करने के कारण नहीं सहन करना पड़ रहा है। अब यदि बाजार में वस्तु की कीमत है OP2 तो फर्म का सन्तुलन D बिन्दु पर होगा और वहाँ कीमत OP_2 केवल परिवर्तनशील लागतों को पूरा कर रही है, अर्थात कुल हानि $DBAP_2$है जो स्थिर लागत के बराबर है। अतः फर्म उत्पादन करने एवं न करने के प्रति उदासीन होगी। परन्तु यदि बाजार कीमत इससे गिरकर OP_3

हो जाये तो फर्म उत्पादन तुरन्त बन्द कर देना चाहिए क्योंकि इस कीमत पर वह परिवर्तनशील लागत भी नहीं वसूल सकती है। अतः D बिन्दु को उत्पादन बन्द होने का बिन्दु (Short-down-point) कहते है तथा OP_2 कीमत उत्पादन बन्द होने की कीमत (Cease-Production price) को बताती है। OQ_1 अल्पकाल में न्यूनतम उत्पादन मात्रा (Minimum output in short period) को बताता है।

18.4.3 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन

दीर्घकाल में इतना समय होता है कि सभी साधनों की पुर्ति को घटा-बड़ा पूर्णतया माँग के अनुरूप किया जा सकता है, अतः दीर्घकाल में फर्म को न लाभ होगा न हानि, बल्कि केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। यदि फर्म को दीर्घकाल में लाभ प्राप्त होता है अर्थात औसत (AR) आगम अधिक है औसत लागत (AC) से, तो लाभ से आकर्षित होकर अन्य फर्म उद्योग में प्रवेश करेगीं और वस्तु की पूर्ति बढ़ेगी परिणामस्वरूप कीमत (AR) घटकर औसत लागत (AC) के बराबर हो जायेगी। यदि फर्म को हानि है तो ACअधिक है कीमत (AR) से फलस्वरूप कई फर्मे उद्योग छोड़ देगी और पूर्ति कम होने से कीमतबढ़कर (AR) ठीक औसत लागत (AC) के बराबर हो जायेगी। इससे यह निकलता है कि पूर्ण प्रतियोगिता के दीर्घकालीन संतुलन प्राप्त होने के लिए निम्न दो शर्ते अवश्य पूरी होनी चाहिए।

(1) कीमत (P=AR) = सीमान्त लागत (MC)

(2) कीमत (P=AR) = औसत लागत (AC)

सीमान्त लागत और औसत लागत के परस्पर सम्बन्ध से हम जानते है कि सीमान्त लागत केवल

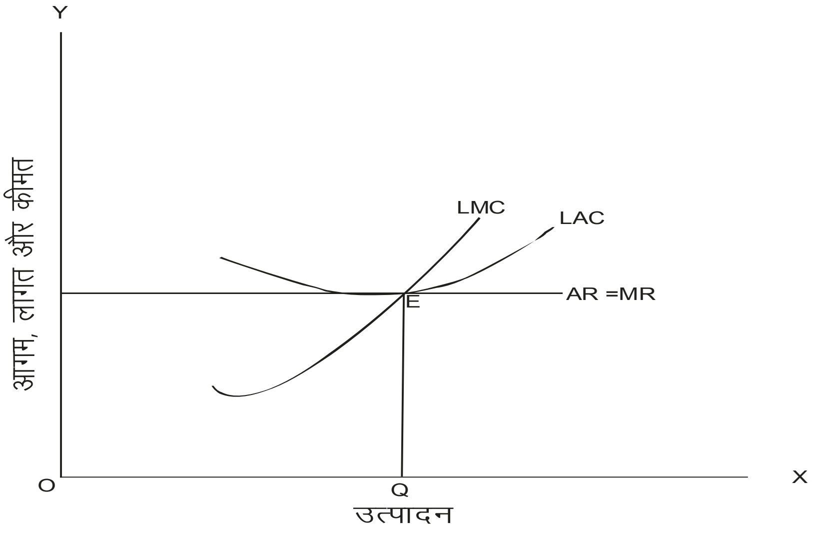

औसत लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु पर ही बराबर होती है। अतः इसे हम इस प्रकार व्यक्त करते है।

कीमत = सीमान्त लागत = निम्नतम औसत लागत रेखाचित्र में दीर्घकालीन साम्य को दिखाया गया है। LAC दीर्घकालीन औसत लागत रेखा है तथा स्डब् दीर्घकालीन सीमान्त लागत रेखा है। औसत आगम (AR) रेखा को LAC रेखा के न्यूनतम बिन्दु E पर स्पर्श करते है इसी E बिन्दु पर सीमान्त आगम (MR)रेखा को LMC रेखा भी स्पर्श करती है। अतःEबिन्दु पर फर्म के दीर्घकालीन साम्य की सभी शर्ते पूर्ण हो जाती है और फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु पर होता है। जिससे स्पष्ट है कि यह फर्म इष्टमत आकार की है, जहाँ संसाधनों का अधिकतम कुशल ढ़ग से प्रयोग हो रहा और उपभोग ता बस्तु की न्यूनतम कीमत दे रहा है।

18.5 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग का सन्तुलन

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग सन्तुलन की स्थिति में तब कहा जाता है जबकि उसके विस्तार या संकुचन की कोई प्रवृति नहीं होती। प्रचलित कीमत पर एक उद्योग सन्तुलन की स्थिति में तब होगा, जबकि उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति (S) उसकी कुल माँग (D) के बराबर होती है। सरा रूप में वस्तु की जिस मात्रा तथा कीमत पर उसका माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र एक दूसरे को काटेगें, उस उत्पादन मात्रा पर उद्योग का सन्तुलन होगा। उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम निष्कर्ष पर पहुँचते है कि किसी उद्योग के सन्तुलन के लिए निम्न शर्ते पूरी होनी चाहिए।

1. उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की पूर्ति की गई मात्रा तथा इसके लिए माँग की मात्रा समान हो।

2. माँग और पूर्ति द्वारा निर्धारित कीमत पर सभी फर्मे व्यक्तिगत सन्तुलन में हो और उनकी सीमान्त लागत, सीमान्य आगम के बराबर हो।

3. नई फर्मो के उद्योग में प्रवेश करने तथा वर्तमान फर्मो की उद्योग से बाहर जाने की प्रवृति न पाई जाती है और वर्तमान फर्मे केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर रही हों।

उद्योग के अल्पकालीन सन्तुलन के लिए पहली दोनों शर्ते तथा दीर्घकालीन सन्तुलन के लिए तीनों शर्तो का पूर होना आवश्यक है।

18.5.1 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग का अल्पकालीन सन्तुलन

अल्पकाल में फर्म न किसी उद्योग में प्रवेश कर सकती है और न ही कोई फर्मे उसे छोड़ सकती है। अतः उद्योग के संन्तुलन के लिए वर्तमान फर्मो द्वारा केवल सामान्य लाभ ही अर्जित

करने की शर्त की पूर्ति होना आवश्यक नहीं होती वहाँ लाभ तथा हानि का सह अस्तित्व हो सकता है। इसलिए कोई उद्योग अल्पकालीन सन्तुलन में तब होगा जब उसके द्वारा वस्तु की पूर्ति मात्रा उसकी माँग मात्रा के बराबर होती है, और उसमें उत्पादन कार्य कर रही सभी वर्तमान फर्में व्यक्तिगत रूप से सन्तुलन में होती है। अतः उद्योग के अल्पकालीन सन्तुलन में उसकी सभी फर्मे सन्तुलन में होती है, वे सभी असामान्य लाभ या सभी हानि उठा सकती है रेखाचित्र के भाग के भाग (i) में उद्योग की माँग रेखा DD तथा पूर्ति रेखा SS एक दूसरे को E बिन्दु पर काटती है। बिन्दु E उद्योग के अल्पकालीन सन्तुलन को बताता है, क्योंकि यहाँ पर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की पूर्ति और

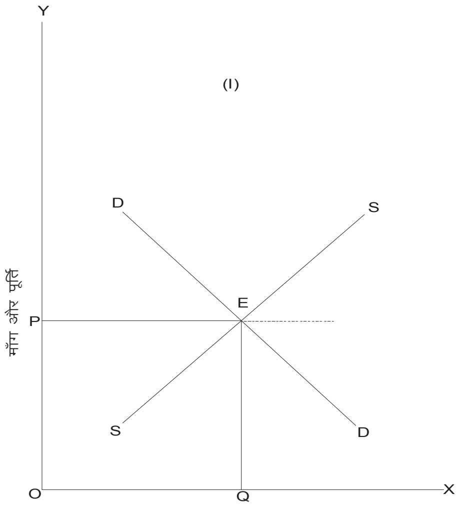

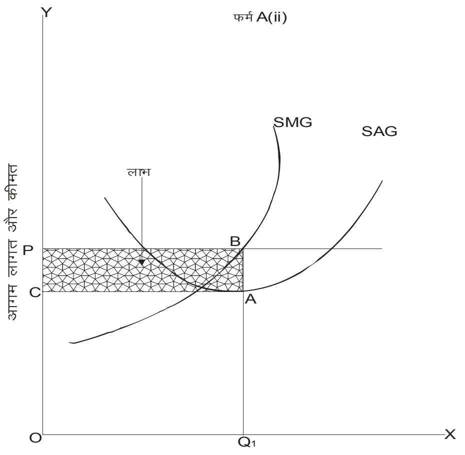

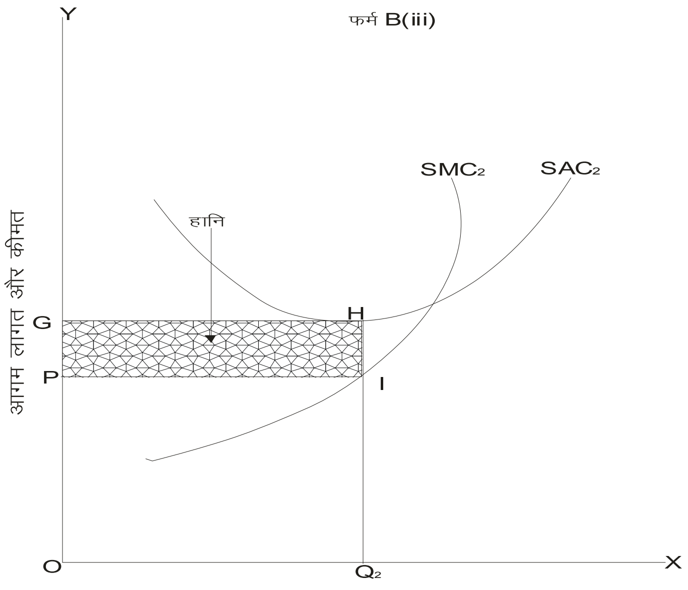

उसकी माँग बराबर है उद्योग द्वारा OQ उत्पादन एवं वस्तु की OP या QE कीमत इस सन्तुलन पर प्राप्त होता है। उद्योग के इस अल्पकालीन सन्तुलन में प्रत्येक फर्म OP कीमत को दिया हुआ मानकर

केवल उत्पादन मात्रा का समायोजन करती है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि प्रत्येक फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित अल्पकालीन सन्तुलन कीमत OP के आधार पर वस्तु की उत्पादन मात्रा का समायांजन करती है। रेखाचित्र के भाग (ii) में दी हुई कीमत पर फर्म A आर्थिक लाभ प्राप्त कर रही है। जो ठ बिन्दु पर सन्तुलन में है जहाँ अल्पकालीन सीमान्त लागत रेखा (SMC_1) और सीमान्त आगम MR रेखा एक दूसरे को काटते है। फर्म को ABPC के बराबर लाभ प्राप्त हो रहा है। रेखाचित्र के भाग (iii) में फर्म B को हानि हो रही है। फर्म E बिन्दु I पर अल्पकालीन सन्तुलन में होगी जहाँ पर दी हुई कीमत OP पर उसका अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र SMC_2 उसके सीमान्त आगम MR वक्र को काटते है और उसके कुल IHGP के बराबर हानि होती है। इसी प्रकार कुछ ऐसी भी फर्म हो सकती है जो केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर रही हों।

18.5.2 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग का दीर्घकालीन सन्तुलन

दीर्घकाल वह समयावधि है जिसमें इतना अधिक समय उपलब्ध होता है कि उद्योग अपने उत्पादन को माँग परिर्वतनों के प्रति पूर्णतया समायोजित कर लेने में समर्थ हो जाता है। जहाँ तक व्यक्तिगत फर्म का सम्बन्ध है, स्थिर एवं परिवर्ती हो जाता है। उद्योग क सन्तुलन में दीर्घकाल में सभी फर्में केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती है। इस सन्तुलन के लिए कीमत उद्योग की कुल पूर्ति और कुल माँग द्वारा निर्धारित होता है। जैसाकि रेखाचित्र (i) से स्पष्ट है कि उद्योग के माँग वक्र DD एवं पूर्ति वक्र एक दुसरे E को बिन्दु पर काट रहे है तथा बिन्दु पर कीमत OP तथा OQ उत्पादन मात्रा का निर्धारण होता है।

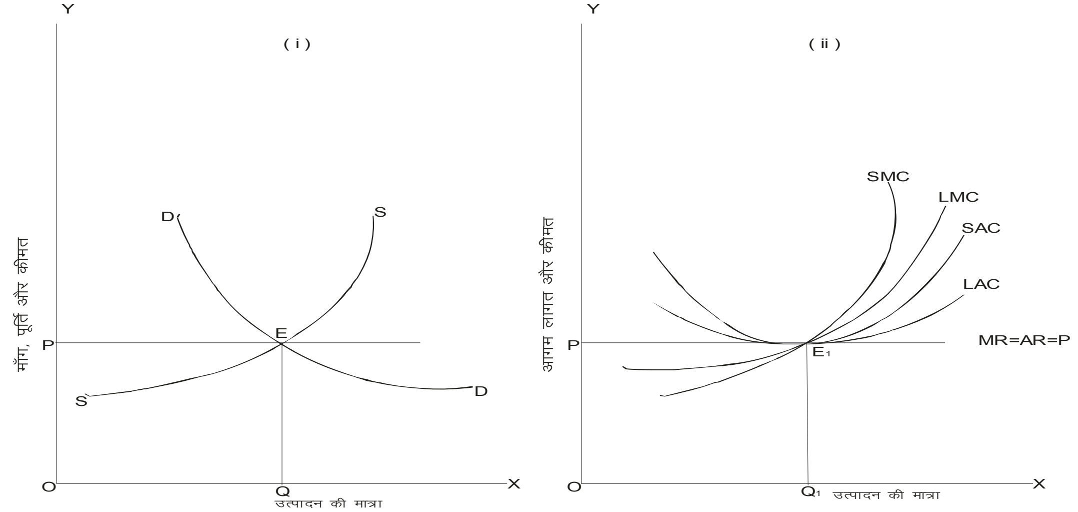

इस OP कीमत पर फर्म भी दीर्घकालीन सन्तुलन में है और सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है। रेखाचित्र के भाग (ii) में फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित OP कीमत पर OQ_1 मात्रा का उत्पादन कर रही है और सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है क्योकि सन्तुलन बिन्दु E_1 पर दीर्घकालीन औसत लागत LAC वक्र

बराबर है अल्पकालीन औसत लागत SAC वक्र के और दोनों ही कीमत ;च्त्रात्त्रडत्द्ध के बराबर है फर्म सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है और उद्योग में उपस्थित सभी फर्मे सन्तुलन में है एवं फर्मो के प्रवेश या निकासी की कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए उद्योग के दीर्घकालीन सन्तुलन को पूर्ण सन्तुलन कहते है।

संक्षिप्त रूप में पूर्ण प्रतियोगिता उद्योग के दीर्घकालीन सन्तुलन के लिए निम्न शर्त पूर्ण होना आवश्यक है

कीमत P= दीर्घकालीन सीमान्त लागत (LMC) = दीर्घकालीन औसत लागत (LAC)

जैसा कि रेखाचित्र से स्पष्ट है कि उद्योग का दीर्घकालीन सन्तुलन तभी होगा जब P=LMC=LAC है। रेखाचित्र के भाग (i) में उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु का माँग वक्र DD तथा वस्तु का अल्पकालीन पूर्ति वक्र S_1S_1 जो उद्योग में वर्तमान फर्मों के पूर्ति वक्रों को क्षैतिज रूप में जोड़कर प्राप्त किया जाता है। माँग वक्र DD तथा पूर्ति वक्र S_1S_1 एक दुसरे के E_1 बिन्दु पर काटते है और इस प्रकार OP_1 कीमत और OQ_1 उत्पादन मात्रा का निर्धारण होता है।

इस प्रकार एक पूर्ण प्रतियोगी फर्म इस OP_1 कीमत को स्थिर मानकर उत्पादन करती है, और उस बिन्दु पर सन्तुलन होगा जहाँ उसकी अल्पकालीन सीमान्त लागत (SMC) उसकी कीमत (P=MR) के होगा। जैसाकि रेखाचित्र से स्पष्ट है, और वह अल्पकाल में अधिकतम लाभ प्राप्त करती है, परन्तु दीर्घकाल में दो घटनांए होगी प्रथम फर्म लाभ में वृद्धि के लिए प्लान्ट के आकार को समायोजित करेगीं। दुसरा असामान्य लाभों से आकृष्ट होकर अन्य फर्मे उस उद्योग में प्रवेश करेंगी।

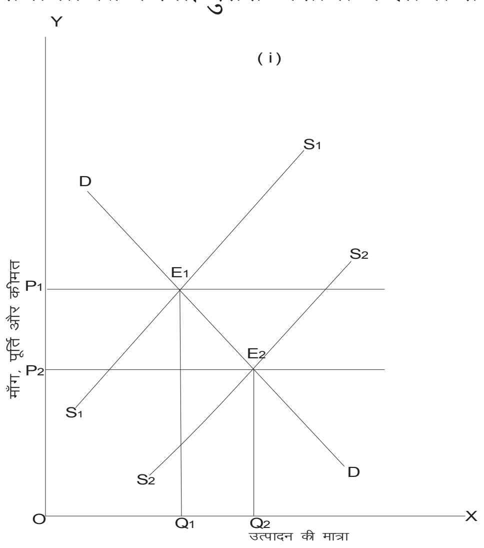

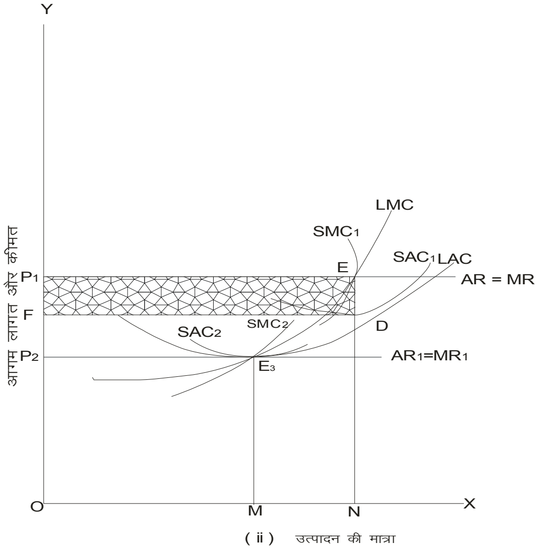

रेखाचित्र के भाग (ii) से स्पष्ट है कि दीर्घकाल में प्रारम्भ में फर्म $FDEP_1$ क्षेत्र के समान आर्थिक लाभ प्राप्त कर रही है। किन्तु दीर्घकाल में फर्म के सन्तुलन की यह अन्तिम अवस्था नहीं है। चूंकि सभी फर्मो के लागत वक्र समान है, इसलिए OP_1 कीमत पर सभी फर्मे असामान्य लाभ अर्जित कर

रही है। इस असामान्य लाभ से आकर्षित होकर नई फर्मे उद्योग में प्रवेश करती है फलस्वरूप उद्योग के उत्पादन में वृद्धि होगी और उसका पूर्ति वक्र दायें सरकता जाता है जबतक की कीमत गिर कर दीर्घकालीन औसत लागत ;स्।ब्द्ध के बराबर नहीं हो जाती है, और इस समय उद्योग E_2 बिन्दु पर सन्तुलन में होगा जहाँ उसकी माँग और पूर्ति बराबर है और OQ_2 उत्पादन हो रहा है। इस नई कीमत OQ_2 को स्थिर मान कर फर्म उत्पादन करती है, और उनका सन्तुलन E_3 बिन्दु पर होता है। इस बिन्दु पर कीमत OP_2 = LMC =निम्नतम LAC है, और केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है। इस अव्सथा में उद्योग में नई फर्मो के

प्रवेश की कोई प्रवृति नहीं है, नहीं कोई फर्म उद्योग छोड़कर जायेगीं क्योकि उसे सामान्य लाभ मिल रहा है। इस प्रकार समस्त उद्योग सन्तुलन में है।

18.6 पूर्ण प्रतियोगिता के लाभ

पूर्ण प्रतियोगिता के लाभ निम्नवत है:-इसके अर्न्तगत कीमत उसकी औसत उत्पादन लागत के बराबर होती है। जोकि उसके निम्नतम बिन्दु पर सन्तुलन द्वारा प्राप्त होती है।

इस प्रतियोगिता के अर्न्तगत विज्ञापन एवं बिक्री पर फर्म द्वारा कोई व्यय नहीं होता क्योकि बाजार में कार्यशील सभी फर्में समरूप वस्तु का उत्पादन करती है, कोई भी फर्म कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती है, और इस दी हुई कीमत पर जितना उत्पादन वह चाहें बेच सकती है।

इस प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म अनुकूलतम संयन्त्र का प्रयोग करते हुए अनुकूलतम उत्पादन करती है।

इस प्रतियोगिता में कीमत सीमान्त लागत के बराबर होती है, जो आर्थिक साधनों आबंटन कुशलता को दर्शाती है।

अभ्यास प्रश्न

सत्य/असत्य बताइए

1. पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेता-विक्रेता में प्रतिस्पर्धात्मक सम्बन्ध होते हैं।
2. पूर्ण प्रतियोगिता में यातायात लागतें होती हैं।
3. पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्धकाY में अतिरेक लाभ होता है।
4. पूर्ण प्रतियोगिता में साम्य MC=MR,AR=AC होता है।

रिक्त स्थान भरिए

1. उत्पादन की माँग पूर्णतः लोचदार.........................में होती हैं।

2. पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु का मूल्य.......................के द्वारा निश्चित किया जाता हैं।

3. पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म......................प्राप्त करती है।

4. पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार में वस्तु की माँग की लोच.................... होती हैं।

18.7 सारांश

सामान्य रूप में प्रतियोगिता के आधार पर बाजार के चार स्वरूप हैः पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार,एकाधिकारिक और अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार एक आदर्श बाजार की स्थिति को बताता है।इस बाजार में अनेकों फर्म दी हुई कीमत पर उत्पादन करती हैं, इस बाजार में फर्मों के प्रवेश एवं निकासी पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। प्रतियोगी बाजार में फर्म का सन्तुलन कुल आगम एवं कुल लागत वक्र विधि एवं सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि के आधार पर किया जाता है। जिसमें सीमान्त विश्लेषण विधि अधिक यथार्थ एवं उपयोगी है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में दीर्धकाल में प्रत्येक फर्म सामान्य लाभ ही प्राप्त करती है। वास्तविक संसार में कही भी पूर्ण प्रतियोगिता बाजार नहीं पाया जाता हैं,पर इस आदर्श स्थिति में कीमत एवं उत्पादन मात्रा के निर्धारण के आधार पर हम अन्य प्रतियोगी बाजार में फर्म एवं उद्योग के सन्तुलन का विश्लेषण कर पायेंगे।

18.8 शब्दावली

कुल लागतः- किसी वस्तु के उत्पादन में सम्मिलित होने वाली सभी मदों पर फर्म द्वारा किए गए व्यय के सम्मिलित योग को कुल लागत कहते है।

कुल आगमः- किसी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल इकाईयों के बिक्री से होने वाली कुल प्राप्ति को कुल आगम कहते है।

कुल लाभः- कुल लागत से कुल आगम के अन्तर को कुल लाभ कहते है।

सीमान्त लागतः- वस्तु की अन्तिम अथवा सीमान्त इकाई का उत्पादन करने की लागत को सीमान्त लागत कहते है। जैसे सीमान्त लागत ृ = उत्पादन की n इकाईयों की कुल लागत - उत्पादन की n+1 इकाइयों की कुल लागत।

सीमान्त आगमः- फर्म के द्वारा उत्पादित अन्तिम या सीमान्त इकाई के बिक्री से प्राप्त आगम को सीमान्त आगम कहते है। दूसरे रूप में सीमान्त आगम कुल आगम में होने वाली वृद्धि है जो n इकाइयों के बजाय n+1 इकाइयों को बेचने से प्राप्त होती है।

18.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

सत्य/असत्य बताइए-1. सत्य, 2. असत्य, 3. असत्य, 4. सत्य।

रिक्त स्थान भरिए-1. पूर्ण प्रतियोगिता, 2.उद्योग , 3.सामान्य लाभ, 4.पूर्णतया लोचदार।

18.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सेठी, टी. टी. (मक 2008) व्यष्टि अर्थशास्त्र लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आग रा

झिंगन, एम.एल. (2007) 'उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त वृन्दा पब्लिकेशन, नई दिल्ली

आहूजा, एस.एल. (2006)उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त व्यष्टिपरक विश्लेषण'',चन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली

18.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- Koutsoyinuis.A. (1979) Modern Microeconomics, (2nd Edition),Macmillian Press, London.
- Ahuja,H.L. ((2010) Principles of Micro Economics , S&Chand Publishing House .
- Peterson, L. and Jain ((2006)) Managerial Economics, 4th edition, Pearson Education.
- Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
- Mishra, S. K. and Puri, V. K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.

18.12निबन्धात्मक प्रश्न

1. "एक फर्म उस समय सन्तुलनावस्था में होती है जबकि वह अधिकतम मौद्रिक लाभ कमा रही हो। परन्तु किसी भी फर्म का मौद्रिक लाभ उसी समय होता है जब उसका सीमान्त आगम उसकी सीमान्त लागत के बराबर हो"। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में व्याख्या कीजिए ?
2. उद्योग में सन्तुलन से क्या अभिप्राय है?पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उद्योग के अल्पकालीन एवं दीर्धकालीन सन्तुलनों की व्याख्या कीजिए।

इकाई-19 एकाधिकार

इकाई की रूपरेखा

19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 एकाधिकारी का अर्थ एवं विशेषताएं
16.3.1 एकाधिकारी के अन्तर्गत माँग व पूर्ति वक्र
19.4 एकाधिकारी के अन्तर्गत संस्थिति व मूल्य निर्धारण
19.4.1 कुल आगम व कुल लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन
19.4.2 सीमान्त आगम व सीमान्त लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन
19.4.3 अल्पकाल में एकाधिकारी का सन्तुलन विश्लेषण
19.4.4 दीर्घकाल में एकाधिकारी का सन्तुलन निर्धारण
19.4.5 क्या एकाधिकारी कीमत, प्रतियोगी कीमत से अधिक होती है?
19.5 मूल्य विभेदीकरण या विभेदात्मक एकाधिकार
19.5.1 मूल्य विभेदीकरण की कोटियाँ
19.5.2 मूल्य विभेदीकरण की अनिवार्य दशायें
19.5.3 मूल्य विभेदीकरण के अन्तर्गत एकाधिकारी का संतुलन
19.5.4 मूल्य विभेदीकरण का औचित्य
19.6 सारांश
19.7 शब्दावली
19.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
19.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
19.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
19.11 निबन्धात्मक प्रश्न

19.1-प्रस्तावना

पिछली इकाई के अन्तर्गत ‘पूर्ण प्रतियोगता’ के बारे में विशद चर्चा की गयी। इसके द्वारा आपने यह जाना कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार के क्या लक्षण होते है, इसकी मान्यतायें क्या है? साथ ही इसमें पूर्ण प्रतियोगी फर्म के अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन की भी चर्चा की गयी हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता के ठीक विपरीत स्थिति एकाधिकारी बाजार की होती है, जिसमें प्रतियोगिता का पूर्णतः अभाव होता है। यह बाजार का वह प्रकार है जिसमें बाजार की पूर्ति का नियंत्रण एक ही व्यक्ति के हाथ में होता है। अर्थात् इस बाजार में एक ही फर्म होती है जो उत्पादन करती है तथा उद्योग भी वह फर्म ही होती है, जबकि पूर्ण प्रतियोगी बाजार में उद्योग व अपरिमित फर्मो का अलग -अलग अस्तित्व होता है।

इस इकाई के अन्तर्गत बाजार की दूसरी चरम स्थिति ‘एकाधिकारी’ के अर्थ, उसकी विशेषताओं के साथ-साथ उसके अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन की चर्चा की गयी है। इस इकाई में एकाधिकारी के मूल्य विभेदीकरण का भी उल्लेख किया गया है।

19.2- उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- बाजार के एकाधिकारी स्वरूप से भली-भॉति परिचित हो सकेंगे।
- एकाधिकारी की विशेषताओं को ज्ञात कर सकेंगे।
- एकाधिकारी के अन्तर्गत सन्तुलन निर्धारण को समझ सकेंगे।
- एकाधिकारी के अन्तर्गत मूल्य विभेदीकरण से अवXत हो सकेंगे।
- एकाधिकारी एवं पूर्ण प्रतियोगी बाजार के मध्य विभेद कर सकने में समर्थ होंगें।

19.3- एकाधिकारी का अर्थ एवं विशेषतायें

एकाधिकारी का अंग्रेजी शब्द 'Monopoly' दो शब्दों 'Mono' और Poly से मिल कर बना है। Mono का अर्थ है - अकेला, तथा Poly का अर्थ है - विक्रेता। अतः Monopoly का शाब्दिक अर्थ है- अकेला विक्रेता अथवा एकाधिकार। जब किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन तथा विक्रय पर किसी एक व्यक्ति अथवा फर्म का पूर्ण अधिकार रहता है तो इसे एकाधिकारी की स्थिाति कहते हैं। अर्थात् एकाधिकारी वह है जिसका वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण हो। स्पष्ट है कि एकाधिकारी पूर्ण

प्रतियोगिता के ठीक विपरीत स्थिति है। एकाधिकारी के अस्तित्व के लिए निम्न तीन दशाओं का पूरा होना आवश्यक हैः-

1. वस्तु का एक विक्रेता हो या उसका उत्पादन केवल एक फर्म द्वारा हो। अर्थात् फर्म तथा उद्योग एक ही होते हैं।

2. वस्तु के कोई निकट स्थानापत्र वस्तु न हो, क्योंकि यदि कोई नजदीकी स्थानापन्न हुआ तो प्रतियोगिता की स्थिति आ जाएगी और वस्तु की पूर्ति पर उत्पादक का पूर्ण नियंत्रण नहीं होगा।

3. उद्योग में नए उत्पादकों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रूकावटे हों। अर्थात् एकाधिकारी के क्षेत्र में फर्मे स्वतंत्र रूप से आ जा नहीं सकती।

एकाधिकारी की परिभाषा विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्न प्रकार दी गयी हैः

प्रो0 बेन्हम के अनुसार- एकाधिकारी वस्तुतः एकमात्र विक्रेता होता है और एकाधिकारी शक्ति पूर्ति के पूर्णतः नियंत्रण पर आधारित होती है। "A monopolist is Literately a seller........and monopoly power is based entirely on central over supply." - Benham.

प्रो0 बोल्डिंग एकाधिकारी को अत्यन्त ही स्पष्ट शब्दों में पारिभाषित करने का प्रयास करते हुए कहते हैं कि- शुद्ध एकाधिकारी फर्म वह फर्म है जो कि कोई ऐसी वस्तु उत्पादित कर रही है जिसका किसी अन्य फर्म की उत्पादित वस्तुओं में कोई प्रभावपूर्ण स्थानापत्र नहीं हो। 'प्रभावपूर्ण' से यहाँ आशय यह है कि यद्यपि एकाधिकारी असाधारण लाभ कमा रहा है, तथापि अन्य फर्में ऐसी स्थानापत्र वस्तुएं उत्पन करके जो कि खरीददारों को एकाधिकारी की वस्तु से दूर कर सके, उक्त लाभों पर अतिक्रमण करने की स्थिति में नही है।''

प्रो0-चैम्बरलिन के अनुसार-''एकाधिकारी उसे समझना चाहिए जों किसी वस्तु की पूर्ति पर नियंत्रण रखता हो।''

इसी प्रकार प्रो0 लर्नर के अनुसार-'' एकाधिकारी से आशय उस विक्रेता से है जिसकी वस्तु का माँग वक्र गिरता हुआ होता है।''

"A Monopolist is any seller who is confronted with a falling demand curve for his product."- Lerner

विभिन्न अर्थशास्त्रीयों की उपर्युक्त व्याख्या से एकाधिकारी की निम्नांकित महत्वपूर्ण विशेषताए ज्ञात होती है-

एकाधिकारी की स्थिति में केवल एक ही उत्पादक या विक्रेता होता है।

एक विक्रेता होने के फलस्वरूप पूर्ति के ऊपर विक्रेता का पूर्ण नियंत्रण होता है। वह पूर्ति को घटा-बढ़ाकर वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है। अर्थात एकाधिकारी की अपनी मूल्य नीति होती है।

एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु की कोई दूसरी वस्तु नजदीक स्थानापन्न नहीं होती है। दूसरो शब्दों में एकाधिकारी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु एवं बाजार में बेंची जाने वाली अन्य वस्तुओं के बीच माँग की तिर्यक लोच शून्य होती है।

एकाधिकार में एक ही फर्म होती है जो उत्पादन करती है। अर्थात फर्म ही उद्योग है। स्पष्ट है कि एकाधिकार में फर्म तथा उद्योग में अन्तर नही रहता।

एकाधिकारी उद्योग में अन्य फर्मों की प्रविष्टि नहीं हो सकती है।

एकाधिकारी की स्थिति में मूल्य विभेद सम्भव हो सकता है। अर्थात एकाधिकारी ऐसी स्थिति में होता है जो कि अपनी उत्पादित वस्तु की विभिन्न इकाईयों को अलग -अलग उपभोक्ताओं को अलग -अलग मूल्यों पर बेच सकता है।

19.3.1 एकाधिकार के अन्तर्गत माँग व पूर्ति वक्रः-

जैसा कि आपने पिछली इकाई में यह जाना कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्मो की संख्या अपरिमित होती है, और फर्म मूल्य निर्धारक नहीं होती बल्कि उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य ही फर्मे स्वीकार करती है। कहने का अभिप्राय यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य पर फर्मे चाहे जितनी मात्रा में वस्तुओं को बेच सकती है, यही कारण है कि पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की माँग रेखा (AR) वक्र एक निश्चित मूल्य स्तर पर आधार के समानान्तर होती है। परन्तु एकाधिकारी के अन्तर्गत उद्योग में एक ही फर्म होती है अर्थात एकाधिकार में फर्म ही उद्योग होती है। एकाधिकारी फर्म की माँग वक्र की साधारण माँग वक्र तरह ही ऋणात्मक ढाल की होगी अर्थात ऊपर से नीचे दाहिने ओर गिरती हुई होगी क्योंकि कोई भी एकाधिकारी फर्म बिना मूल्य में कमी किये अपने उत्पाद की अधिक इकाईयॅा नहीं बेच सकता। आप इस तथ्य से भी अवXत हो चुके है कि उपभोक्ता का माँग वक्र ही उत्पादक ही दृष्टि से औसत आय (AR) वक्र होता है क्योंकि उपभोक्ता द्वारा दिया जाने वाला मूल्य ही विक्रेता की आय होती है। एकाधिकारी के माँग वक्र (AR) के अनुरूप ही सीमान्त आय वक्र भी नीचे गिरती हुई होती है। एकाधिकारी के अन्तर्गत नीचे गिरती

हुई MR वक्र AR से मूल्य अक्ष पर खींचे गये लम्ब को दो बराबर भागो में विभाजित करती है। एकाधिकार के अन्तर्गत AR व MR वक्रों का स्वरूप निम्नवत होता है।

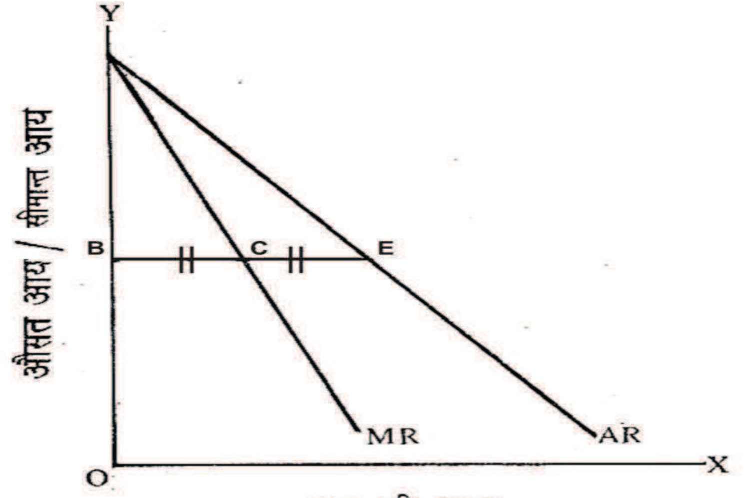

चित्र : 16.1

अतः स्पष्ट है कि जब औसत आय एक क्षैतिज वक्र हो (X अक्ष के समान्तर रेखा) जैसा कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में होता हैं तो उस स्थिति में AR=MR होगा। इसके विपरीत जब AR वक्र दाहिनी ओर गिरती हुई एक सीधी रेखा हो तो (एकाधिकार की स्थिति) उससे लम्ब-अक्ष पर खींचे गये लम्ब को MR वक्र दो बराबर भागों में विभाजित करता है। चित्र 19.1 से स्पष्ट है कि BC = CE होगी। एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण में AR, MR व माँग की लोच के मध्य गणितीय सम्बन्ध का विशेष महत्व है। इन तीनों के मध्य निम्न गणितीय सम्बन्ध होता हैः

$$MR = AR\left(1-\frac{1}{e}\right)$$, जहाँ $e =$ माँग की लोच है।

अतः $$AR = P = MR\left(\frac{e}{e-1}\right),$$

चूँकि $\left(\frac{e}{e-1}\right)$ का मान निश्चित रूप से 1 से अधिक होगा इसीलिए MR का मान AR या मूल्य (P) से कम होगा।

लागत वक्र के सन्दर्भ में प्रतियोगी फर्म और एकाधिकारी फर्म के मध्य कोई विभेद नहीं होता है। पूर्ण प्रतियोगी फर्म की तरह ही एकाधिकारी की ।टब्ए MC तथा AC अंग्रेजी के U आकार की तथा औसत स्थिर लागत (AFC) समकोणीय अतिपरवलय होगी। बाजार के इन दोनों स्वरूपों में सबसे

ज्यादा स्मरणीय तथ्य पूर्ति वक्र के सन्दर्भ में होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में चूँकि सीमान्त लागत, मूल्य के बराबर होता हैं। अतः MC वक्र के प्रत्येक बिन्दु विभिन्न बिन्दुओं पर फर्म द्वारा पूर्ति की जाने वाली वस्तु की मात्रा को प्रदर्शित करते हैं, इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में MC वक्र ही फर्म की पूर्ति वक्र होती है। इसके विपरीत एकाधिकार MR वक्र AR वक्र से नीचे होता है अतः MR ृ= MC का समता बिन्दु निश्चित रूप से AR वक्र के नीचे होगा। ऐसी स्थिति में MC वक्र के बिन्दु न तो मूल्य को प्रदर्शित करेंगे और न ही एकाधिकारी द्वारा विभिन्न मूल्यों पर बेंची जाने वाली मात्राओं को ही प्रदर्शित करेंगे। अतः स्पष्ट है कि एकाधिकार में पूर्ति वक्र का कोई निश्चित स्वरूप नहीं निर्धारित किया जा सकता।

19.4 एकाधिकार के अन्तर्गत संस्थिति व मूल्य निर्धारण-

पिछली इकाई में आपने पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत संस्थिति व मूल्य निर्धारण के सन्दर्भ में दो रीतयों - TR.TC विधि एवं MR.MC विधि को विस्तर से जाना। पूर्ण प्रतियोगी फर्म की ही तरह एकाधिकारी फर्म की संस्थिति को ज्ञात करने के दो तरीके होतें हैं-

1.कुल आगम- कुल लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन (TR.TC विधि)

2.सीमान्त आय व सीमान्त लागत वक्रो द्वारा सन्तुलन (MR.MC विधि)

इसी प्रकार पूर्ण प्रतियोगी फर्म की ही तरह एकाधिकारी फर्म भी अल्पकाल तथा दीर्घकाल, दोनों में क्रियाशील हो सकती है। अतः अब हम एकाधिकार के अन्तर्गत उत्पादन तथा मूल्य निर्धारण का विश्लेषण अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों के अन्तर्गत करेंगे।

19.4.3 अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म का सन्तुलन विश्लेषण-

अल्पकाल की प्रमुख विशेषता यह है कि एकाधिकारी फर्म एक दिये हुए प्लान्ट पर ही कार्य करेगी क्योकि वह इस अवधि में प्लांट के आकार में परिवर्तन नहीं ला सकती है। माँग में वृद्धि या कमी के अनुसार पूर्ति में समायोजन वह परिवर्तनीय साधनों मे परिवर्तन के द्वारा ही कर सकती है। वस्तुतः एकाधिकारी के विषय में एक सामान्य धारणा यह होती है कि उसे हानि नहीं हो सकती है क्योंकि वह एकाधिकारी है परन्तु सच्चाई यह है कि एकाधिकारी लाभ की मात्रा उसकी माँग तथा लागत की दशाओं पर निर्भर करती है। अतः अल्पकाल में एकाधिकारी को असामान्य लाभ $(AR > AC)$ सामान्य लाभ $(AR = AC)$ तथा हानि $(AR < AC)$तीनों ही स्थितियों का सामना करना पड़ सकता है। इन तीनों स्थितियों को हम चित्रों की सहायता से स्पष्ट कर रहे है।

(i) असामान्य लाभ **(AR > AC):-.**

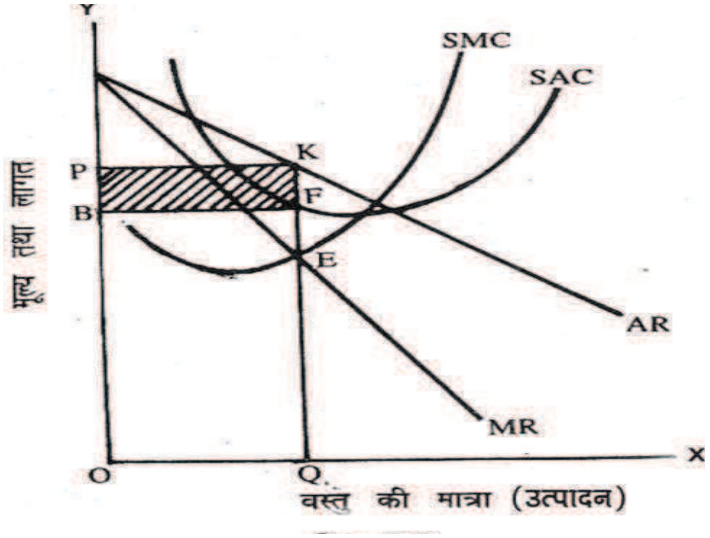

चित्रानुसार SAC अल्पकालीन औसत लागत वक्र है जो एकधिकारी फर्म के उस प्लाण्ट से सम्बन्धित है जिस पर वह उत्पादन कर रही है। AR तथा MR वक्र क्रमशः औसत आय व सीमान्त आय वक्र है। जबकि SAC तथा SMC अल्पकालीन औसत लागत वक्र एवं अल्पकालीन सीमान्त लागत को प्रदर्शित करते है। एकाधिकारी मूल्य तथा उत्पादन वहाँ निर्धारित करेगा जहॉ MR=MC है। चित्र में SMC वक्र MR को E बिन्दु पर काटता है। E से उत्पादन अक्ष पर खीचा गया लम्ब, अधिकतम लाभ के उत्पाद मात्रा OQ का निर्धारण करता है। OQ से सम्बन्धित AR का बिन्दु (K) मूल्य को बताएगा क्योंकि मूल्य (P) = औसत आय (AR) इस प्रकार चित्र से स्पष्ट है-

संस्थिति उत्पाद=OQ

मूल्य(Price)=OP(या KQ)

औसत लागत (AC)=QF

अतः प्रति इकाई लाभ =QK-KF=FK

अतः कुल लाभ=FK×OQ=क्षे0PKFB

(ii) सामान्य लाभ–(AR = AC):-

एकाधिकारी फर्म अल्पकाल में सामान्य लाभ भी प्राप्त कर सकती है। इसे चित्र 19.2 में स्पष्ट किया गया है।

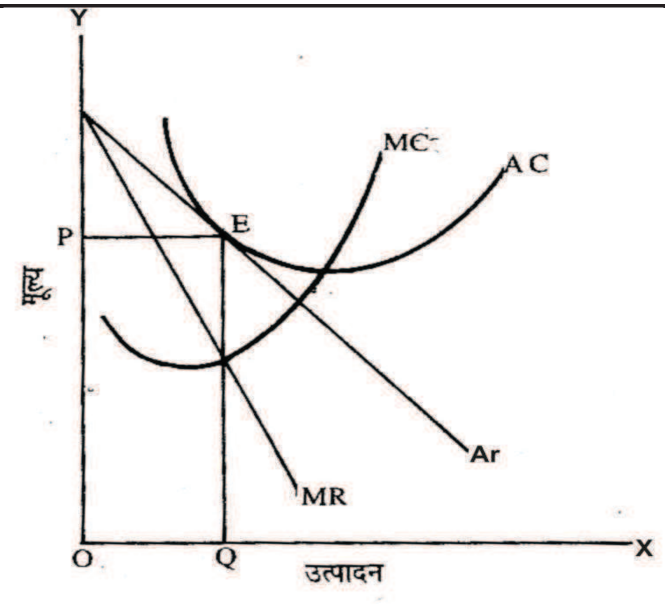

चित्र से स्पष्ट है कि -

संस्थिति उत्पादन = OQ

संस्थिति मूल्य (AR)=OP=QE

औसत लागत (AC) = QE

स्पष्ट है कि AR=AC

चूँकि P=AC अतः फर्म केवल सामान्य लाभ ही अर्जित कर रही है।

(iii) हानि की स्थिति–(AR < AC):-.

अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म हानि भी प्राप्त कर सकती है। अल्पकाल में हानि सहने वाले एकाधिकारी फर्म को रेखांचित्र 19.3 मे स्पष्ट किया गया है।

स्पष्ट है कि अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र (SMC)सीमान्त आय (MR)वक्र को E बिन्दु पर काटती है। अतः चित्रानुसार -

संस्थिति उत्पादन = OQ

प्रति इकाई मूल्य (P)=OP=QE

औसत लागत (AC)=OA=QC

अतः प्रति इकाई हानि = AC - P=OA-OP=AP=CE

अतः कुल हानि =AP×PE=CE×OQ =क्षे0 ACEP (रेखांकित भाग का क्षेत्रफल)

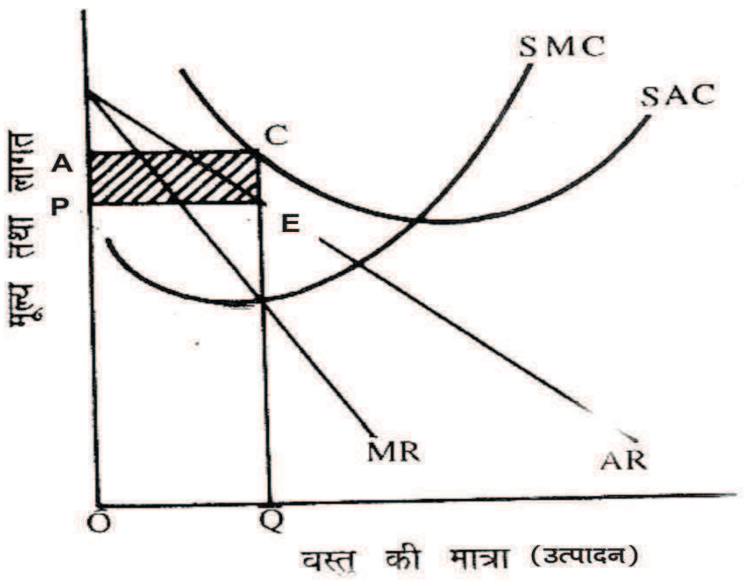

चित्र : 16.5

सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कोई भी एकाधिकारी फर्म अल्पकाल में हानि की स्थिति में कब तक कार्य करती रहेगी। जैसा कि आपने पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत जाना होगा कि जब तक फर्म के उत्पाद का मूल्य (P),उसके औसत परिवर्तनशील लागत(AVC) से ऊपर रहेगा, फर्म हानि पर उत्पादन करती रहेगी और जब मूल्य इससे कम हो जाता है, (अर्थात $P<AVC$) तो फर्म अपने प्लान्ट को बन्द कर देती है। यही स्थिति एकाधिकारी फर्म के सन्दर्भ में भी लागू होती है।

19.4.4 दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म का सन्तुलन विश्लेषण

एकाधिकारी फर्म को अल्पकाल में चाहे सामान्य लाभ हो या हानि किन्तु दीर्घकाल में उसे सदैव लाभ होता है। क्योंकि यह अकेला उत्पादक होता है और दीर्घकाल में इतना पर्याप्त समय मिल जाता है कि फर्म उत्पादन के आवश्यकतानुसार अपने प्लाण्ट के आकार में वृद्धि ला सकती है या दिये हुये प्लाण्ट को ही किसी स्तर तक प्रयोग में ला सकती है जिससे उसका लाभ अधिकतम् हो सके। वस्तुतः एकाधिकारी फर्म दीर्घकाल में सामान्यतया असामान्य लाभ अर्जित करती रहेगी जबकि पूर्ण प्रतियोगी फर्म दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त करती है। दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म प्लाण्ट के आकार तथा वर्तमान प्लाण्ट को किस स्तर तक प्रयुक्त करेगी, यह बाजार माँग के ऊपर निर्भर करेगा। एकाधिकारी फर्म दीर्घकाल में बाजार माँगके अनुरूप दीर्घकालीन

औसत लागत (LAC) के न्यूनतम बिन्दु, LAC के गिरते हुए भाग या LACके ऊपर उठते हुए भाग किसी भी बिन्दु पर उत्पादन कर सकती है। दीर्घकाल में असामान्य लाभ को प्रदर्शित करने वाले फर्म की संस्थिति को निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट किया गया है।

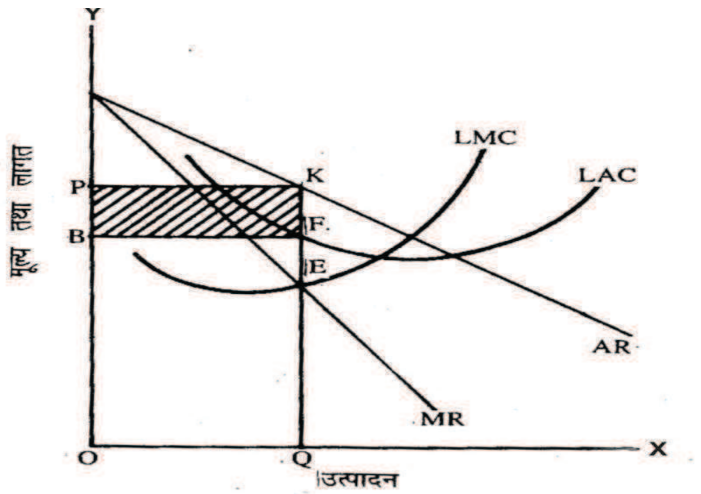

चित्र : 16.6

चित्र में LACदीर्घकालीन औसत लागत वक्र है तथा LMC दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र है। LMC, MR को E बिन्दु पर काटता है, जिससे सन्तुलन कीमत OP तथा सन्तुलन उत्पाद OQ का निर्धारण होता है। चूंकि प्रति इकाई औसत लागत QF या OB है। अतः प्रति इकाई लाभ = OP - OB = PB

अतः कुल असामान्य लाभ = OQ×PB=PBKF

रेखाचित्र 19.4 से यह भी स्पष्ट है कि एकाधिकारी फर्म की सन्तुलन स्थिति LAC के न्यूनतम बिन्दु पर नहीं है। F बिन्दु LAC के गिरते हुए भाग में स्थित है। वस्तुतः LAC के किस भाग में एकाधिकारी उत्पादन करेगा, यह AR तथा MR के आकार पर निर्भर करेगा।

दीर्घकालीन एकाधिकारी फर्म के सम्बन्ध में एक तथ्य और भी महत्वपूर्ण है कि वह दीर्घकाल में अपनी स्थित प्लान्टों में से कुछ को बेचकर उत्पादन क्षमता कम कर सकता है या नये प्लान्टों को लगाकर उत्पादन क्षमता बढ़ा सकता है। अतः दीर्घकाल में एकाधिकारी उद्योग के विस्तार या संकुचन के कारण एकाधिकारी के लिए कुछ उत्पत्ति के साधनो की लागत में वृद्धि या कमी हो सकती है, फलस्वरूप एकाधिकारी उद्योग , दीर्घकाल में बढ़ती हुई, घटती हुई या स्थिर लागत के अन्तर्गत उत्पादन करेगा। अतः दीर्घकाल में मूल्य निर्धारण के क्रिया के ऊपर उत्पादन के तीनों नियमों के प्रभावों को हम निम्नलिखित रेखाचित्रों 19.7, 19.8 तथा 19.9 के अन्तर्गत स्पष्ट कर रहे है।

1. **लागत वृद्धि नियम लागू होने पर-** लागत वृद्धि नियम के अन्तर्गत एकाधिकारी की स्थिति को चित्र 19.7 में प्रदर्शित किया गया है।

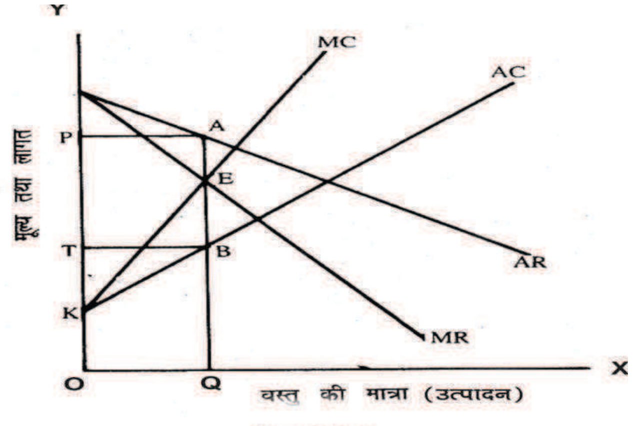

चित्र :16.7

चित्रानुसार लागत रेखाएँ ACऔर MC ऊपर की ओर बढ़ती हुई है, MCए MR को E बिन्दु पर काटती है। अतः एकाधिकारी OQ वस्तु का उत्पादन करेगा। इस OQ उत्पादन पर औसत आय OP है। इसी OP मूल्य पर फर्म का लाभ अधिकतम होगा और फर्म को कुल PABT के क्षेत्रफल के बराबर लाभ प्राप्त होगा।

2. **लागत ह्रास नियम लागू होने पर**:- एकाधिकारी को लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत कार्य करने की स्थिति को चित्र 19.8 में प्रदर्शित किया गया है।

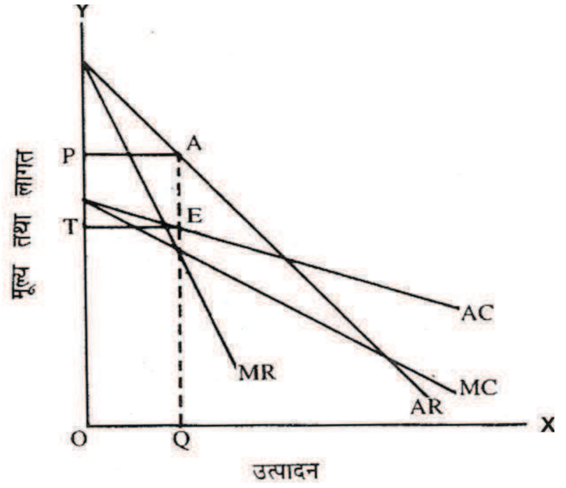

चित्र :16.8

स्पष्ट है कि इस स्थिति में उत्पादन के साथ-साथ लागत घटती जाती है। ऐसी स्थिति में एकाधिकारी कम से कम मूल्य रखकर अधिक से अधिक उत्पादन करना चाहेगा। चित्रानुसार MR तथा MC की समानता के आधार पर सन्तुलन उत्पाद OQ का निर्धारण होता है।

संस्थिति मूल्य = OP

औसत लागत (AC)=OT

चूकि प्रति इकाई लाभ =OP-OT=PT

अतः कुल लाभ- PT×OQ=क्षे0 PTEA

3. **स्थिर - लागत नियम लागू होने पर**- एकाधिकारी की लागत स्थिरता नियम या स्थिर - लागत नियम के अन्तर्गत कार्य करने की स्थिति को रेखाचित्र 19.9 में प्रदर्शित किया गया है।

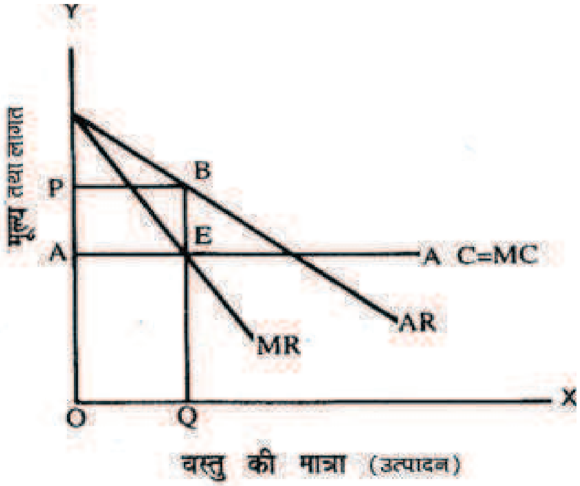

चित्र :16.9

चित्रानुसार MR तथा MC के द्वारा सन्तुलन उत्पाद OQ का निर्धारण होता है।
सन्तुलन मूल्य प्रति इकाई =OP है।
औसत लागत (AC) प्रति इकाई = OA है।
लाभ प्रति इकाई = OP-OA=PA
अतः कुल लाभ = OQ×PA= क्षे0 PAEB

19.4.5 क्या एकाधिकारी कीमत सदैव प्रतियोगी कीमत से ऊँची होती है?

चूंकि एकाधिकारी अपने क्षेत्र में अकेला होता है, उसका पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है तथा वह अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है। एक सामान्य धारणा यह पनपती है कि एकाधिकारी कीमत प्रतियोगी कीमत से बहुत अधिक ऊँची होती है। वास्तविकता यह है कि यद्यपि कुछ स्थितियों में यथा अल्पकाल में एकाधिकारी कीमत नीची हो सकती है, और उसे केवल

सामान्य लाभ प्राप्त हो या हानि भी हो सकती है परन्तु प्रायः एकाधिकारी कीमत निःसंदेह प्रतियोगी कीमत से अधिक होती है और एकाधिकारी अतिरिक्त लाभ अर्जित करता है।

एकाधिकारी वस्तु की कीमत कितनी ऊँची होगी यह माँग की लोच तथा लागत के व्यवहार पर निर्भर करेगी। एक एकाधिकारी मूल्य तथा उत्पादन निर्धारित करते समय सदैव अपनी मूल्य लोच को ध्यान में रखता है। वस्तुतः एकाधिकारी मूल्य वहाँ निर्धारित करता है जहाँ वस्तु की मूल्य लोच इकाई से अधिक $(e>1)$हो। यदि एकाधिकारी वस्तु की माँग बेलोचदार है तो एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत ऊँची रख सकेगा और ऐसा करने से उसकी बिक्री की मात्रा में कोई विशेष कमी नही होगी। इसके विपरीत यदि माँग अत्यधिक लोचदार है तो एकाधिकारी को वस्तु की कीमत नीची रखनी पड़ेगी जिससे वस्तु की अधिक मात्रा में बेंचकर वह अपने लाभ कों अधिकतम् कर सके।

यद्यपि कुछ दशाओं में एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत को प्रतियोगी कीमत से नीची रख सकता है-

यदि एकाधिकारी 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत उत्पादन कर रहा है, तो वह अपनी वस्तु को अपेक्षाकृत नीची कीमत रखकर अपने लाभ को अधिकतम करेगा।

यदि किसी क्षेत्र में उत्पत्ति के बड़े पैमाने की बचतों के परिणामस्वरूप एकाधिकारी स्थिति प्राप्त की जा सकती है, तो इस स्थिति में एकाधिकारी वस्तु का बड़े पैमाने पर उत्पादन करके वस्तु की प्रति इकाई लागत को कम करेगा। फलतः वह अपने वस्तु की कीमत को प्रतियोगी कीमत से कम रखेगा।

उपर्युक्त परिस्थितियों के अतिरिक्त एकाधिकारी वस्तु की कीमत सदैव प्रतियोगी कीमत से ऊँची रहती है।पिछली इकाई के अन्तर्गत पूर्ण प्रतियोगिता तथा इस इकाई में एकाधिकार के बारे में विशद जानकारी प्राप्त करने के पश्चात अब पूर्ण प्रतियोगी बाजार तथा एकाधिकारी बाजार के मध्य महत्वपूर्ण अन्तरों को हम सारांश रूप में निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं -

क्र0 सं0	तुलना का आधार	पूर्ण प्रतियोगिता	एकाधिकारी
1.	फर्मो की संख्या	अपरिमित या अत्यधिक	एक
2.	फर्मो का प्रवेश	स्वतंत्र प्रवेश	प्रवेश पूर्णतया वर्जित
3.	वस्तु का स्वभाव	पूर्णतः सहजातीय	पूर्ण सहजातीय, नजदीकी स्थानापन्न नहीं।
4.	उत्पादन व मूल्य निर्धारण	केवल उत्पादन समायोजन, मूल्य निर्धारण नहीं (फर्मे केवल मूल्य स्वीकारक होती है)	उत्पादन तथा मूल्य दोनों का निर्धारण

5.	आय वक्र का स्वरूप, AR व MR के मध्य सम्बन्ध	AR तथा MR आधार अक्ष के समान्तर होते हैं तथा ARए MR तथा लोच (e) के मध्य कोई संबंध नहीं	AR तथा MR नीचे गिरते हुए होते हैं। AR,MR तथा e के मध्य सम्बन्ध- $MR = AR\left(1 - \frac{1}{e}\right)$
6.	पूर्ति वक्र व लागत वक्र का स्वरूप	पूर्ति वक्र निर्धार्य तथा अल्पकाल में MC से सम्बन्धित होती है। जबकि लागत वक्र U आकार का होता है।	पूर्ति वक्र MC से सम्बन्धित नहीं तथा अनिर्धाय, लागत वक्र U आकार में है।
7.	संस्थिति की स्थिति	दीर्घकालीन संस्थिति में AR = MR = AC= MC	दीर्घकालीन संस्थिति में MR त्र MC तथा AR इससे अधिक होता है। अर्थात् (MR= MC < AR)
8.	लाभ की स्थिति (i) अल्पकाल में (ii) दीर्घकाल में	सामान्य लाभ, असामान्य लाभ तथा हानि तीनों स्थितियां संभव है। केवल सामान्य लाभ	सामान्य लाभ, असामान्य लाभ एवं हानि तीनों स्थितियां संभव है। केवल असामान्य लाभ
9.	मूल्य तथा उत्पादन क्षमता	दीर्घकाल मे ACके न्यूनतम बिन्दु पर, निष्क्रिय उत्पादन क्षमता का अभाव साधनों का अनुकूलतम व पूर्ण शोषण	दीर्घकाल में उत्पादन ACके न्यूनतम बिन्दु से बायी ओर निष्क्रिय उत्पादन क्षमता। मूल्य अपेक्षाकृत ऊँचा तथा उत्पादन कम
10	उपभोक्ता का शोषण	उपभोक्ता की दृष्टि से उत्तम	उपभोक्ता का शोषण

अभ्याय प्रश्न-1

1. लघु उत्तरीय प्रश्नः-

क. एकाधिकारी का अर्थ बताइए? इसकी प्रमुख विशेषतायें क्या हैं?

ख. एकाधिकार के अन्तर्गत अल्पकाल में फर्म के लाभ को रेखाचित्र से प्रदर्शित कीजिए।

ग. एकाधिकारी व पूर्ण प्रतियोगी फर्म में पॉच प्रमुख अन्तर बताइए।

घ. एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण की शर्त क्या है?

2. **निम्न कथनो में सत्य/असत्य कथन बताइए-**

(क) एकाधिकार के अन्तर्गत फर्मों की अपरिमित संख्या होती है।

(ख) एकाधिकारी मूल्य, प्रतियोगी मूल्य से सदैव अधिक होती है।

(ग) एकाधिकार को अल्पकाल में केवल लाभ ही होता है, हानि नहीं।

(घ) मूल्य विभेदीकरण पूर्ण प्रतियोगिता में भी संभव हो सकता है।

(ड.) एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य या मात्रा दोनों में से कोई भी निर्धारित कर सकता है।

(च) दीर्घकाल में एकाधिकारी सदैव असामान्य लाभ ही प्राप्त करता है।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) एकाधिकारी फर्म होती है-

(A)केवल कीमत नियोजक है (B) केवल मात्रा नियोजक

(C) कीमत नियोजक व मात्रा नियोजक दोनो (D) उपर्युक्त सभी असत्य

(ख) एकाधिकारी सन्तुलन के लिए सत्य होगा-

(A) $AR < MR$ (B) $TR = TC$

(C) $AR > MR$ (D) $AR = MR$

(ग) एकाधिकारी के लिए निम्नांकित में से कौन सा सत्य है?

(A) $MR = AR\left(1-\frac{1}{e}\right)$ (B) $MR = AR\left(1+\frac{1}{e}\right)$

(C) $MR = AR\left(\frac{1-e}{e}\right)$ (D) $MR = AR\left(\frac{e}{1-1}\right)$

(घ) एक एकाधिकारी अपनी वस्तु का उत्पादन वहाँ हमेशा करेगा जहाँ उसकी औसत आय की लोच -

(A) इकाई से अधिक हो (B) इकाई से कम हो

(C) शून्य हो (D)तीनों में से कोई भी

(ड.)अल्पकाल में एकाधिकारी का तालाबन्दी बिन्दु वहॉ होगा, जहॉ-

(A) AVC (B) $TR = TVC$

(C) $P = AFC$ (D) इनमें से कोई नहीं

(च) एकाधिकार के अन्तर्गत सत्य है-

(A) फर्म व उद्योग एक ही होते हैं (B) फर्म स्वयं कीमत निर्धारक होती है।

(C) नयी फर्मों के प्रवेश में प्रभावपूर्ण रूकावटें (D) उपर्युक्त सभी

19.5 मूल्य - विभेदीकरण अथवा विभेदात्मक एकाधिकार

वस्तुओं की समान ईकाइयों के लिए भिन्न-भिन्न क्रेताओं से अलग -अलग मूल्य प्राप्त करने की क्रिया को 'मूल्य विभेदीकरण' कहते हैं। जब एकाधिकारी अपनी वस्तु को विभिन्न बाजारों में या विभिन्न ग्राहकों को भिन्न-भिन्न मूल्य पर बेंचता है तो उसे विभेदात्मक एकाधिकार कहा जाता है।

श्रीमती जॉन राबिन्सन के अनुसार - ''एक ही वस्तु को जिसका उत्पादन एक ही उत्पादक द्वारा किया जाता है, भिन्न-भिन्न क्रेताओं को भिन्न-भिन्न मूल्यों पर बेचने की क्रिया को मूल्य विभेद कहते हैं।''

स्टिगलर इसे अत्यन्त संक्षेप में परिभाषित करते हुए कहते हैं कि- ''समान वस्तु के लिए दो या दो से अधिक मूल्य प्राप्त करने को मूल्य-विभेद कहते हैं।''

आप इस तथ्य से अवगत हो रहे होंग कि मूल्य विभेद या कीमत विभेदीकरण क्रिया के अन्तर्गत एक विक्रेता विभिन्न उपभोक्ताओं को कोई पदार्थ भिन्न-भिन्न कीमतों पर बेंचता है। आइए एक उदाहरण से समझते हैं- यदि किसी मशीन (जैसे रेफ्रीजरेटर) का निर्माता एक क्रेता से 5 हजार रूपये प्राप्त करता है और उसी ब्राण्ड या किस्म के रेफ्रीजरेटर को दूसरे ग्राहक या क्रेता को 5,500 रू0 में बेंचता है तो यह कहा जायेगा कि वह कीमत विभेदीकरण या मूल्य विभेद कर रहा है। एक समान पदार्थ की विभिन्न क्रेताओं से भिन्न-भिन्न कीमतें प्रायः तीन आधारों पर वसूल की जाती है-

(i) **व्यक्तिगत मूल्य विभेदीकरण**- यह विभेदीकरण तब होता है जब एक विक्रेता विभिन्न व्यतिओं से वस्तु की भिन्न-2 कीमतें वसूल करता है।

(ii) **स्थानीय मूल्य विभेदीकरण**- मूल्य विभेदीकरण स्थानीय तब होता है जब विक्रेता विभिन्न स्थानों, नगरों अथवा क्षेत्रों के लोगों से भिन्न-भिन्न कीमतें वसूल करता है। जैसे- यदि कोई उत्पादक किसी वस्तु को अपने देश में किसी कीमत पर बेंचे और विदेश में भिन्न कीमत पर बेचें।

(iii) **उपयोग या व्यवसाय के अनुसार**- मूल्य विभेदीकरण उपयोग या व्यवसाय के अनुसार तब होता है जब वस्तु की भिन्न-भिन्न कीमतें वस्तु के विभिन्न प्रयोगों के अनुसार वसूल की जाती है। उदाहरणार्थ - बिजली घरेलू प्रयोजनों के लिए कम दर पर वसूली जाती है जबकि औद्योगिक उपयोग के लिए ऊँची दर वसूली जाती है।

मूल्य विभेदीकरण के सम्बन्ध में यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत यह विभेद संभव नहीं है क्योंकि इसमें वस्तु की एकसमान (सहजातीय) इकाईयाँ होती हैं तथा क्रेता को बाजार का पूर्ण ज्ञान रहता है। यदि कोई विक्रेता किसी वस्तु के लिए अधिक मूल्य वसूल करेगा तो उसके सभी ग्राहक उस विक्रेता को छोड़कर दूसरे विक्रेता के पास चले जायेंगे। अतः स्पष्ट है कि मूल्य विभेदीकरण केवल एकाधिकार में ही संभव है। एकाधिकारी मूल्य विभेदीकरण क्रिया अपने लाभ को अधिकतम करने हेतु अपनाता है।

19.5.1 मूल्य विभेदीकरण की कोटियाँ-

प्रख्यात अर्थशास्त्री प्रो0 ए0सी0 पीगू मात्रा- के आधार पर विभेदीकरण को तीन कोटियो में वर्गीकृत करते हैं-

(i) प्रथम कोटि का मूल्य विभेदीकरण

(ii) द्वितीय कोटि का मूल्य विभेदीकरण

(iii) तृतीय कोटि का मूल्य विभेदीकरण

आइये हम इन तीनों कोटियों के मूल्य विभेदीकरण के संक्षेप में जानने का प्रयास करते हैं

(1) प्रथम कोटि का मूल्य विभेदीकरण- प्रथम कोटि का मूल्य विभेदीकरण तब होगा जबकि एकाधिकारी प्रत्येक क्रेता को उतने मूल्य पर अपनी वस्तु की प्रत्येक इकाई बेचने में सफल हो जाय जितना अधिक से अधिक वह देने के लिए तैयार होता है। अर्थात् इस स्थिति में उपभोक्ता के पास कुछ भी उपभोक्ता की बचत शेष नहीं रह पाती। श्रीमती जॉन राक्सिन इसे ''पूर्ण मूल्य विभेदीकरण'' की संज्ञा देती है।

प्रथम कोटि के मूल्य विभेदीकरण को रेखाचित्र 19.8 (1) में प्रदर्शित किया गया है। चित्रानुसार वस्तु की पहली इकाई के लिए उपभोक्ता OD मूल्य देने के लिए तत्पर है और विक्रेता इस इकाई को उसी OD मूल्य पर बेंच भी देता है। इसी प्रकार वह वस्तु की प्रत्येक इकाई को मांग वक्र के प्रत्येक बिन्दु से व्यक्त होने वाले मूल्यों पर बेच देता है।

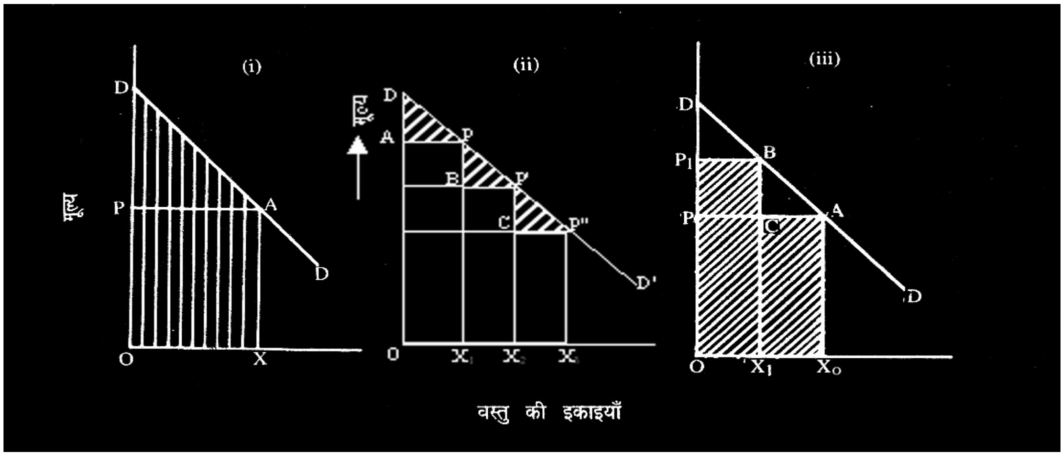

(2) द्वितीय कोटि का मूल्य विभेदीकरण - द्वितीय कोटि का मूल्य विभेदीकरण तब होगा जब एकाधिकारी दो से अधिक मूल्य लेने की स्थिति में हों। अर्थात् इसके अन्तर्गत एकाधिकारी उपभोक्ताओं को उनके द्वारा वस्तु के लिए कीमत देने के आधार पर विभिन्न वर्गों में बाँटा जाता है और प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों से उतनी कीमत प्राप्त की जाती है जितनी उस वर्ग में से कम से कम कीमत चुकाने को कोई तैयार होता है। इसे चित्र 19.8 (ii) में प्रदर्शित किया गया है। चित्रानुसार DD

वस्तु का मांग वक्र है तथा वस्तु की मांग को तीन वर्गों .OX_1, OX_2 तथा OX_3 में बाँटा गया है। वस्तु की X_1 इकाई के लिए कोई उपभोक्ता X_1P कीमत देने को तैयार है। अतः इस वर्ग के सभी उपभोक्ताओं से जो इससे अधिक कीमत देने को तैयार होते हैं, से भी X_1P कीमत ही वसूली जायेगी। परिणामस्वरूप X_1P से ऊँची कीमतें देने को तैयार उपभोक्ताओं को कुछ उपभोक्ता अतिरेक प्राप्त होगा जिसे चित्र में छायांकित किया गया है। इसी प्रकार दूसरे व तीसरे वर्गों के लिए भी उपभोक्ता बचतों को रेखांकित किया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि द्वितीय कोटि के मूल्य विभेदीकरण में एकाधिकारी अपने क्रेताओं या उपभोक्ताओं को विभिन्न वर्गों में इस प्रकार बांटता है कि वह प्रत्येक वर्ग से भिन्न-2 कीमतें वसूल करता है। प्रत्येक वर्ग से उतनी कीमत प्राप्त करता है जितनी उसका सीमान्त क्रेता देने को तैयार रहता है।

(3) तृतीय कोटि का मूल्य विभेदीकरण- तृतीय कोटि का विभेदीकरण ही प्रायः पाया जाता है। तृतीय कोटि के मूल्य विभेदीकरण की स्थिति तब होती है जब एकाधिकारी अपनी वस्तु के उपभोक्ताओं को दो या दो से अधिक मार्केटों अथवा वर्गों में विभक्त कर देता है और इन विभिन्न मार्केटों के उपभोक्ताओं से भिन्न-भिन्न कीमतें प्राप्त करता है। प्रत्येक, मार्केटों अथवा वर्ग से वसूल की गयी कीमत उसमें पदार्थ के लिए मांग तथा उसमें विक्रय की जाने वाली उत्पादन मात्रा पर निर्भर करती है। वस्तुतः तृतीय कोटि के मूल्य विभेदीकरण में प्रत्येक मार्केट अथवा वर्ग से उसके सीमान्त क्रेता द्वारा दी जाने वाली न्यूनतम कीमत नहीं प्राप्त की जाती बल्कि उसमें निश्चित कीमत उसमें मांग की मूल्य लोच तथा उसमें की जाने वाली वस्तु की आपूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

तृतीय कोटि के विभेदीकरण को चित्र 19.8 (iii) में प्रदर्शित किया गया है। इसमें DD मांग रेखा है जो वास्तव में किसी वस्तु के उपभोग से वंचित रहने की स्थिति में मूल्य देने की तत्परता व्यक्त करती है। इस प्रकार यदि एकाधिकारी एक ही मूल्य OP रखता तो उपभोक्ता की बचत PDA होती और एकाधिकारी की आय $OPAX_O$ होती। अब यदि एकाधिकारी OX_1 वस्तु को OP_1 मूल्य पर बेचता तथा शेष X_1Xo मात्रा OP मूल्य पर बेचता तो उसकी आय में PP_1BC के बराबर वृद्धि हो जाएगी जो वास्तव में उपभोक्ता की बचत थी।

वास्तविक आर्थिक जगत में प्रायः तृतीय प्रकार का ही मूल्य विभेदीकरण पाया जाता है। जैसे- एक बिजली आपूर्ति कम्पनी द्वारा घरों में प्रकाश के लिए तथा उत्पादकों से औद्योगिक उत्पादन हेतु बिजली का भिन्न-भिन्न शुल्क प्राप्त करना आदि।

19.5.2 मूल्य विभेदीकरण की अनिवार्य दशाएँ-

मूल्य विभेदकरण सम्भव होने के लिए दो आधारभूत शर्तों का होना आवश्यक हैः-

(1) मूल्य विभेदीकरण तब हो सकता है जबकि वस्तु की इकाई एक बाजार से दूसरे बाजार में हस्तान्तरित न हो सकती हो। अर्थात् कोई एकाधिकारी मूल्य विभेदीकरण तभी कर सकता है जबकि वह ऐसे विभिन्न बाजारों में वस्तु को बेच रहा होता है जो इस प्रकार पृथक होती है कि एक बाजार में बेची गयी वस्तु को दूसरे बाजार में नहीं ले जाया या बेचा जा सकता है।

(2) मूल्य विभेदीकरण की दूसरी आधारभूत शर्त यह है कि स्वयं क्रेताओं के लिए भी सम्भव न हों कि वे अपने को महंगे बाजार से सस्ते बाजार में हस्तांतरित कर सके। अर्थात् कीमत विभेदीकरण होने के लिए न तो वस्तु की कोई इकाई और न ही मांग की कोई इकाई (अर्थात् उपभोक्ता) एक बाजार से दूसरे बाजार तक जा सके।

उदाहरणार्थ- यदि एक डाक्टर निर्धन व्यक्ति से धनी व्यक्ति की तुलना में कम फीस वसूल करता है तो उसके द्वारा किया जा रहा मूल्य विभेदीकरण उस स्थिति में टूट जायेगा जबकि एक धनी व्यक्ति अपने को निर्धन दिखाकर निर्धन वाली फीस डाक्टर को देता है।

अतः मूल्य विभेदीकरण हेतु एकाधिकारी की शक्ति बाजारों को पृथक-पृथक रखने की शक्ति पर निर्भर करता है। मूल्य विभेदीकरण के लिए यह भी आवश्यक है कि एक उपभोक्ता द्वारा दूसरे उपभोक्ता को पुनः बिक्री की कोई सम्भावना न रहे।

कई परिस्थितियों के कारण भी एकाधिकारी विभिन्न बाजारों को पृथक पृथक रख सकता है। ये निम्नांकित हैः-

(क) उपभोक्ता का स्वभावः-

(i) उपभोक्ता को यह ज्ञात न हो कि दूसरा व्यक्ति उसी वस्तु के लिए कम मूल्य दे रहा है।

(ii) मूल्य विभेदीकरण तब संभव होगा जब उपभोक्ता यह समझे कि वह किसी वस्तु के लिए अधिक मूल्य इसलिए दे रहा है कि क्योंकि जो वस्तु वह खरीद रहा है, वह अन्य वस्तुओं से उत्तम है।

(iii) मूल्य विभेद उस समय भी संभव होता है जब मूल्य का अन्तर इतना कम हो कि उपभोक्ता उसका ध्यान ही न दे।

(ख) वस्तु की प्रकृतिः-

(i) जब वस्तु अथवा सेवा को पुनः हस्तान्तरित नहीं किया जा सके। जैसे डाक्टर एवं वकीY की सेवाओं में मूल्य-विभेदीकरण अधिक संभव होता है। डाक्टर अपनी सेवाओं के लिए धनी व्यक्ति से अधिक तथा गरीब व्यक्ति से कम मूल्य लेता है।

(ii) वस्तु ऐसी हो जिसकी पूर्ति आर्डर प्राप्त होने पर ही हो, ऐसी दशा में बहुत ही आसानी से मूल्य विभेदीकरण सम्भव है।

(ग) दो बाजारों के बीच की दूरी तथा भौगोलिक सीमाः-

(i) यदि दो बाजार एक दूसरे से इतने दूर हों कि एक बाजार से दूसरे बाजार तक पहुंँचने में यातायात-व्यय, दोनों बाजारों में वस्तुओं के मूल्य के अन्तर से अधिक हो तो कोई भी उपभोक्ता मूल्य के अन्तर को जानने के पश्चात् भी एक बाजार से दूसरे बाजार तक जाना उचित नहीं समझेगा।

(ii) सीमाओं की बाधाओं के कारण भी मूल्य विभेदीकरण संभव हो जाता है। सीमावर्ती प्रदेशों में जहाँ दो देशों की सीमाएँ मिल ती हैं तथा जहाँ वस्तुओं के आयात-निर्यात पर प्रतिबन्ध हो, वहाँ समीप होने के बावजूद भी दो बाजारों में मूल्य विभेदीकरण हो सकता है।

(घ) कानूनी स्वीकृति के कारणः-

कुछ दशाओं में सरकार एकाधिकारी को वस्तु या सेवा की विभिन्न कीमतों के लेने की कानूनी स्वीकृति दे देती है; जैसे- एक बिजली कम्पनी रोशनी तथा पंखों के लिए ऊँची दर तथा औद्योगिक प्रयोजनों के लिए नीची दर लेती है, क्योंकि उसे कानूनी स्वीकृति मिली होती है।

19.5.3 मूल्य विभेदीकरण के अन्तर्गत एकाधिकारी का सन्तुलन -

साधारणतः एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु के समस्त उत्पादन की केवल एक ही कीमत वसूल की जाती है परन्तु मूल्य विभेदीकरण के अन्तर्गत एकाधिकारी अपनी मार्केट के विभिन्न भागों से वस्तु की भिन्न-भिन्न कीमतें वसूल करता है। अतः एकाधिकारी का सबसे पहला कार्य अपनी वस्तु की समस्त मार्केट को विभिन्न भागों में मांग की मूल्य लोचों में अन्तरों के आधार पर बाँटना होता है। एकाधिकारी अपने सम्पूर्ण मार्केट को उतने विभिन्न भागों में बाँट सकता है जितने भागों में माँग की मूल्य-लोचों में अन्तर है। हम विश्लेषण की सरलता के लिए यह मान लेते हैं कि एकाधिकारी अपने मार्केट को दो भागों में बाँटता है। सन्तुलन की स्थिति के लिए एकाधिकारी को तीन निर्णय लेने होते हैं-

(i) वह वस्तु की कितनी मात्रा को उत्पादित करे?

(ii) वस्तु के कुल उत्पादन को मार्केट के दोनों भागों में किस प्रकार बाँटें और

(iii) उन दो भागों में कितनी-कितनी कीमतें प्राप्त करें।

कुल उत्पादन मात्रा का निर्णय करने के लिए विभेदीकरण करने वाला एकाधिकारी अपने उत्पादन की सीमान्त आय (MR)और सीमान्त लागत (MC)में तुलना करेगा। इस हेतु उसे सर्वप्रथम दोनों बाजारों को मिलाकर कुल सीमान्त आय (Aggregate Marginal Revenue = AMR)को ज्ञात करना

होता है तभी वह उसकी तुलना MC से कर सकता है। कुल सीमान्त आय (AMR) दोनों बाजारों में सीमान्त आय (MR) वक्रों के साथ-साथ रखकर जोड़ने से प्राप्त होती है।

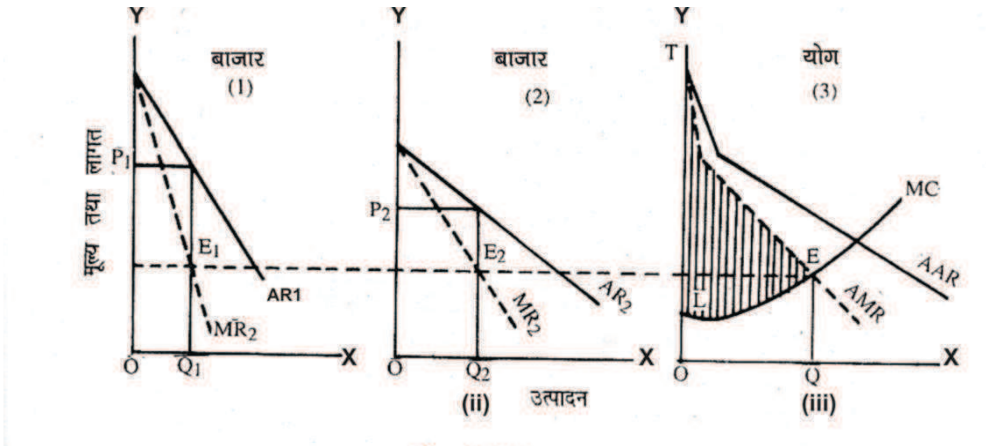

चित्र :16.11

चित्र 19.9 में प्रदर्शित बाजार के दो उपक्षेत्र 1 और 2 है जिनकी सीमान्त आय वक्र क्रमशः MR1 एवं MR2 है। इन दोनों क्षेत्रों के माँग का औसत आय वक्र क्रमशः AR_1 और AR_2 है। चित्रानुसार बाजार-1 की AR_1 , बाजार- 2 की AR_2 से कम लोचदार है। कुल सीमान्त आय वक्र ;।डत्द्ध जिसे इसी रेखाचित्र के भाग (iii) में दिखाया गया है, को MR_1 और MR_2 वक्रों को एक साथ जोड़ने से प्राप्त किया गया है। एकाधिकारी के कुल उत्पादन का सीमान्त लागत वक्र MC है। एकाधिकारी की समग्र मांग दोनों बाजारों की मांगों AR_1 तथा AR_2 को जोड़कर समग्र औसत आय AAR से प्रदर्शित है।

चूँकि यह मान लिया गया है कि दोनों बाजारों में एक ही उत्पादन लागत की वस्तु बेची जा रही है। अतः एकाधिकारी फर्म के लिए एक ही MC वक्र रेखाचित्र (iii) में खींची गयी है, अलग -अलग बाजारों में विभेदात्मक एकाधिकारी का लाभ अधिकतम तब होगा जब वह उस बिन्दु पर उत्पादन करेगा जिस पर AMR तथा MC एक दूसरे को काटते हो। चित्र (iii) से स्पष्ट है कि एकाधिकारी के सन्तुलन उत्पाद की मात्रा OQ है। इस प्रकार एकाधिकारी का पहला निर्णय पूर्ण हो जाता है जो सन्तुलन उत्पाद के निर्धारण से सम्बन्धित होता है।

अब एकाधिकारी के समक्ष सबसे प्रमुख समस्या यह होती है कि वह इस उत्पाद को दोनों बाजारों में कितनी मात्रा में और किस मूल्य पर बेचे जिससे उसका लाभ अधिकतम हो सके। स्पष्ट है कि एकाधिकारी के सम्पूर्ण उत्पादन की लागत तो एक ही होगी। अतः दोनों बाजारों के लिए MC एक ही होगी। परन्तु दोनों बाजारों में MR अलग -अलग होगी क्योंकि माँग की लोच की भिन्नता के कारण दोनों बाजारों में AR अलग -अलग होगी। जैसा कि आप जानते है कि एकाधिकारी का

लाभ अधिकतम् तब होगा जबकि प्रत्येक बाजारो में उसका लाभ अधिकतम् हो, और प्रत्येक बाजार में अधिकतम लाभ हेतु आवश्यक है कि उस बाजार की MR=MC हो।

अतः बाजार -1 में अधिकतम लाभ हेतु MR_1= MC होगा।

बाजार -2 में अधिकतम लाभ तब होगा जबकि MR_2 =MC हो स्पष्ट है कि एकाधिकारी का कुल उत्पादन का निर्धारण MC=AMR द्वारा होगा। अतः कुल लाभ अधिकतमीकरण हेतु- $MC=AMR=MR_1=MR_2$

यदि $MR_1>MR_2$ हो तो एकाधिकारी बाजार नं0 (1) में अधिक वस्तुयें तथा बाजार नं0 (2) में कम वस्तुयें बेचेगा जिससे उसका लाभ अधिकतम हो सके और यह क्रिया तब तक चल ती रहेकगी जब तक कि $MR_1=MR_2$ नही हो जाता। संतुलन उत्पाद OQ को एकाधिकारी किस प्रकार दोनो बाजारो में बॉटता है। आइये इसे समझते है। बिन्दु E से मूल्य अक्ष पर लम्ब खीचा गया है जो MR_2 को E_2 बिन्दु तथा MR_1 को E_1 बिन्दु पर काटता है। E_1तथा E_2 दोनों बिन्दुओं पर $MR_1=MR_2=MC$ है। E_2 से उत्पादन अक्ष पर खींचा गया लम्ब बाजार नं0 2 में OQ_2 मात्रा का निर्धारण करता है जिसे एकाधिकारी बाजार नं02 में बेचेंगा। इसी प्रकार बाजार नं0 (1) में OQ_1 उत्पाद मात्रा का निर्धारण होता है जिसे एकाधिकारी बाजार नं0-1 में बेचता है। इस प्रकार एकाधिकारी कुल उत्पादन OQ में से OQ_1 मात्रा बाजार-1 और OQ_2 मात्रा बाजार नं02 में बेंचेगा। इस स्थिति में $OQ=OQ_1+OQ_2$ । OQ से सम्बन्धित मूल्य OP, तथा OQ_2 से सम्बन्धित मूल्य OP_2 होगा। अतः स्पष्ट है कि एकाधिकारी बाजार नं0 1 मे OQ_1उत्पादन OP मूल्य पर बेंचेगा तथा बाजार में नं0 2 में OP_2 उत्पादन OP_2 मूल्य पर बेचेगा। इस स्थिति में एकाधिकारी को होने वाला कुल लाभ TEL होगा जो MR तथा MC के बीच का क्षेत्र है।

19.5.4 मूल्य विभेदीकरण का औचित्य-

मूल्य विभेदीकरण के सम्बन्ध में प्रायः एक प्रश्न उठाया जाता है कि यह सामाजिक दृष्टि से उचित है अथवा नहीं। यदि सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से देखा जाय तों मूल्य विभेदीकरण को कतई उचित नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि इसके द्वारा दो उपभोक्ताओं के मध्य अन्तर रखा जाता है, एक ही वस्तु के लिए एक उपभोक्ता से कम मूल्य तथा दूसरे उपभोक्ता से अधिक मूल्य वसूल किया जाता है। यही नहीं मूल्य विभेदीकरण के परिणामस्वरूप एकाधिकारी का लाभ बढ़ता है जिसके फलस्वरूप पूँजी के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पनपती हैं। मूल्य विभेदीकरण का ही एक प्रकार राशिपातन है जिसके अन्तर्गत लाभ की दृष्टि के लिए एकाधिकारी अपने देश में वस्तुओं की कम मात्रा को अधिक मूल्य पर तथा विदेशी बाजार या विदेशो में अधिक वस्तुए कम मूल्य पर बेचता हैं। इस तरह वह विदेशी बाजार की हानि को सुरक्षित देशी बाजार में बहुत ऊँची कीमत लेकर पूरा कर लेता है। उपर्युक्त तर्को के सन्दर्भ में मूल्य विभेदीकरण सामाजिक न्याय की दृष्टि से अच्छा नही है, परन्तु यह

निष्कर्ष पूर्णतः सही नही हो सकता क्योंकि कुछ परिस्थितियों में उपभोक्ताओ के बीच भेदभाव करके ही बेहतर सामाजिक न्याय प्राप्त किया जा सकता है। निम्नांकित दशाओं में मूल्य विभेदीकरण को न्यायोचित ठहराया जा सकता है।

(i) उन वस्तुओं तथा सेवाओं के सम्बन्ध में जो समाज की दृष्टि से आवश्यक है। जैसे बिजली आपूर्ति हेतु घरेलू और औद्योगिक क्षेत्रों से अलग -अलग दर वसूली जाती है। इसी प्रकार पोस्ट आफिस, पोस्टकार्ड को सस्ते मूल्य पर बेंचता है क्योंकि इसका सर्वाधिक उपयोग निर्धन वर्ग करता है परन्तु मूल्य विभेदीकरण करने के कारण ही वह अन्य वस्तुओं पर ऊँची कीमत लेता है जिससे पोस्टकार्ड की कीमत कम रख सके। एक अन्य उदाहरण रेलवे का है जिससे प्रथम श्रेणी यात्रियों से अधिक किराया वसूल कर द्वितीय श्रेणी किराये को नीचा रखता है।

(ii) उस स्थिति में भी मूल्य विभेद न्यायोचित ठहराया जा सकता है जबकि एक लाभप्रद मूल्य की स्थिति में उत्पादन संकुचित हो जाय और इसके परिणामस्वरूप बहुत अधिक उपभोक्ता उस वस्तु या सेवा के उपयोग से वंचित हो जाय। जैसे-यदि कोई डाक्टर अपनी सेवा का एक मूल्य रख ले तो हो सकता है कि अल्प आय वर्ग के लोग उसकी सेवा से वंचित हो जाये, परन्तु यदि वह मूल्य विभेदीकरण की नीति अपनाये अर्थात धनी से अधिक फीस तथा गरीब से कम ले तो उसकी सेवा बढ़ जायेगी।

(iii) मूल्य विभेदीकरण को तब उचित कहा जा सकता है जबकि देश के अतिरिक्त उत्पादन को विदेशों में वस्तु की कीमतों को घरेलू कीमतों से कम मूल्य पर बेंचा जाता हैं अतः विभेदीकरण से जहॉ विदेशी विनियम को बढ़ाया जा सकता है वहीं दूसरी ओर इस नीति से देश के उत्पादन तथा उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न-2

1.लघु उत्तरीय प्रश्न-

(क) मूल्य विभेदीकरण का क्या अभिप्राय है?

(ख) मूल्य विभेदीकरण के लिए आवश्यक परिस्थितियॉ कौन-कौन सी है?

(ग) मूल्य विभेदीकरण का औचित्य क्या है?

2. बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) कीमत विभेदीकरण सम्भव होता है-

(A) केवल एकाधिकार में (B) प्रत्येक बाजार परिस्थिति में

(C) पूर्ण प्रतियोगिता में (D) उपर्युक्त सभी में

(ख) एकाधिकारी के लिए उसके उत्पाद की तिर्यक लोच

(A) शून्य होती है (B) इकाई से कम होती है

(C) इकाई के समान होती है (D) इकाई से अधिक होती है।

(ग) राशिपालन का क्या उद्देश्य होता है?

(A) विदेशी विनियम अर्जित करना (B) अति उत्पादन से छुटकारा पाना

(C) विदेशी प्रतिद्वन्दियों को बाजार से बाहर करना (D) उपर्युक्त सभी

(घ) जब एकाधिकारी के अन्तर्गत एकाधिकारी एक ही वस्तु के लिए विभिन्न उपभोक्ताओं से भिन्न-भिन्न मूल्य वसूल करता है तो उसे कहते हैं-

(A) पूर्ण एकाधिकारी (B) विभेदात्मक एकाधिकार

(C) सार्वजनिक एकाधिकारी (D) व्यक्तिगत एकाधिकार

(ड़) यदि दो बाजारो में माँग की लोच समान हो, सीमान्त आय समान तथा मूल्य भी समान हो, तो

(A) मूल्य विभेदीकरण सम्भव है (B) मूल्य विभेदीकरण सम्भव नही होगा

(C) उपर्युक्त में से कोई भी (D) उपर्युक्त में से कोई नही

(च) कीमत विभेदीकरण में एकाधिकारी सन्तुलन की शर्त है-

(A) $MR_1=MR_2=MC$ (B) $MR_1=MR_2=>MC$

(C) $MR_1=MR_2<MC$ (D) $MR_1>MR_2>MC$

19.6 सारांश

बाजार के वर्गीकरण का सबसे प्रमुख आधार प्रतियोगिता को माना गया है। बाजार की दो ऐसी चरम स्थितियॉ है जो परस्पर एक दूसरे के विपरीत गुण वाली है। एक तरफ पूर्ण प्रतियोगिता है, जिसमें फर्मो की संख्या इतनी अधिक होती है कि कोई भी फर्म बाजार में प्रचलित मूल्य को प्रभावित नही कर सकती। वहीं दूसरी ओर बाजार की एक स्थिति वह है कि जिसमें प्रतियोगिता का पूर्ण अभाव रहता है और बाजार में अकेला विक्रेता होता है। इसे एकाधिकारी बाजार कहा जाता है। इस प्रकार एकाधिकारी बाजार शुद्ध प्रतियोगिता की ठीक विरोधी स्थिति है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वस्तुयें एक समांग होती है अतः उनके मध्य भेद करना सम्भव नही होता है, जबकि एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तुओ का कोई निकट स्थानापन्न नहीं होता। एकाधिकारी बाजार में नई फर्मो का प्रवेश भी सम्भव नही हो पाता है। पूर्ण प्रतियोगिता की भॉति एकाधिकारी के अन्तर्गत संतुलन हेतु

आवश्यक है कि डत्त्रMC हो। एकाधिकार में वस्तु की कीमत, पूर्ण प्रतियोगी बाजार की कीमत से अधिक होती है। एकाधिकारी फर्म अल्पकाल में हानि सहन कर सकता है परन्तु दीर्घकाल में वह असामान्य लाभ प्राप्त करता रहता है। एकाधिकारी फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से मूल्य विभेदीकरण की नीति को भी अपनाता हैं इसके अन्तर्गत वह एक ही वस्तु की विभिन्न बाजारों या उपभोक्ताओं में अलग -अलग मूल्यों पर बेचता है। यद्यपि मूल्य विभेदीकरण की कुछ शर्ते है जिनके पूर्ण होने पर ही एकाधिकारी अपने उद्देश्य में सफल हो सकता है। मूल्य विभेदीकरण किसी स्तर तक समाज के लिए वांछनीय भी है और किसी स्तर पर अवांछनीय भी। यदि किसी बाजार में एक विक्रेता के साथ-साथ एक ही क्रेता भी हो तो 'इसे द्विपक्षीय एकाधिकार' कहा जाता है। विश्लेषण से स्पष्ट है कि एकाधिकार के अन्तर्गत उपभोक्ता का शोषण अधिक होता है क्योंकि इसमें मूल्य अपेक्षाकृत ऊँचा एवं उत्पादन कम होता है। वस्तुतः व्यवहार में विशुद्ध एकाधिकारी नहीं पाया जाता क्योंकि किसी वस्तु का एक उत्पादक हो सकता है, परन्तु प्रत्येक वस्तु का कोई-न- कोई स्थानापन्न अवश्य होता है और उस उत्पादक को भी किसी न किसी रूप में अप्रत्यक्ष प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है।

19.7 शब्दावली

तिर्यक लोच:- एक वस्तु की माँग में जो परिवर्तन दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के प्रतिक्रिया में होता है, उसे माँग की आड़ी लोच या तिर्यक लोच कहते है। उदाहरणार्थ इसके अन्तर्गत हम Y वस्तु की कीमत में परिवर्तन करते है और फिर देखते है कि X की माँग में कितना परिवर्तन होता है।

माँग की मूल्य लोचः- किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन का उस वस्तु की माँग में कितने प्रतिशत परिवर्तन होगा, यह विभिन्न मूल्यो पर माँग के बदल ने की क्षमता पर निर्भर करती है, यह क्षमता की माँग की मूल्य लोच कहलाती है।

बचतः- कोई उपभोक्ता किसी वस्तु के उपभोग से वंचित न रह पाने हेतु जितना अधिकतम मूल्य देने को तैयार होता है और वास्तव में वह जितना मूल्य अदा करता है, उन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता बचत या उपभोक्ता अतिरेक कहलाता है।

कीमत विभेदः- लगभग एक समांग वस्तु को विभिन्न बाजारों या उपभोक्ताओं के मध्य अलग - अलग मूल्यों पर विक्रय करना ही ''कीमत विभेद' कहलाता है।

राशिपातनः- यह कीमत विभेदीकरण का ही एक रूप है। इसमें एकाधिकारी फर्म घरेलू क्षेत्र में अपनी वस्तुओं की कम मात्रा को ऊँचे मूल्य पर तथा विदेशो में वस्तुओं की अधिक मात्रा को नीचे मूल्य पर बेचता है। इसे 'डम्पिंग' भी कहते है।

19.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

अभ्यास प्रश्न-1

1. सत्य/असत्य कथन-

(क) असत्य (ख) सत्य (ग) असत्य(घ) असत्य(ङ) सत्य (च) सत्य

बहुविकल्पी प्रश्न-

(क) C (ख) C, (ग) A, (घ) A, (ङ) A (च) D

अभ्यास प्रश्न-2

(क) A (ख) A (ग) D, (घ) B (ड़) A (च)A

19.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आहूजा, एच0 एल0 (2003)- ‘उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त’ (व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण), एस0चन्द्र पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. लाल, एस0एन0 (1999)-‘‘व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण; शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद (उ0प्र0)
3. जैन, के0पी0 (1997) - ‘व्यष्टि अर्थशास्त्र’, साहित्य भवन, आग रा।
4. सिन्हा, वी0सी0 (1999) -‘‘व्यक्ति अर्थशास्त्र’’, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
5. झिंगन, एम0एल0 (2005) -‘‘व्यष्टि अर्थशास्त्र’’, चन्द्रा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

19.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- Koutsoyinies, A (1979) - Modern Micro-economics; 2nd Edition, Macmillon Press, London.
- Mishra S.K. and Puri V.K. (2003)- " Modern Micro-Economics Theory" Himalaya Publishing House. New Delhi.
- Ahuza H.L. (2010)-"Principles of Microeconomics." S. Chand Publishing House. New Delhi.
- Dwivedi, D.N. (2008) -"Micro Economics; 7th Edition, Vikas Publishing House, New Delhi.

- Sethi, T.T. (2006) -"Principles of Economics, "Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.

19.11 निबन्धात्मक प्रश्न-

प्रश्न-1एकाधिकारी का अर्थ बताइये? अल्पकाल में एकाधिकारी मूल्य निर्धारण को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-2एकाधिकारी के अन्तर्गत अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सन्तुलन को विस्तार से समझाइये।

प्रश्न-3 लागत की दशाओं का एकाधिकार मूल्य पर प्रभाव स्पष्ट कीजिए। क्या एकाधिकार मूल्य अनिवार्यतः एक ऊँचा मूल्य होता है?

प्रश्न-4 एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण के अन्तर को पूर्णतयास्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-5 विभेदात्मक एकाधिकार किसे कहते है? इसे कौन से तत्व सम्भव बनाते हैं? इसके अन्तर्गत कीमत-निर्धारण का रेखाचित्र खीचिए।

प्रश्न-6 एकाधिकारी किन परिस्थितियों में मूल्य विभेदीकरण कर सकता है? विभेदात्मक एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है?

इकाई-20 एकाधिकारिक प्रतियोगिता अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण

20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्देश्य
20.3 एकाधिकारिक प्रतियोगिता-अर्थ एवं विशेषताएं
20.3.1 एकाधिकारिक प्रतियोगिता का अर्थ
20.3.2 एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताएं
20.4 एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का संतुतन
20.4.1 अल्पकाल में फर्म का संतुलन
20.4.2 दीर्घकाल में फर्म का संतुलन तथा समूह संतुलन
20.5 चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त की आलोचना
20.6 एकाधिकारिक प्रतियोगिता तथा पूर्ण प्रतियोगिता में तुलना
20.7 सारांश
20.8 शब्दावली
20.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
20.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
20.11 उपयोगी/सहायक ग्रंथ
20.12 निबन्धात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

व्यष्टि-अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के 'फर्म का सिद्धान्त': कीमत और उत्पादन निर्धारण' से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इस खण्ड की पहली तीन इकाईयों के अध्ययन के बाद आप बाजार संरचना, फर्म के संतुलन की शर्तें तथा पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में बता सकते हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार, बाजार की दो चरम बाजार स्थितियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, और वास्तविक जगत में बाजार की स्थितियों से मेY नहीं खाती हैं। प्रस्तुत इकाई में इन दो चरम स्थितियों के बीच की बाजार स्थिति एकाधिकारिक प्रतियोगिता या अपूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताओं तथा इसके अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन के निर्धारण का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताओं तथा उसके अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

20.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- एकाधिकारिक प्रतियोगिता का अर्थ तथा उसकी विशेषताओं को जान सकेंगे।
- एकाधिकारिक प्रतियोगिता में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण को समझ सकेंगे।
- एकाधिकारिक प्रतियोगिता तथा पूर्ण प्रतियोगिता प्रतियोगिता के अन्तर को स्पष्ट कर सकेंगे।

20.3 एकाधिकारिक प्रतियोगिता-अर्थ एवं विशेषताएं

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की स्थितियां वास्तविक बाजार की दशाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। इन दो चरम स्थितियों के बीच की बाजार स्थितियां वास्तविक जगत के अधिक निकट हैं। 1933 में प्रोफेसर एडवर्ड एच0 चैम्बरलिन ने अपनी पुस्तक ''एकाधिकारिक प्रतियोगिता का सिद्धान्त'' और श्रीमती जोन राबिन्सन ने ''अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थशास्त्र'' में क्रमशः एकाधिकारिक प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता का सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

प्रो0 चैम्बरलिन की एकाधिकारिक प्रतियोगिता और श्रीमती राबिन्सन की अपूर्ण प्रतियोगिता में कुछ अन्तर होते हुए भी दोनों में आवश्यक तत्व तथा सार समान हैं। इस इकाई में हम चैम्बरलिन द्वारा प्रस्तुत एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताओं तथा इस बाजार स्थिति में कीमत तथा उत्पादन के निर्धारण के सम्बन्ध में जान सकेंगे।

20.3.1 एकाधिकारिक प्रतियोगिता का अर्थ

एकाधिकारिक प्रतियोगिता से तात्पर्य उस बाजार स्थिति से है, जिसमें बड़ी संख्या में विक्रेता या फर्में एक दूसरे की निकट स्थानापन्न, विभेदीकृत वस्तुओं का विक्रय या उत्पादन करती हैं।

प्रत्येक फर्म इस अर्थ में एकाधिकारी होती है कि वह ब्रान्डेड तथा पेटेन्टयुक्त वस्तु उत्पादित करने था बेचने के लिए अधिकृत है। परन्तु प्रत्येक फर्म को दूसरी फर्मों के निकट स्थानापन्न वस्तुओं से प्रतियोगिता करनी होती है। जैसे-शैम्पू, साबुन या टूथपेस्ट बनाने वाली प्रत्येक फर्म का अपने उत्पाद के ब्रान्ड तथा पेटेन्ट पर एकाधिकार है परन्तु उत्पाद बनाने वाली अन्य फर्मों से उन्हें कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। चूंकि हर एक फर्म या विक्रेता विभेदीकृत वस्तु का उत्पादन तथा विक्रय करने के कारण एकाधिकारी होता है परन्तु बाजार में उनके निकट स्थानापन्न वस्तुएं होने के कारण उन्हें प्रतियोगिता करनी होती है, अतः एकाधिकारिक प्रतियोगिता की इस बाजार स्थति में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनों कें मूल्भूत तत्व समाहित होते हैं।

20.3.2 एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताएं

20.3.2.1 वस्तु विभेदीकरण

एकाधिकारिक प्रतियोगिता की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता वस्तु विभेदीकरण के कारण ही इसमें एकाधिकार तथा प्रतियोगिता का मिश्रण पाया जाता है। वस्तु विभेदीकरण का तात्पर्य है विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं में कुछ भिन्नता पायी जाती है। यह भिन्नता उनके आकार, आकृति, रंग, ब्रान्ड, डिजाइन, सूक्ष्म गुणात्मक अन्तर, डिब्बे की सुन्दरता, पैकेजिंग, विक्रय के बाद सेवा, गारन्टी तथा वारण्टी, दुकान की स्थिति इत्यादि के आधार पर हो सकती है। विभेदीकरण का आधार वास्तविक या काल्पनिक हो सकता है। वस्तु विभेदीकरण जितना ही अधिक होगा, एकाधिकार का अंश उतना ही अधिक होगा। परन्तु दूसरी फर्मों के निकट स्थानापन्न वस्तु से प्रतियोगिता करनी होती है। वस्तु विभेदीकरण गैर कीमत प्रतियोगिता का एक अंग है।

20.3.2.2विक्रेताओं की अधिक संख्या

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में विक्रेताओं या फर्मों की संख्या अधिक होती है। अर्थात बाजार में उस वस्तु की कुल आपूर्ति का थोड़ा ही भाग एक फर्म या विक्रेता के पास होता है। इसलिए प्रत्येक फर्म के लिए अपनी वस्तु की कीमत स्वयं निर्धारित कर पाना सम्भव होता है।

20.3.2.3 नीचे की ओर गिरता हुआ मांग वक्र

विभेदीकृत वस्तु के कारण चूंकि फर्म की अपनी वस्तु की कीमत निर्धारित करने की शक्ति होती है, अतः वह कीमत कम करके अपने उत्पाद की बिक्री बढ़ा सकती है या फिर उसके कीमत बढ़ाने के बावजूद उसकी कुछ मांग बाजार में बनी रहेगी। चूंकि विभिन्न ब्रान्ड आपस में निकट स्थानापन्न होते हैं, इसलिए उनमें प्रति लोच अधिक होती है परन्तु अनन्त नहीं। इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता में एक फर्म का मांग वक्र वस्तु विभेदीकरण के कारण नीचे की ओर गिरता हुआ होगा।

चैम्बरलिन के अनुसार मांग सिर्फ फर्म की कीमत नीति से ही निर्धारित नहीं होती है बल्कि वस्तु की स्टाइY, इसमें जुड़ी सेवाओं तथा फर्म की विक्रय गति विधियों पर भी निर्भर करती है।

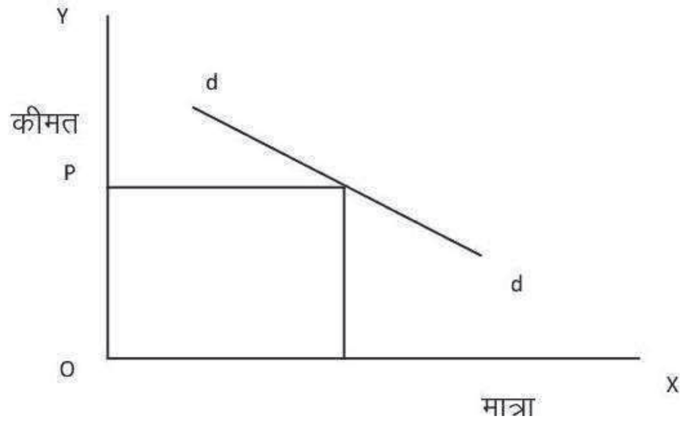

चित्र 20.1

यहां यह महत्वपूर्ण है कि वस्तु विभेद की स्थिति में जब फर्में एक दूसरे से प्रतियोगिता करती हैं तो प्रत्येक फर्म यह महसूस करती है कि उसका मांग वक्र उसकी प्रतिद्वंदी फर्म के मांग वक्र की अपेक्षा अधिक लोचदार है। अर्थात जब वह अपने उत्पाद की कीमत कम करेगी तो अन्य प्रतिद्वंदी फर्में ऐसा नहीं करेंगी और वह अन्य फर्मों के कुछ ग्राहक आकर्षित कर लेगी। कीमत बढ़ाने की स्थिति में फर्म अपने कुछ ग्राहक खोएगी। चैम्बरलिन इसे फर्म का आत्मगत या अनुभूत मांग वक्र (dpdp) कहते हैं। यह व्यक्तिगत फर्म के आत्मगत निर्णय पर आधारित है, जिसमें वह यह कल्पना कर लेती है कि उसका मांग वक्र किस प्रकार का होगा।

परन्तु जब समूह की सभी फर्मों द्वारा कीमत परिवर्तन एक ही मात्रा में तथा एक ही दिशा में होता है तो व्यक्तिगत फर्म का मांग वक्र कम लोचदार होगा। यह अनुपातिक मांग वक्र (dd) है, जो कि dpdp से कम लोचदार है। यह प्रत्येक कीमत पर फर्म की वास्तविक बिक्री को दर्शाता है। इसमें एक फर्म द्वारा कीमत में परिवर्तन करने पर अन्य प्रतिद्वंदी फर्मों की प्रतिक्रियाओं को भी सम्मिलित किया गया है। फर्म द्वारा कीमत परिवर्तन करने पर, अन्य प्रतिद्वंदी फर्मों द्वारा भी उसी समय कीमत परिवर्तन

करने की स्थिति में dpdp वक्र में लगातार विवर्तन होगा। वस्तुतः dd वक्र, विवर्तित dpdp वक्रों का बिन्दुपथ है। जैसा कि चित्र 20.2 में C, C_1 तथा C_2 बिन्दुओं से स्पष्ट है।

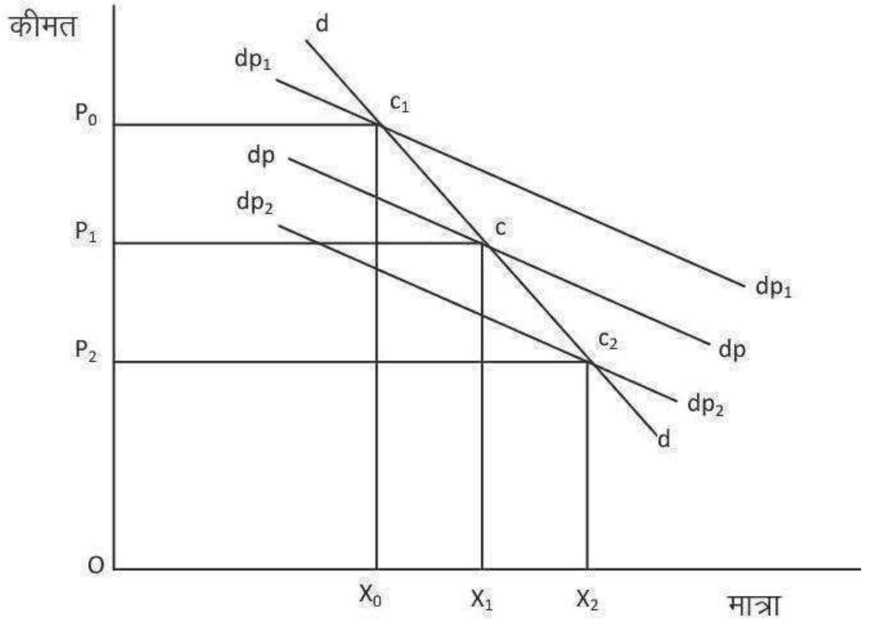

चित्र 20.2

एक फर्म जिस अनुपातिक मांग वक्र का सामना करती है वह समूह की समान्य वस्तुओं की कुल बाजार मांग का एक अंश है। अधिक फर्मों के उत्पादन समूह में प्रवेश करने पर dd वक्र बायीं ओर विवर्तित हो जाएगा।

20.3.2.4 फर्मों के प्रवेश तथा निकास की स्वतंत्रता

पूर्ण प्रतियोगिता की तरह यहां भी उद्योग   में नयी फर्म के प्रवेश तथा पुरानी फर्म के निकासी पर कोई रोक नहीं होती है। एकाधिकारक प्रतियोगिता में प्रवेश की स्वतंत्रता केवल   निकट स्थानापन्न पदार्थ उत्पादित करने के भाव में होती है।

20.3.2.5 विक्रय लागतें

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के विपरीत एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्में अपने उत्पाद के विज्ञापन तथा अन्य बिक्री प्रोत्साहन योजनाओं पर भारी व्यय करती है। चैम्बरलिन ने पहली बार फर्म के सिद्धान्त में विक्रय लागतों की संकल्पना प्रस्तुत की। विक्रय लागतों का अर्थ है विज्ञापनों तथा अन्य विक्रय गति विधियों में हुआ व्यय। इसके द्वारा ही फर्म अपनी उत्पादित वस्तु को अन्य फर्मों को उत्पादित वस्तुओं से अलग दिखाने का प्रयास करती है। इससे फर्म का मांग वक्र

ऊपर की ओर विवर्तित हो जाएगा और इसकी लोच में भी कमी आएगी-क्योंकि विज्ञापन तथा अन्य बिक्री प्रोत्साहन गति विधियों से उस वस्तु के प्रति उपभोक्ताओं के अधिमान में मजबूती आएगी।

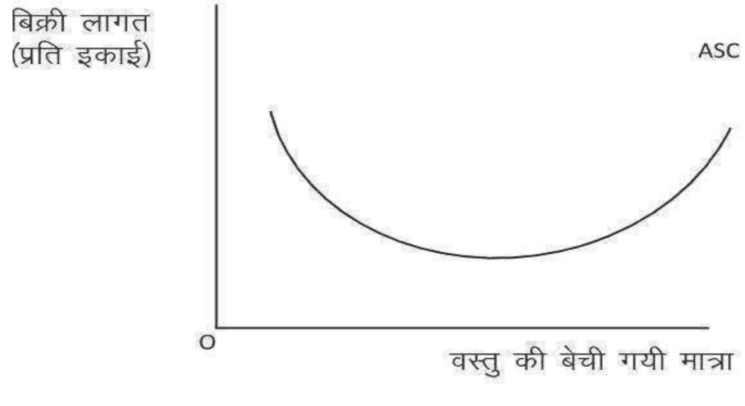

औसत बिक्री लागत वक्र

चित्र 20.3

चैम्बरलिन अपने मॉडल में परम्परागत U—आकार के लागत वक्रों – AC, AVC और MC की तरह औसत बिक्री लागत वक्र (ASC) को भी U—आकार का मान लेते हैं। उत्पादन तथा कीमत के अधिकतम लाभ के स्तर को निर्धारित करने में ASC वक्र को AC वक्र में जोड़ दिया जाता है।

20.3.2.6 उद्योगतथा 'उत्पाद समूह' की संकल्पना

पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत उद्योग का अर्थ है समांग वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्मों का समूह। यहां प्रत्येक फर्म के मांग वक्र को जोड़कर उद्योग की बाजार मांग को ज्ञात किया जा सकता है। परन्तु एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्में असमांग वस्तुओं का उत्पादन करती हैं, इसलिए यहां उद्योग की संकल्पना प्रयोग में नहीं लायी जा सकती। चूँकि प्रत्येक फर्म विभेदीकृत वस्तु का उत्पादन करती है इसलिए बाजार मांग एवं आपूर्ति वक्र प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत वस्तुओं की मांग को नहीं जोड़ा जा सकता।

प्रो0 चैम्बरलिन 'वस्तु समूह' की संकल्पना का प्रयोग करते हैं, जो ऐसी फर्मों का समूह है जो कि निकट स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन करती हैं। समूह द्वारा उत्पादित वस्तुएं परस्पर निकट की तकनीकी तथा आर्थिक स्थानापन्न होनी चाहिए। यदि दो वस्तुएं तकनीकी रूप से एक ही आवश्यकता की संतुष्टि करती हैं तो वे तकनीकी रूप से एक दूसरे की स्थानापन्न होंगी। जैसे सभी कारे तकनीकी रूप से स्थानापन्न हैं। यदि दो वस्तुएं एक ही आवश्यकता की संतुष्टि कर रही हों और दोनों की कीमतें भी लगभग समान हों तो वे आर्थिक स्थानापन्न होंगी। उदाहरण के तौर पर, आल्टो,

स्पार्क तथा सैन्ट्रो को एक दूसरे की आर्थिक स्थानापन्न कहा जा सकता है परन्तु टाटा नैनो और फोर्ड फिएस्टा को नहीं।

अभ्यास प्रश्न-1

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

(i) एकाधिकारिक प्रतियोगिता से क्या अभिप्राय है?

(ii) वस्तु विभेदीकरण क्या होता है?

2. बहुविकल्पीय प्रश्न

(i) विक्रय लागतों की धारणा का विकास किसने किया?

(क) मार्शल (ख) चैम्बरलिन

(ग) जोन राबिन्सन (घ) केन्स

(ii) निम्न में से विक्रय लागत क्या है?

(क) पैकिंग (ख) परिवहन व्यय

(ग) विज्ञापन पर व्यय (घ) मजदूरी पर व्यय

(iii) एकाधिकारिक प्रतियोगिता में

(क) विभेदीकृत वस्तुएं बेचने वाली कुछ फर्में होती हैं।

(ख) समांग वस्तुएं बेचने वाली अनेक फर्में होती हैं।

(ग) समांग वस्तुएं बेचने वाली कुछ फर्में होती हैं।

(घ) विभेदीकृत उत्पाद बेचने वाली अनेक फर्में होती हैं।

20.4 एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का संतुलन

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में व्यक्तिगत फर्म का बाजार समूह की अन्य फर्मों से कुछ सीमा तक पृथक होता है। इसलिए उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग उसके द्वारा निश्चित कीमत, वस्तु की किस्म तथा उसके द्वारा किए गए विज्ञापन व्यय पर निर्भर करती है।

परन्तु हम एक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की एक विशेष किस्म को मानकर और विज्ञापन पर फर्म द्वारा किए गए व्यय को स्थिर मानकर केवल कीमत तथा उत्पादन मात्रा के विषय में ही फर्म के संतुलन की व्याख्या अल्पकाल तथा दीर्घकाल में करेंगे।

20.4.1 अल्पकाल में फर्म का संतुलन

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में एक व्यक्तिगत फर्म का मांग वक्र, बाजार में उसके द्वारा उत्पादित वस्तु के कई निकट में स्थानापन्न होने के कारण अधिक मूल्य सापेक्ष या लोचदार होता है। इस प्रकार फर्म का अपने वस्तु की किस्म पर एकाधिकारिक नियंत्रण बाजार में उपलब्ध स्थानापन्न वस्तुओं की मात्रा द्वारा सीमित होता है। यदि स्थानापन्न वस्तुओं की किस्म और उसकी कीमतों को स्थिर मान लिया जाए तो एक फर्म के वस्तु का एक निश्चित मांग वक्र होगा।

एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत उपरोक्त विशेषताओं तथा मान्यताओं के दिए होने पर, प्रत्येक फर्म ऐसी कीमत तथा उत्पादन निश्चित करती है, अर्थात् वहां संतुलन में होती है, जहां उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। फर्म का लाभ वहां अधिकतम होगा जहां उसकी सीमांत लागत (MC) सीमान्त आय (MR) के बराबर होती है।

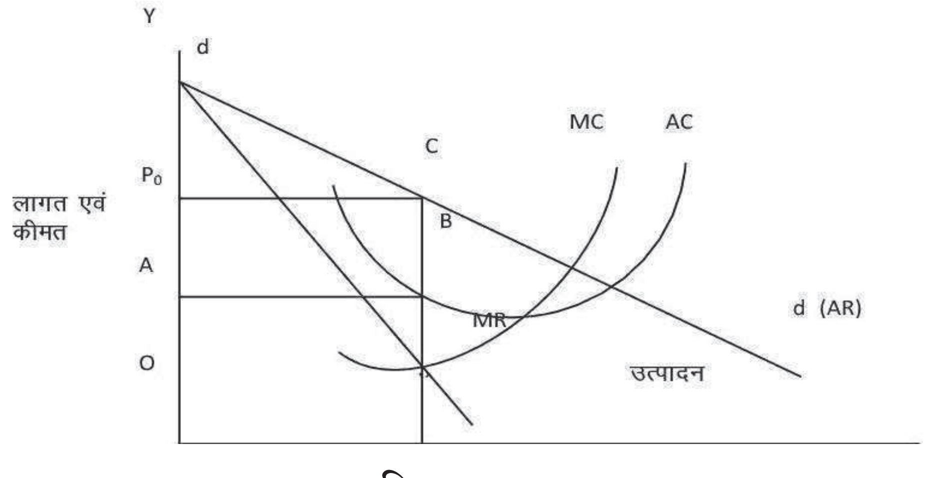

चित्र 20.4

चित्र 20.4, 20.5 तथा 20.6 में एक व्यक्तिगत फर्म का अल्पकालीन संतुलन दर्शाया गया है। फर्म का व्यक्तिगत मांग वक्र dd है जो कि उसका औसत आय वक्र भी है। MR तथा MC के संतुलन के अनुरूप फर्म P_0 कीमत तथा X_0 उत्पादन निर्धारित करती है। चित्र 20.4 में संतुलन की स्थिति में फर्म P_0ABC क्षेत्रफल के बराबर असामान्य लाभ अर्जित कर रही है।

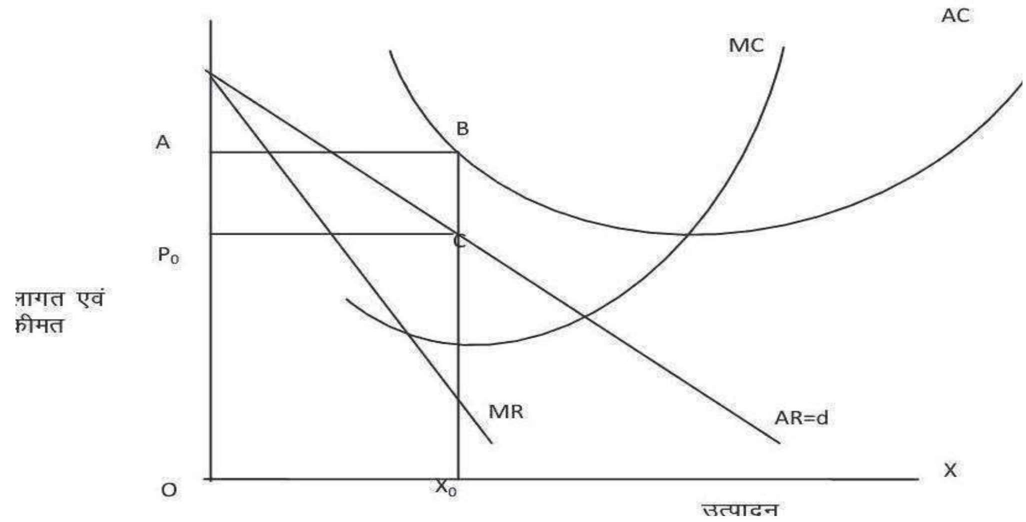

चित्र-20.5

अल्पकाल में फर्म हानि भी उठा सकती है, यदि औसत लागत वक्र (AC) वक्र मांग वक्र से ऊपर हो। चित्र 20.5 में फर्म की कुल हानि P_0ABC के बराबर है। अल्पकाल में फर्म केवल सामान्य लाभ भी प्राप्त कर सकती है यदि मांग वक्र औसत लागत वक्र (AC) को स्पर्श करता हो। चित्र 20.5 में dd वक्र B बिन्दु पर AC वक्र को स्पर्श कर रहा है तथा फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है। इस प्रकार फर्म के लाभ या हानि की स्थिति वस्तु के मांग वक्र तथा लागत वक्र की स्थिति पर निर्भर करती है।

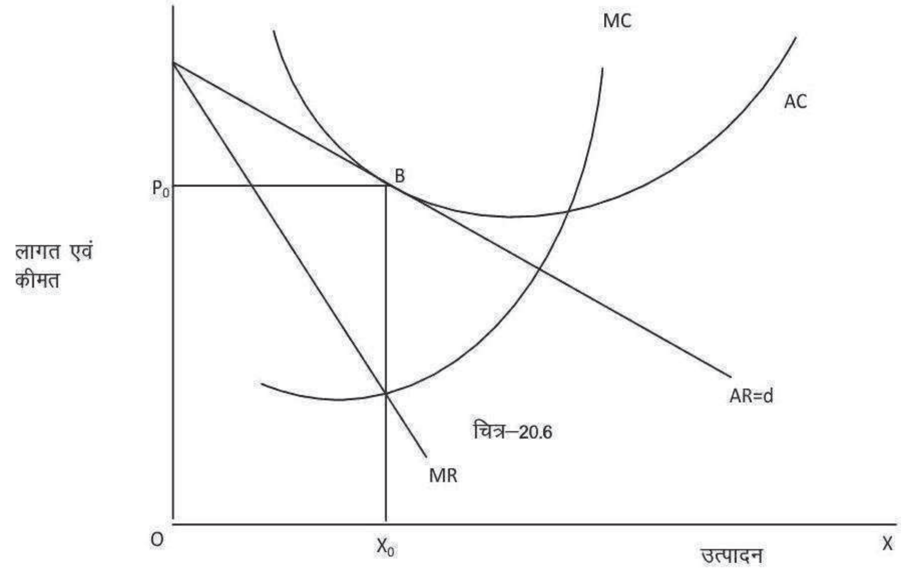

चित्र-20.6

20.4.2 दीर्घकाल में फर्म का संतुलन तथा समूह संतुलन

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म तथा उद्योग के संतुलन की व्याख्या के लिए चेम्बरलिन यह 'साहसपूर्ण मान्यता' मानकर चलते हैं कि समूह की सभी फर्मों तथा सभी वस्तुओं में लागत तथा मांग वक्र समान हैं। इसे 'समता की मान्यता' कहा जाता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण मान्यता 'समरूपता की मान्यता' है, जिसके अनुसार फर्मों की संख्या अधिक होने के कारण किसी एक फर्म द्वारा कीमत तथा उत्पादन में परिवर्तन का प्रभाव समूह की अन्य प्रतियोगी फर्मों पर नगण्य होगा।

उपरोक्त मान्यताओं के दिए हुए होने पर चैम्बरलिन तीन भिन्न स्थितियों में समूह संतुलन ;जब उद्योग में फर्मों की संख्या अधिक होद्ध की व्याख्या करते हैं -

(i) जब उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश की अनुमति हो।

(ii) जब उद्योग में फर्मों का प्रवेश तथा निकासी वर्जित हो और कीमत प्रतियोगिता द्वारा दीर्घकालीन संतुलन प्राप्त हो।

(iii) जब उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश तथा कीमत प्रतियोगिता दोनों हों।

i. जब उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश की अनुमति हो-इस मॉडल में यह मान लिया गया है कि अल्पकाल में समूह की फर्में असामान्य लाभ अर्जित कर रही हैं। समूह की वर्तमान फर्मों द्वारा असामान्य लाभों से आकर्षित होकर अन्य फर्में समूह में प्रवेश करना चाहेंगी। नयी फर्मों के प्रवेश से मांग वक्र बायीं ओर विवर्तित हो जाएगा, क्योंकि बाजार मांग अधिक फर्मों में विभाजित होगी। चित्र 20.7 में LACतथा LMC फर्म के औसत लागत वक्र तथा सीमान्त लागत वक्र हैं जबकि मांग वक्र dd है MR और MC के कटान बिन्दु के अनुसार संतुलित कीमत OP0 निर्धारित होती है।

चित्र 20.7 में बिन्दु C पर फर्में, संतुलन में हैं और असामान्य लाभ अर्जित कर रही हैं परन्तु कीमत में परिवर्तन करने का कोई लाभ उन्हें नहीं है। असामान्य लाभों के कारण उस समूह में नयी फर्में आकृष्ट होंगी। फलस्वरूप मांग वक्र नीचे की ओर विवर्तित हो जाएगा क्योंकि वस्तु की मांग पहले से अधिक फर्मों में विभाजित हो जाएगी। यह मानते हुए कि औसत लागत वक्र में परिवर्तन नहीं होगा, मांग वक्र (dd) में बायीं ओर प्रत्येक विवर्तन से कीमत में समायोजन होता है और फर्म नयी संतुलन स्थिति में पहुँच जाती है, जहां कि नयी सीमान्त आय (विवर्तित MR वक्र पर) सीमान्त लागत के बराबर है। नयी फर्मों के प्रवेश की प्रक्रिया तथा फलस्वरूप मांग वक्र का बायीं ओर विवर्तन तब तक जारी रहता है जब तक वह औसत लागत वक्र को स्पर्श नहीं करने लगता है और असामान्य लाभ पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाता है। अंतिम रूप में फर्म मांग वक्र D_0D_0 के बिन्दु E पर संतुलन में होगी जबकि संतुलित कीमत P_1 होगी, तथा उत्पादन X_1।

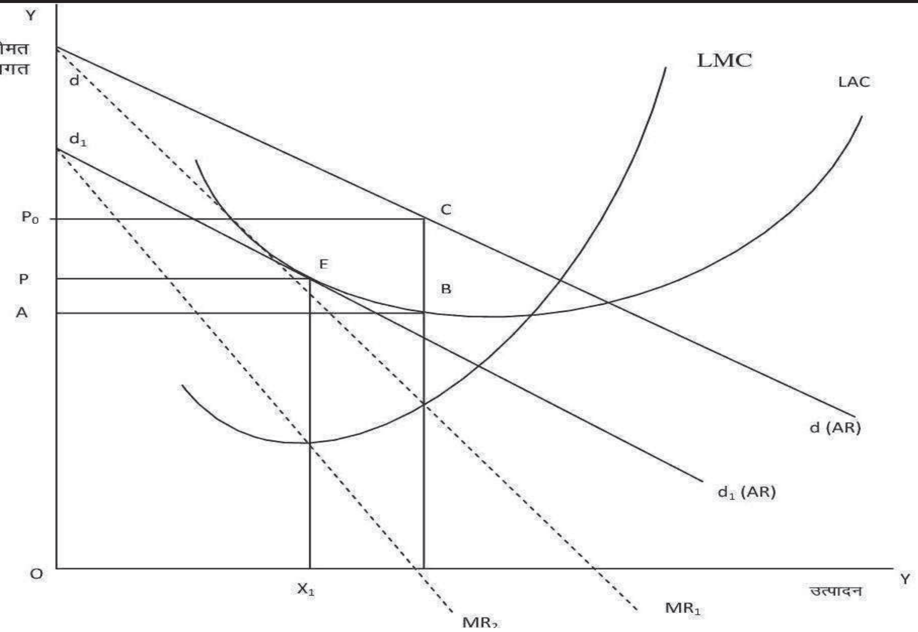

चित्र 20.7

इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का दीर्घकालीन संतुलन अथवा समूह संतुलन वहां होता हैं, जहां:-

MR = MC तथा

AR = LAC

स्पष्ट है कि संतुलन की स्थिति में सभी फर्में सामान्य लाभ ही प्राप्त करेंगी। इसलिए उद्योगया समूह में नयी फर्मों का प्रवेश नहीं होगा। यह स्थिर संतुलन है क्योंकि कोई भी फर्म कीमत घटाने या बढ़ाने की दशा में हानि की स्थिति में होगी।दीर्घकाल में फर्मों की संख्या में वृद्धि होने से फर्मों के दीर्घकालीन मांग वक्र अधिक लोचदार होंगे।

यहां यह उल्लेखनीय है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में अप्रयुक्त उत्पादन क्षमता बनी रहेगी क्योंकि संतुलन की स्थिति में दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) के न्यूनतम बिन्दु पर नहीं होती है।

चित्र 20.7 में फर्म दीर्घकालीन औसत लागत वक्र ;स्।ब्द्ध के गिरते हुए भाग पर कार्य कर रही है, अर्थात उस अनुकूलतम मात्रा का उत्पादन नहीं करती है जिस पर LAC न्यूनतम हो। फर्म का वास्तविक दीर्घकालीन उत्पादन (OX_1) तथा सामाजिक दृष्टि से अनुमूल्तम उत्पादन (OX_0) का अन्तर उसकी 'आधिक्य क्षमता' की माप (X_1X_0) है।

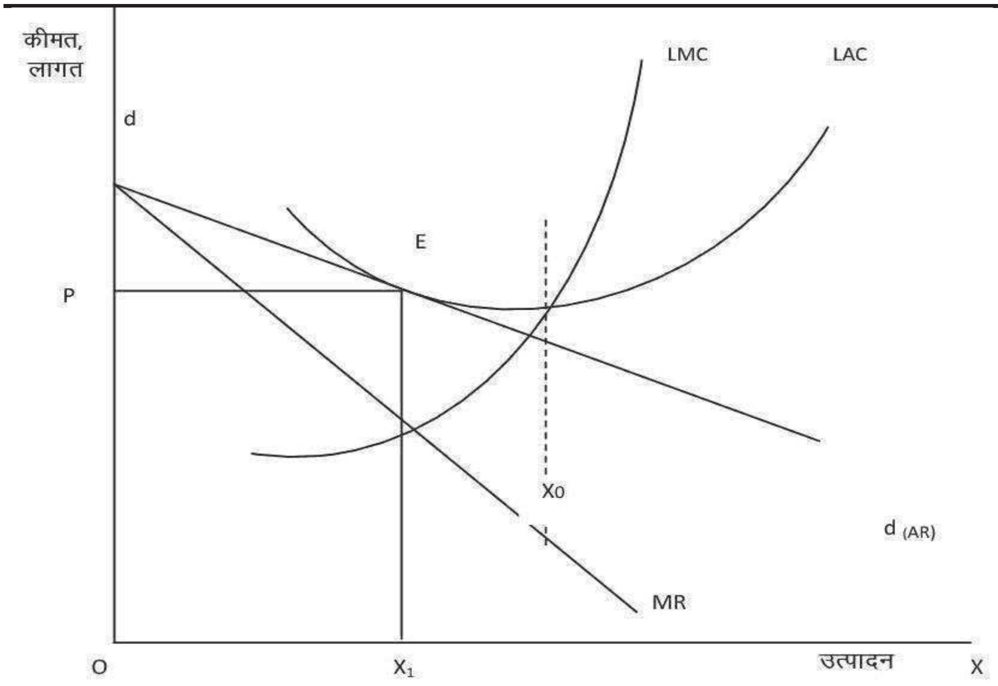

चित्र-20.8

ii. कीमत प्रतियोगिता के साथ संतुलन

यह मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि -

1-समूह में फर्मों की संख्या अनुकूलतम है इसलिए नयी फर्मों का प्रवेश तथा निकासी बंद है तथा

2-अल्पकाल में उद्योग में कीमत संतुलन कीमत की अपेक्षा ऊँची है जिससे फर्में असामान्य लाभ प्राप्त कर रही है।

प्रत्येक फर्म यह सोचती है कि वह कीमत में कमी करके अपने बाजार हिस्से में वृद्धि कर सकती है और समूह की अन्य फर्में ऐसा नहीं करेंगी।

इस मॉडल में व्यक्तिगत फर्म की आत्मगत या अनुभूत मांग वक्र (dpdp) तथा आनुपातिक मांग वक्र (dd) दोनों का प्रयोग किया गया है। dd वक्र एक तरह से वास्तविक बिक्री वक्र है जो कि प्रत्येक फर्म के बाजार हिस्से को बताता है। फर्म द्वारा कीमत में किसी भी प्रकार के परिवर्तन का फर्म के बिक्री पर कितना प्रभाव पड़ेगा यह dd वक्र से जाना जा सकता है। अल्पकाल में असामान्य लाभ के कारण, प्रत्येक फर्म अपनी आत्मगत मांग वक्र (dpdp) के अनुरूप अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए अपनी कीमत में कमी करेगी, यह मानकर कि अन्य फर्में अपनी कीमत स्थिर रखेंगी। उद्योग समूह की सभी फर्में अपने लाभ को बढ़ाने के लिए स्वतंत्र रूप से dpdp के अनुरूप उतनी ही समान

मात्रा में कीमत में कमी करती हैं। चूंकि सभी फर्में एक साथ समान रूप से कीमत कम करने को प्रवृत्त होती हैं इसीलिए वस्तुतः dd वक्र के अनुसार उनके बाजार हिस्से का निर्धारण होता है और प्रत्येक फर्म का बाजार हिस्सा स्थिर बना रहता है।

चित्र 20.9 में प्रारम्भ में फर्म असंतुलन की स्थिति में है, जबकि कीमत Po तथा मात्रा Xo है। अपने लाभ को अधिकतम करने के प्रयास में फर्म कीमत को कम करके P_1 कर देती हैं, इस आशा में कि आत्मगत मांग वक्र dpdp के अनुरूप बिक्री बढ़कर Xo हो जाएगी। चूंकि उद्योग की सभी फर्में

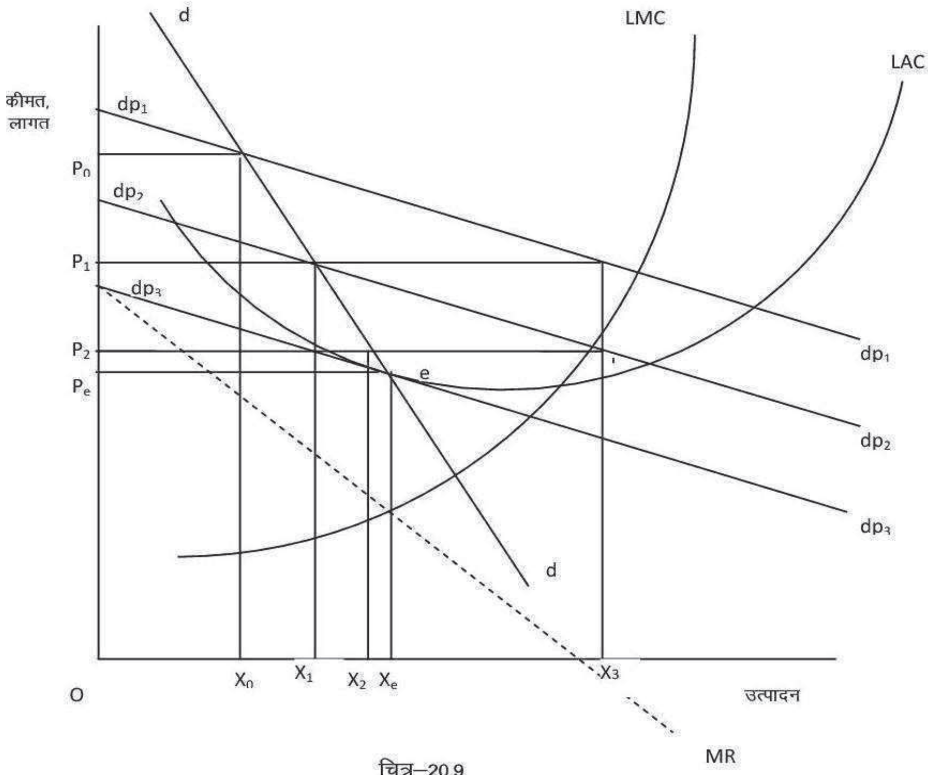

चित्र–20.9

समान मांग व लागत वक्रका सामना करती हैं। इसलिए सभी फर्में एक साथ, अपने लाभ को बढ़ाने के लिए कीमत में कमी करेंगी, यह मानते हुए कि समूह की अन्य सभी फर्मो की मांग पर इसका असर नगण्य होगा और वे कीमत परिवर्तन नहीं करेंगी। इस प्रकार, सभी फर्में, अपनी कीमत को कम करके P_1 कर देंगी। परिणामस्वरूप dp , dp वक्र नीचे की ओर विवर्तित हो जाएगा (dp_2dp_2) और फर्म X_3 की जगह X_1 मात्रा dd के अनुरूप ही बेच पाएगी। यह मानते हुए फर्में अपने पिछले अनुभव से कुछ भी सबक नहीं लेती हैं, फिर से स्वतंत्र रूप से, कीमत में कमी करेंगी, जिससे उनका लाभ बढ़ सके। लेकिन चूंकि सभी फर्में ऐसा ही एक साथ करती हैं इसलिए बिक्री में वृद्धि dp_2 dp_2 वक्र के अनुरूप (X3) न होकर dd वक्र के अनुरूप X_2 होती है।

फर्मों द्वारा कीमत कम करने की प्रक्रिया तब रुकेगी जब dpdp वक्र नीचे की ओर विवर्तित होते हुए LAC वक्र को स्पर्श करने लगे। इस प्रकार संतुलन ब बिन्दु पर होगा जहां dp_3dp_3 वक्र, LAC वक्र को स्पर्श करता है तथा dd वक्र को काटता है। संतुलन कीमत pe तथा मात्रा Xe है। समूह की फर्मों द्वारा Pe से नीचे कीमत कम करने के लिए कोई प्रयास नहीं होगा क्योंकि तब फर्मों की औसत लागत कीमत से अधिक हो जाएगी।

इस प्रकार, जब उद्योग समूह में फर्मों की आवाजाही न हो और दीर्घकाल में संतुलन कीमत समायोजन के द्वारा होता है, तो स्थायी संतुलन की दशाएं निम्नलिखित होंगी -

i. फर्म का व्यक्तिगत मांग वक्र (dpdp) दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) को स्पर्श करता हो,
ii. स्पर्श बिन्दु पर dd वक्र dpdp तथा LAC को काटती हो।

3-फर्मों के स्वतंत्र प्रवेश तथा कीमत प्रतियोगिता के साथ संतुलन-

चैम्बरलिन के अनुसार ‘‘वास्तविक जगत में समूह में विद्यमान फर्मों द्वारा आपस में कीमत प्रतियोगिता तथा नयी फर्मों के प्रवेश, दोनों के द्वारा संतुलन होता है। कीमत समायोजन dpdp वक्र के साथ होगा जबकि फर्मों के प्रवेश या निकास से dd वक्र विवर्तित हो जाएगा।

चित्र 20.7 में, मान लिया अल्पमात्रा में फर्में e_1 बिन्दु पर संतुलन में हैं, जहां वे असामान्य लाभ अर्जित कर रही हैं। इसलिए उद्योग में नयी फर्में आने को आकर्षित होंगी, जब तक सभी फर्में सामान्य लाभ अर्जित न करने लगें। नयी फर्मों के आने से मांग वक्र dd तब तक विवर्तित होगा जब तक कि दीर्घकालिक औसत लागत वक्र LACको स्पर्श न करने लगे। इस प्रकार संतुलन e_2 बिन्दु पर होगा जहां विवर्तित अनुपातिक मांग वक्र d_3d_3, LACको स्पर्श कर रहा है। संतुलन कीमत P_1 तथा उत्पादन X_1 है।

यद्यपि सभी फर्में e_2 बिन्दु पर सामान्य लाभ अर्जित कर रही हैं परन्तु यह दीर्घकालिक संतुलन बिन्दु नहीं है। क्योंकि सभी फर्में अपने व्यक्तिगत या अनुभूत मांग वक्र (dpdp)के अनुसार व्यवहार करेंगी और प्रत्येक फर्म dpdp वक्र के अनुरूप कीमत में कमी करके उत्पादन या बिक्री बढ़ाकर अपने लाभ को बढ़ाने की कोशिश करेंगी, यह मानते हुए कि समूह की अन्य फर्में ऐसा नहीं करेंगी। चूंकि सभी फर्में स्वतंत्र रूप से एक साथ, एक ही मात्रा में कीमत में कमी करती हैं इसलिए उत्पादन में वास्तविक वृद्धि dd वक्र के अनुरूप होती है। चित्र 20.10 में फर्म कीमत P_1 से कम करके P_2 कर देती हैं तो वास्तविक उत्पादन, d_3d_3 वक्र के अनुरूप X_2 है, क्योंकि सभी फर्में एक ही प्रेरणा से संचालित होते हुए, कीमत कम देती हैं। फलस्वरूप P_2 कीमत पर उद्योग की सभी फर्मों को हानि P_2RAB के बराबर हानि होने लगती है।

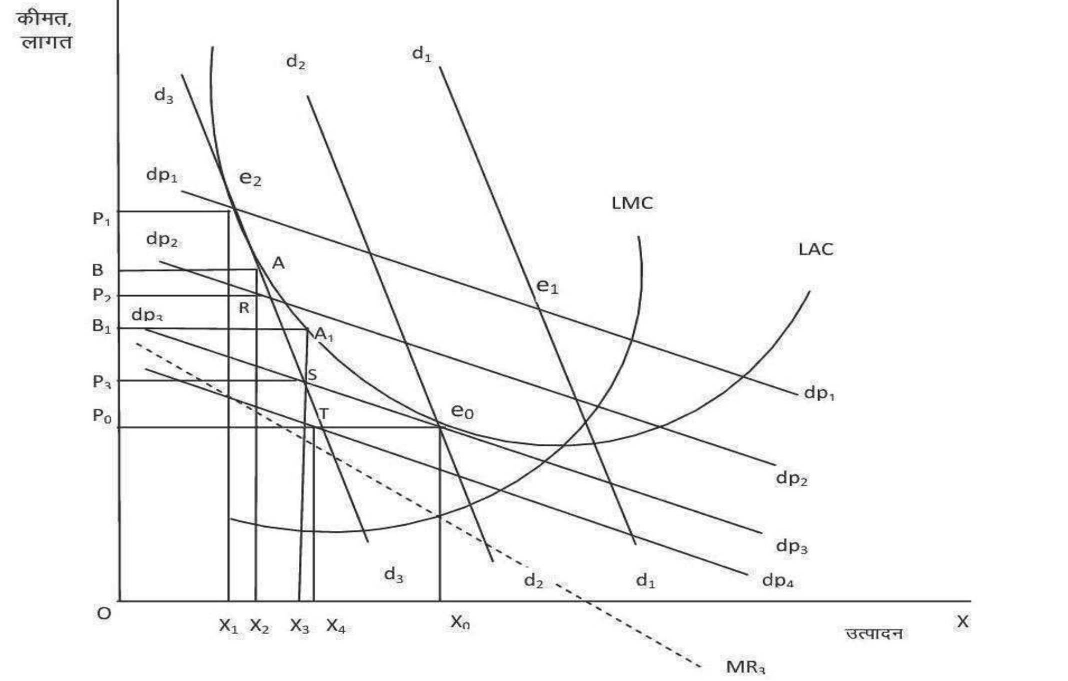

चित्र–20.10

फर्में अपने पिछले अनुभवों से सबक न लेते हुए पुनः व्यक्तिगत मांग वक्र dpdp के अनुरूप व्यवहार करेंगी, और कीमत में कमी करके अपनी उत्पादन तथा लाभ बढ़ाने का प्रयास करेंगी, जब तक dpdp वक्र, LAC वक्र से ऊपर है। चूंकि सभी फर्में एक तरह से सोचती तथा व्यवहार करती हैं इसलिए dpdp वक्र नीचे की ओर dd वक्र के अनुरूप विवर्तित हो जाएगा और उत्पादन में वास्तविक वृद्धि d_3d_3 मांग वक्र के अनुरूप होगी। जब सभी फर्में कीमत कम करके P_3 कर देती हैं तो व्यक्तिगत मांग वक्र विवर्तित होकर dp_3dp_3 हो जाता है और उत्पादन X3 हो जाता है। P_3 कीमत पर प्रत्येक फर्म की हानि बढ़कर $P_3SA_1B_1$ के बराबर हो जाती है। यद्यपि dp_3dp_3 वक्र LACवक्र को स्पर्श कर रहा है परन्तु प्रत्येक फर्म का वास्तविक उत्पदन d_3d_3 मांग वक्र के अनुरूप X_2 ही है।

फर्म पुनः कीमत को Po कम करके, अपने उत्पदन को X_0 करना चाहेगी, जिससे उसकी हानि समाप्त हो सके। परन्तु चूँकि प्रत्येक फर्म कीमत कम करेगी इसलिए प्रत्येक फर्म का वास्तविक उत्पदन d_3d_3 के अनुरूप X_4 होगा, और व्यक्तिगत मांग वक्र विवर्तित होकर dp_4dp_4 हो जाएगा, जोकि LACसे नीचे स्थित है। फलस्वरूप सभी फर्मो की हानि में और वृद्धि हो जाएगी, साथ ही कीमत कम करके लाभ बढ़ा सकने की सम्भावना भी समाप्त हो जाएगी।

अत्यधिक हानि के कारण पहले वित्तीय रूप से कमजोर फर्में उद्योग को छोड़कर जाना शुरु कर देंगी जिससे dd मांग वक्र dpdp वक्र के साथ ऊपर की ओर विवर्तित होगा। हानि के कारण कमजोर फर्में तब तक उद्योग को छोड़ती रहेंगी तब तक कि dpdp मांग वक्र LACवक्र को स्पर्श न करने

Yगे, तथा आनुपातिक मांग वक्र dd, स्पर्श बिन्दु पर dpdp वक्र को काटे। इस प्रकार संतुलन बिन्दु मव पर होगा जहां dp_3dp_3 वक्र LACको स्पर्श करता है तथा d_2d_2 वक्र स्पर्श बिन्दु पर काटता है। यह स्थायी संतुलन होगा। संतुलन कीमत च्व तथा प्रत्येक फर्म का बाजार में हिस्सा ग्व के बराबर होगा।

20.5 चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त की आलोचना

कीमत सिद्धान्त में चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धान्त का योग दान महत्वपूर्ण होते हुए भी इस सिद्धान्त की अनेक अर्थशास्त्रियों ने काफी आलोचना की।

1. प्रो0 स्टिगलर तथा राबर्ट ट्रिफिन ने 'समूह' की धारणा की आलोचना की तथा इसे एक भ्रामक धारणा बताया। जब वस्तु विभेदीकरण होता है तो प्रत्येक फर्म स्वयं एक उद्योग होती है। असमांग वस्तुओं की मांग व आपूर्ति के आधार पर उद्योग का मांग व पूर्ति वक्र प्राप्त करना संभव नहीं है।

2. एक वस्तु के सभी उत्पादकों द्वारा उत्पादित किस्मों के सम्बन्ध में लागत तथा मांग वक्रों को समान मान लेना उचित नहीं है। विभेदीकृत वस्तुओं की स्थिति में प्रत्येक वस्तु के लिए मांग वक्र तथा उत्पादन लागत भिन्न-भिन्न होती है। इस प्रकार एकरूपता की मान्यता अवास्तविक है।

3. स्टिगलर और कैल्डर ने समता की मान्यता की भी आलोचना की। विभेदीकृत वस्तुओं, जो कि एक दूसरे की निकट स्थानापन्न है, की स्थिति में फर्में अपनी प्रतियोगी फर्मों के निर्णयों को लेकर अत्यधिक सतर्क रहती हैं। यह मानना गलत है कि किसी एक फर्म द्वारा उत्पादन तथा मूल्य में परिवर्तन का प्रभाव समान रूप से सभी फर्मों के ऊपर पड़ जायेगा।

4. चैम्बरलिन के अनुसार असामान्य लाभ से आकृष्ट होकर जब नयी फर्में समूह में प्रवेश करेंगी और फलस्वरूप समूह में फर्मों की संख्या बढ़ेगी तो फर्मों के मांग वक्र की लोच नहीं बढ़ेगी। परन्तु राबिन्सन तथा काल्डर का मत है कि चैम्बरलिन की यह धारणा गलत है, क्योंकि समूह में नयी फर्मों के प्रवेश करने तथा उनकी संख्या बढ़ने पर बाजार की अपूर्णता का अंश कम होता जायेगा और उनका मांग वक्र अधिक लोचदार होता जायेगा।

5. अनेक विद्वानों का यह मत है कि पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की तरह एकाधिकारिक प्रतियोगिता के मॉडल के आधार पर भी उपयोगी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। इस सम्बन्ध में अल्पाधिकार के मॉडल कहीं अधिक उपयोगी हैं और फिर वास्तविक जगत में ऐसा उदाहरण पाना कठिन है जहां चैम्बरलिन की एकाधिकारिक प्रतियोगिता का मॉडल प्रासंगिक हो।

इन आलोचनाओं के बावजूद चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त का कीमत सिद्धान्त में योग दान काफी महत्वपूर्ण है। वस्तु विभेद, विक्रय कीमतें इत्यादि संकल्पनाओं को अपने सिद्धान्त में सम्मिलित कर चैम्बरलिन कीमत सिद्धान्त को वास्तविकता के अधिक निकट ले आए।

अभ्यास प्रश्न-2

लघु उत्तरीय प्रश्न

i. चैम्बरलिन की 'साहसिक मान्यताएं क्या हैं?
ii. एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म में दीर्घकालीन संतुलन की शर्तें क्या हैं?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. प्रो0 चैम्बरलिन के 'वस्तु समूह' की संकल्पना सत्य होगी:-

   (क) नहाने के साबुन की अनेक किस्मों में।

   (ख) नहाने तथा कपड़ा धोने के साबुन में।

   (ग) साबुन तथा टूथपेस्ट में।

   (घ) इनमें से कोई नहीं।

2. एकाधिकारिक प्रतियोगिता में 'अतिरिक्त क्षमता' का कारण है:-

   (क) फर्मों द्वारा न्यूनतम औसत लागत से ऊँचे स्तर पर उत्पादन करना।

   (ख) फर्मों द्वारा न्यूनतम औसत लागत में से नीचे के स्तर पर उत्पादन करना।

   (ग) फर्मों द्वारा न्यूनतम औसत लागत के बराबर स्तर पर उत्पादन करना।

   (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं।

20.6 एकाधिकारिक प्रतियोगिता तथा पूर्ण प्रतियोगिता में तुलना

चैम्बरलिन द्वारा दिया गया एकाधिकारिक प्रतियोगिता का सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता के अधिक निकट है। दोनों ही बाजार स्थितियों में,

(क) फर्मों की संख्या अधिक होती है,

(ख) फर्में एक दूसरे से प्रतियोगिता करती हैं,

(ग) सीमान्त लागत (MC) तथा सीमान्त आय (MR) की समानता के बिन्दु पर संतुलन स्थापित होता है,

(घ) फर्मों के प्रवेश तथा निकासी की स्वतंत्रता होती है,

(च) अल्पकाल में फर्में असामान्य लाभ या हानि उठा सकती हैं,

(छ) फर्में दीर्घकाल में सामान्य लाभ अर्जित करती हैं।

परन्तु इन दोनों प्रकार के बाजारों के बीच महत्वपूर्ण अन्तर है: -

1-पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों की संख्या इतनी अधिक होती है कि एक व्यक्तिगत फर्म का उसके उत्पाद की कीमत पर कोई नियंत्रण नहीं होता है। कीमत बाजार द्वारा निर्धारित की जाती है और फर्म के लिए वह दी हुई होती है, फर्म कीमत में परिवर्तन नहीं कर सकती। एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्मों की संख्या केवल इतनी अधिक होती है कि एक व्यक्तिगत फर्म अपने वस्तु की कीमत परिवर्तन की क्षमता रखती है। फर्म अपनी उत्पादित वस्तु की कीमत बढ़ा सकती है और फिर भी उसके कुछ क्रेता बचे रह सकते हैं और यदि फर्म कीमत में कमी लाती है तो अपने प्रतिद्वंदी फर्मों के बाजार के कुछ हिस्से पर कब्जा कर सकती है।

2-पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादित वस्तुएं समांग और एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न होती हैं। जबकि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्में विभेदीकृत वस्तुओं का उत्पादन करती हैं जो कि एक दूसरे के निकट का स्थानापन्न होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक फर्म का अपने वस्तु पर एकाधिकार होता है परन्तु उसे दूसरी फर्मों के निकट स्थानापन्न वस्तुओं से प्रतियोगिता करनी होती है।

3-पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत समांग वस्तु के कारण, वस्तुतः फर्मों में कोई प्रतियोगिता नहीं होती। प्रत्येक फर्म क्षैतिज मांग वक्र का सामना करती है और दी हुई कीमत पर बिना किसी दूसरी फर्म के बाजार हिस्से को प्रभावित किए, कोई भी मात्रा बेच सकती है।

इसके विपरीत एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्में नीचे की ओर गिरते हुए मांग वक्र का सामना करती हैं और फर्मों में प्रतियोगिता होती है। यह प्रतियोगिता कीमत या फिर गैर कीमत भी हो सकती है। यहां गैर कीमत प्रतियोगिता अधिक महत्वपूर्ण है, जिसमें फर्में विज्ञापन तथा अन्य विक्रय बढ़ाने वाली गति विधियों का सहारा लेती हैं।

4-यद्यपि दोनों बाजार स्थितियों की संतुलन स्थितियां एक जैसी हैं तथा दीर्घकाल में सामान्य लाभ ही प्राप्त करती हैं, परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में संतुलन की स्थिति में सीमान्त लागत MC = सीमान्त आय MR त्र औसत लागत AC = कीमत P होगी। एकाधिकारिक प्रतियोगिता में दीर्घकालीन संतुलन की स्थिति में MC = MR तथा P = AC होगी। परन्तु कीमत, औसत लागत से अधिक होगी, क्योंकि फर्में गिरते हुए मांग वक्र का सामना करती हैं। इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता में कीमत पूर्ण प्रतियोगिता से अधिक तथा उत्पादन पूर्ण प्रतियोगिता से कम होगा।

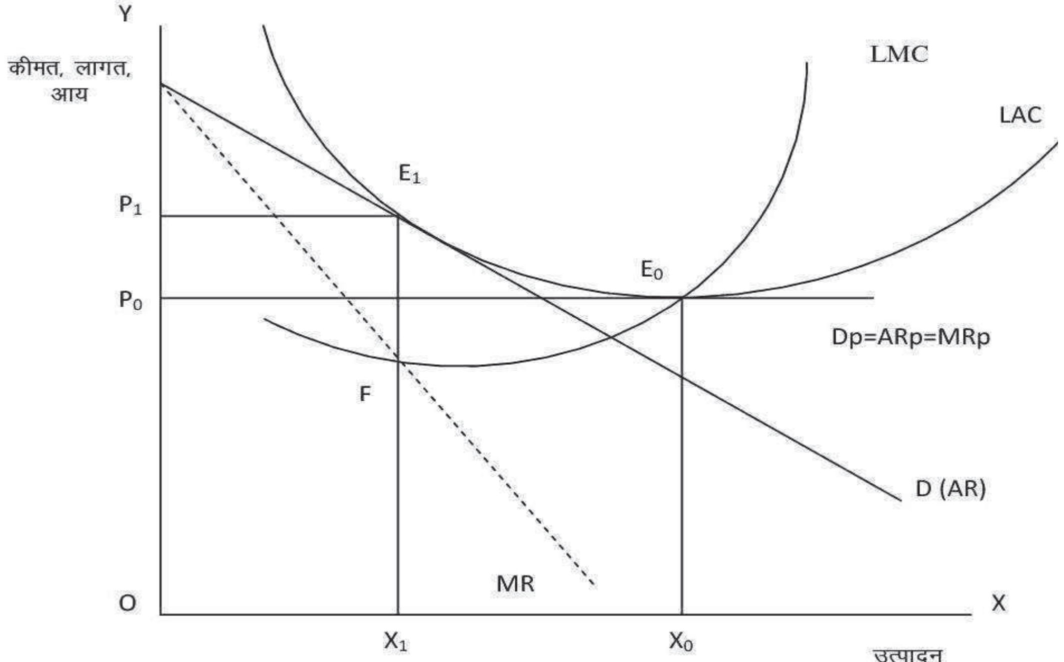

चित्र–20.11

चित्र 20.6 में पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत मांग वक्र को Dp से दिखाया गया है, जिसके E_0 बिन्दु पर संतुलन है जहां MR=MC=LAC

एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत मांग वक्र DD है जो कि दीर्घकालिक औसत लागत वक्र से E_1 पर स्पर्श करता है। संतुलन की स्थिति में कीमत P_1 जो पूर्ण प्रतियोगी कीमत P_0 से अधिक है, जबकि उत्पादन X_1 है जो कि पूर्ण प्रतियोगी उत्पादन X_0 से कम है।

5-पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादन प्लांट के अनुकूलतम स्तर या न्यूनतम लागत पर हो रहा है। चित्र में E_0 बिन्दु औसत लागत के न्यूनतम स्तर को बताता है जबकि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में उत्पादन अनुकूलतम बिन्दु E_0 से बायीं ओर E_1 पर हो रहा है। उत्पादन लागत पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा अधिक है और संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग नहीं हो रहा है। इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता में 'अधिक्य क्षमता' पायी जाती है। चित्र में X_0 X_1 'अधिक्य क्षमता' को दर्शाता है जो कि पूर्ण प्रतियोगी उत्पादन तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता के उत्पादन का अन्तर है।

20.7 सारांश

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में एकाधिकार तथा प्रतियोगिता दोनों का समिश्रण होता है जिसमें बड़ी संख्या में फर्में या विक्रेता विभेदीकृत वस्तुओं, जो कि एक दूसरे की निकट स्थानापन्न होती हैं, का उत्पादन या विक्रय करते हैं। इस बाजार स्थिति में फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु का मांग वक्र की ढाल बाये से दायें ओर नीचे की ओर होती है। वस्तु विभेद के कारण फर्में विज्ञापन तथा अन्य विक्री प्रोत्साहन उपायों के माध्यम से अपनी बिक्री बढ़ाने का प्रयास करती है।

अल्पकाल में एकाधिकारिक प्रतियोगी बाजार में, फर्में सामान्य लाभ, असामान्य लाभ या हानि की स्थिति में हो सकती हैं, जो कि फर्म के वस्तु की मांग वक्र तथा औसत लागत वक्र की स्थिति पर निर्भर करता है। फर्म का दीर्घकालीन संतुलन तथा समूह संतुलन वहां होता है जहां सीमान्त आय (MR)सीमान्त लागत (MC)के तथा औसत आय (AR) दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) के बराबर हो।

दीर्घकाल में एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्में पूर्ण प्रतियोगिता की तरह अनुकूलतम आकार की नहीं होती हैं तथा फर्म की उत्पादन क्षमता अप्रयुक्त रहती है अर्थात् अधिक्य क्षमता पायी जाती है।

20.8 शब्दावली

वस्तु विभेद -वस्तु विभेद का अर्थ है, एक उद्योग   या वस्तु समूह की विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं में अन्तर। यह अन्तर उनके आकार, पैकेजिंX, विक्रय के बाद सेवा, डिजाइन, विक्रय-कला इत्यादि के आधार पर हो सकता है। वस्तु विभेद का मुख्य उद्देश्य एक फर्म का समूह की अन्य फर्मों के उत्पादों से अपने उत्पाद को भिन्न दिखाकर अपने उत्पाद के प्रति ग्राहक की प्राथमिकता को मजबूत करना है।

विक्रय लागतें - वे लागतें जो कि फर्म अपने उत्पाद के मांग रेखा की ढाल में या स्थिति में परिवर्तन करने के लिए करती है। विक्रय लागतों   में विज्ञापन की लागत, बिक्री संवर्द्धन योजनाओं पर व्यय, बिक्री में लगे कर्मचारियों के वेतन तथा कमीशन, बिक्री के बाद की सेवा की लागत और प्रदर्शन के लिए फुटकर विक्रेताओं को दिये गये भत्ते शामिल   है।

उद्योग   - समांग वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्मों के समूह को 'उद्योग ' कहा जाता है।

वस्तु समूह - ऐसी फर्मों का समूह जो निकट स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन करती हैं।

गैर-कीमत प्रतियोगिता - एक एकाधिकारी प्रतियोगिता की फर्म के वे प्रयास जैसे-वस्तु विभेद तथा विक्रय व्यय, जिनमें वह अपनी वस्तु की बिक्री और लाभों की कीमत में कटौती किए बिना बढ़ाती है।

आधिक्य क्षमता - एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म दीर्घकालीन औसत लागत वक्र ;स्।ब्द्ध के गिरते हुए भाग पर कार्य करती है, अर्थात उस अनुकूलतम मात्रा का उत्पादन नहीं करती है जिस पर LACन्यूनतम हो। इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म का वास्तविक दीर्घकालीन उत्पादन तथा सामाजिक दृष्टि से अनुमूल्तम उत्पादन का अन्तर उसकी 'आधिक्य क्षमता' की माप है।

20.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

बहुविकल्पीय प्रश्न

(i) ख (ii) X (iii) घ

अभ्यास प्रश्न-2

बहुविकल्पीय प्रश्न

(i) क (ii) क

20.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Ferguson C.E., (1972), Micro Economic Theory, 3rd Edition, Homewood, III: R. D. Irwin.
- Chamberlin E.H., (1956), The Theory of Mouopolistic Competetion, 7th Edition Harvard University Press.
- Koutsoyiannis, A., (1979), Modern Microecomomics, 2nd Edition, Macmillan, London.
- Ahuja H.L. (2006), Advanced Economic Theory: Microeconomic Analysis, S.Chand & Company Ltd.
- E.U. Browing & J.M. Prowing, (1994), Microeconomic Theory & Applications, Kalyani Pub. New Delhi.

20.11 उपयोगी/सहायक ग्रंथ

- Dwivedi D.N., (2006) Micro Economics: Theory & Applications, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd (Pearson).
- Peterson, L. and Jain (2006), Managerial Economics, 4th edition Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd (Pearson).
- Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill.
- Mishra, S. K. and Puri, V. K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.
- Panhaj Ghai & Anuj Gupta(2002), Microeconomic Theory & Applications II, Ist Edition, Sonp & Sons, New Delhi.

- S.P.S. Chauhan (2009), Microeconomic Theory & Applications, Part-II, PHI Learning Private Ltd, New Delhi.
- M. George Mankiw (1998), Principals of Microeconomics, Ist Edition, Elesevier.
- Paul Krugman & Robin Wells (2010), Microecomics, 2nd edition, WH Freman & Co.
- D.S. Watson & M. Getz, Price Theory and its Uses. 5th Revised Edition.
- J.P. Gould and E.P. Lazer (1989), Microeconomic Theory, 6th Edition. Homewood, III: R. D. Irwin

20.12 निबंधात्मक प्रश्न

1- एकाधिकारी प्रतियोगिता की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए। इसके अंतर्गत एक फर्म के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन संतुलन की व्याख्या कीजिए।

2- एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत समूह संतुलन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

3- पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारी प्रतियोगिता में विस्तार से तुलना कीजिए।

इकाई-21 अल्पाधिकार में कीमत निर्धारण का सिद्धान्त

21.1 प्रस्तावना

21.2 उद्देश्य

21.3 अल्पाधिकार: अर्थ एवं विशेषताएँ

21.3.1 अल्पाधिकार का अर्थ

21.3.2 अल्पाधिकार की विशेषताएँ

21.3.3 अल्पाधिकार के मॉडल

21.4 क्रूर्नों का दूयाधिकार मॉडल

21.5 चैम्बरलिन का मॉडल

21.6 विकुंचित मांग वक्र मॉडल

21.7 कार्टेल

21.7.1 संयुक्त लाभ अधिकतमीकरण मॉडल

21.7.2 कार्टेल तथा बाजार का बंटवारा मॉडल

21.7.2.1 गैर कीमत प्रतियोगिता समझौता

21.7.2.2 कोटा सिस्टम

21.8 कीमत नेतृत्व मॉडल

21.8.1 निम्न लागत कीमत नेतृत्व मॉडल

21.8.2 प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व मॉडल

21.8.3 बैरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व मॉडल

21.9 अल्पाधिकार का बिक्री अधिकतम मॉडल

21.10 सारांश

21.11 शब्दावली

21.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

21.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

21.14 उपयोगी/सहायक ग्रंथ

21.15 निबन्धात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

फर्म के सिद्धान्त से सम्बन्धित यह पांचवी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद अब आप यह बता सकते हैं कि तीन बाजार स्थितियों, पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता में क्या अन्तर है तथा इनमें कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण कैसे होता है?

वास्तविक जगत में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के साथ-साथ एकाधिकारिक प्रतियोगिता की स्थिति भी कम ही होती है। वास्तविक जगत में अपूर्ण प्रतियोगिता का एक महत्वपूर्ण रूप अल्पाधिकार, जिसमें 'थोड़े से' उत्पादकों या विक्रेताओं में प्रतियोगिता होती है, की स्थिति पायी जाती है। प्रस्तुत इकाई में अल्पाधिकार की विशेषताओं तथा विभिन्न प्रकार के अल्पाधिकारी बाजारों में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप अल्पाधिकारी बाजार की विशेषताओं तथा अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के बारे में जान सकेंगे।

21.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- अल्पाधिकार तथा उसकी विशेषताओं को बता सकेंगे।
- अल्पाधिकार के विभिन्न मॉडलों के बारे में जान सकेंगे।
- वास्तविक जगत में फर्मों तथा उत्पादकों के व्यवहारों को समझ सकेंगे।

21.3 अल्पाधिकार का अर्थ एवं विशेषताएँ

अल्पाधिकार, औद्योगिक देशों में, विनिर्माण क्षेत्र में सबसे अधिक पायी जाने वाली बाजार स्थिति है।

अल्पाधिकार का अर्थ - अल्पाधिकार वह बाजार स्थिति होती है जिसमें एक वस्तु के थोड़े से उत्पादक या विक्रेता होते हैं। इसे कुछ के बीच प्रतियोगिता कहा जाता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि बाजार में थोड़ी सी फर्मे या उत्पादक या विक्रेता होने पर एक की कार्यवाही दूसरे को प्रभावित कर सकती है। अल्पाधिकार का सरलतम रूप दूयाधिकार है जिसमें एक पदार्थ के केवल दो उत्पादक या विक्रेता होते हैं।

एक अल्पाधिकारी उद्योग समरूप या निकट स्थानापन्न विभेदीकृत वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है। यदि कुछ फर्मों या विक्रेताओं के पदार्थ समांग या पूर्ण स्थानापन्न हों तो उसे शुद्ध अल्पाधिकार तथा यदि वस्तुएं विभेदीकृत तथा निकट स्थानापन्न हों तो इसे अपूर्ण अल्पाधिकार या विभेदीकृत अल्पाधिकार कहते हैं। लोहा, पेट्रोY, रसोई गैस, सीमेंट, ताँबा, जस्ता आदि उद्योगों में शुद्ध अल्पाधिकार तथा साबुन, शैम्पू, कार, टी0वी0 इत्यादि उद्योगों में अपूर्ण अल्पाधिकार बाजार की स्थितियाँ पायी जाती हैं।

अल्पाधिकार की विशेषताएँ - फर्मों या विक्रेताओं की कम संख्या होने के अलावा अल्पाधिकारी बाजार की कुछ विशिष्ट विशेषताएँ है जो कि अन्य बाजार स्थितियों में नहीं पायी जाती हैं।

1-परस्पर निभरता - अल्पाधिकारी बाजार की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता फर्मों या विक्रेताओं की पारस्परिक निर्भरता है। जब फर्मों या विक्रेताओं की संख्या होती है तो कीमत, उत्पादन व्यवसाय रणनीति, वस्तु आदि संबंधी परिवर्तनों का सीधा प्रभाव प्रतिद्वंदियों के लाभों पर पड़ता है, जो प्रतिक्रियास्वरूप अपनी कीमतों, उत्पादन, व्यवसाय-रणनीति आदि में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करते हैं। इस प्रकार एक अल्पाधिकारी फर्म या विक्रेता द्वारा निर्णय लेते समय यह ध्यान रखना होता है कि उसके निर्णयों के प्रतिक्रियास्वरूप उसकी प्रतिद्वंदी फर्मों या विक्रेताओं की प्रतिक्रियाएं किस प्रकार की होंगी।

स्पष्ट है कि दो या दो से अधिक फर्मों या विक्रेताओं (परन्तु बहुत अधिक नहीं) की स्थिति, जो कि निर्णय लेने में परस्पर निर्भर हैं, अल्पाधिकारी बाजार स्थिति को बताती है।

उदाहरण के तौर पर पेप्सी कोला द्वारा कीमत, उत्पादन तथा विज्ञापन आदि के सम्बन्ध में लिया गया निर्णय कोका-कोला को भी तुरंत ही अपनी कीमत, उत्पादन तथा विज्ञापन संबंधी निर्णयों में परिवर्तन के लिए बाध्य कर देता है। इसी प्रकार विभिन्न दूरसंचार कम्पनियां एक-दूसरे के निर्णयों से प्रभावित होती हैं।

2-विज्ञापन तथा विक्रय लागतें - परस्पर निर्भरता के कारण अल्पाधिकारी बाजार में विक्रेता या फर्में बाजार में अपने हिस्से को बनाए रखने या बढ़ाने के लिए विज्ञापन तथा अन्य बिक्री प्रोत्साहन तरीकों का सहारा लेती हैं, जिससे उनकी विक्रय लागतों में वृद्धि होती है। अल्पाधिकार में फर्मों के बीच वास्तविक प्रतियोगिता होती है और विज्ञापन उनके लिए जीवन-मृत्यु का विषय बन जाता है।

3-मांग -वक्र की अनिश्चितता -फर्मों की परस्पर निर्भरता के कारण अल्पाधिकार के अंतर्गत कोई भी फर्म अपनी कीमत-उत्पादन नीति के सम्भावित परिणामों का निश्चितता से पूर्वावलोकन नहीं कर सकती। अर्थात् जब एक अल्पाधिकारी फर्म अपने कीमत में कमी करती हैं तो प्रतिद्वंदी फर्में भी

कीमत में कमी करेंगी या कीमत अपरिवर्तित रहने देंगी, इसके बारे में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। इसलिए अल्पाधिकारी जिस मांग वक्र का सामना करता है, वह अनिश्चित होता है।

4-कीमत तथा उत्पादन की अनिर्धार्यता - फर्मों की परस्पर निर्भरता तथा प्रतिद्वंदियों के अनिश्चित व्यवहार ढांचे के कारण अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण में अनिश्चितता होती है। अल्पाधिकार का सिद्धान्त 'समूह व्यवहार' का सिद्धान्त है और इसके सम्बन्ध में लाभ अधिकतम करने की मान्यता बहुत उचित नहीं है। अल्पाधिकार के वास्तविक उद्देश्य के सम्बन्ध में निश्चितता न होने के कारण भी कीमत और उत्पादन निर्धारण में और भी अधिक अनिश्चितता आ जाती है।

अतः अल्पाधिकारी समस्या का कोई एक निश्चित समाधान नहीं है, बल्कि बहुत से सम्भावित समाधान हैं और प्रत्येक समाधान भिन्न मान्यताओं पर आधारित है।

अल्पाधिकार के मॉडल - अल्पाधिकारी बाजारों में स्वतंत्र रूप में कीमत निर्धारण करना काफी कठित है। अर्थशास्त्रियों ने निम्नलिखित आधारों पर अनेक मॉडलों का विकास किया है

1-अल्पाधिकारी समूह के व्यवहार अर्थात् थोड़ी सी परस्पर निर्भर फर्मे आपस में सहयोग करेंगी या एक-दूसरे से प्रतियोगिता करेंगीय

2-अल्पाधिकारी फर्मों के वास्तविक उद्देश्य अर्थात् वे व्यक्तिगत अथवा संयुक्त लाभों को अधिकतम करना चाहती हैं या सुरक्षा या बिक्री को अधिकतम करना चाहती हैंय

3-एक फर्म द्वारा कीमत व उत्पादन में परिवर्तन से प्रतिद्वंदियों की प्रतिक्रिया के संबंध में मान्यता।

अर्थशास्त्रियों द्वारा विकसित कुछ प्रमुख मॉडलों को फर्मों के बीच समझौते या गठबन्धन के आधार पर, दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः

(क) गैर-कपट संधि अल्पाधिकार मॉडल

(ख) कपट संधि अल्पाधिकार मॉडल

गैर कपट संधि अल्पाधिकार मॉडल के अंतर्गत निम्नलिखित मॉडलों के बारे में आप जान सकेंगे:

i. क्रूनों का दूयाधिकार मॉडल
ii. चैम्बरलिन का मॉडल
iii. पॉल स्वीजी का विकुंचित मांग वक्र मॉडल

गैर कपट संधि के अंतर्गत फर्मों या विक्रेताओं के बीच किसी प्रकार का समझौता या गठबन्धन नहीं होता है और वे आपस में परस्पर प्रतियोगिता करती हैं। परन्तु प्रायः अल्पाधिकारी फर्मों या विक्रेताओं के बीच किसी न किसी प्रकार का पारस्परिक समझौता होता है। यह समझौता अनौपचारिक या औपचारिक हो सकता है।

कपट संधि अल्पाधिकार मॉडल के अंतर्गत अल्पाधिकारी फर्में परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता को दूर करने के लिए आपस में कपट संधि करती हैं। जब एक उद्योग की फर्मों के बीच औपचारिक समझौता होता है, जिसमें वे आपसी विचार-विमर्श से कीमत या उत्पादन के सम्बन्ध में कुछ सामान्य नियम निर्धारित कर लेते हैं, तो इसे 'कार्टेल' कहा जाता है। आप दो प्रकार के कार्टेल के अंतर्गत अल्पाधिकार फर्मों के कीमत तथा उत्पादन व्यवहार को जान सकेंगे:

i. संयुक्त लाभ और पूरे उद्योग के लाभ में अधिकतम करने वाला कार्टेल, तथा
ii. बाजार का बंटवारा करने वाला कार्टेल।

अनौपचारिक समझौते के अंतर्गत बिना आमने-सामने विचार-विमर्श किए फर्में आपस में एक समझौता कर लेती हैं तथा कीमत, उत्पादन आदि के संबंध में एक समान नीति का पालन करती हैं। इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है 'कीमत नेतृत्व'। कीमत नेतृत्व के तीन प्रमुख प्रकार हैं:

i. निम्न लागत कीमत नेतृत्व
ii. प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व
iii. बैरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व

अभ्यास प्रश्न-1

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अल्पाधिकार से आप क्या समझते हैं?
2. अल्पाधिकार की मुख्य विशेषताएं बताइए।
3. अल्पाधिकारी मांग वक्र में अनिश्चितता क्यों पायी जाती है?
4. अल्पाधिकार के विभिन्न प्रकार क्या हैं?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1 . अल्पाधिकार के सम्बन्ध में निम्नलिखित में से क्या सही नहीं है?

(क) मांग वक्र की अनिश्चितता

(ख) कीमत प्रतियोगिता

(ग) कीमत दृढ़ता

(घ) परस्पर निर्भरता

2. अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत में -

(क) स्थिर रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

(ख) अस्थिर रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

(ग) निम्न स्तर पर रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

(घ) इनमें से कोई नहीं।

सत्य व असत्य बताइए

1. अल्पाधिकार में फर्मों की संख्या बहुत अधिक होती है।
2. अल्पाधिकारी का मांग वक्र अनिश्चित होता है।
3. विकुंचित मांग वक्र मॉडल, कपट संधि समझौता के अंतर्गत आएगा।
4. कीमत नेतृत्व फर्मों के बीच अनौपचारिक समझौते का एक रूप है।
5. फर्मों के बीच परस्पर निर्भरता अल्पाधिकार की एक प्रमुख विशेषता है।

21.4 कूर्नों का द्वयाधिकार मॉडल

द्वयाधिकारी सिद्धान्त अल्पाधिकारी सिद्धान्त का सरलतम एवं सीमित पक्ष है जिसमें सिर्फ दो विक्रेता या फर्में होती हैं, जो कि पूर्ण रूप से स्वतंत्र होती है और उनमें किसी प्रकार का कोई समझौता नहीं होता। अल्पाधिकार के प्रतिष्ठित माडलों में यह मान लिया गया है कि अल्पाधिकारी फर्में अपनी उत्पादन तथा कीमत नीति निर्धारित करते समय अपने प्रतिद्वंदी की प्रतिक्रियाओं की पूर्ण रूप से उपेक्षा कर देती हैं।

अल्पाधिकार का प्रथम मॉडल फ्रेंच अर्थशास्त्री कूर्नों ने 1838 में दिया था। उनका मॉडल समान पदार्थों वाले दूयाधिकारी की व्याख्या करता है। कूर्नों का मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित थाः

1-दो स्वतंत्र फर्में या विक्रेता हैं जो एक समांग वस्तु, खनिज जल, का उत्पादन तथा एक ही बाजार में विक्रय करते हैं।

2-उत्पादन की लागत शून्य है अर्थात सीमान्त लागत (MC) भी शून्य है।

3-दोनों फर्में या विक्रेता एक सरल रेखा प्रकार के मांग वक्र का सामना करते हैं, जिसका ढाल ऋणात्मक है।

4-प्रत्येक फर्म यह मानते हुए कि उसकी प्रतिद्वंदी अपना उत्पादन परिवर्तन नहीं करेगा, अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए अपने उत्पादन स्तर का निर्धारण करती हैं। दूसरे शब्दों में उत्पादक अपनी उत्पादन मात्रा का निर्धारण करने में, अपने क्रियाओं या परिवर्तनों के प्रति अपने प्रतिद्वंदी की प्रतिक्रियाओं पर कोई ध्यान नहीं देता है।

माना दो फर्में A और B हैं जो मांग वक्र DD_1 का सामना कर रही हैं। माना पहले फर्म A ने उत्पादन प्रारम्भ किया वह OA मात्रा का उत्पादन करेगी, OP कीमत पर, जहां उसका लाभ अधिकतम हो, क्योंकि इस बिन्दु पर, सीमान्त लागत (MC) = सीमान्त आय (MR) = 0 है। उसका लाभ OAMP है। उत्पादन कीमत में इस स्तर पर मांग की लोच (e) इकाई के बराबर है और कुल आय (TR) अधिकतम है। चूंकि लागत शून्य है इसलिए अधिकतम आय का तात्पर्य है अधिकतम लाभ।

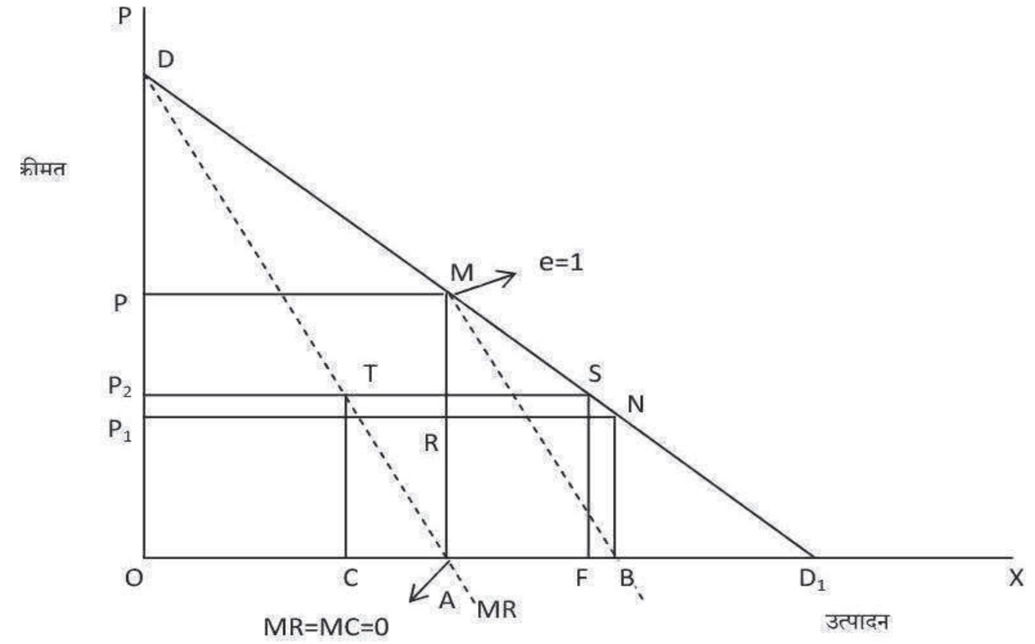

चित्र 21.1

अब फर्म Bयह मानकर कि फर्म A, OA मात्रा ($1/2OD_1$) का उत्पादन करती रहेगी, अपने उत्पादन का निर्धारण करेगी। फर्म B के लिए उपलब्ध बाजार AD_1 है, अतः वह MD_1 को अपना मांग वक्र मानकर अपने लाभ को अधिकतम करने वाले उत्पादन स्तर AB का उत्पादन करेगी, जबकि

कीमत P_1है। फर्म B का MD_1 मांग वक्र होने पर MB उसका MR वक्र होगा जिसके Bबिन्दु पर वह सीमान्त लागत के बराबर है। संतुलन में वह वस्तु की AB मात्रा P_1 कीमत पर बेचकर RABN आय प्राप्त करेगा, जो कि उसके अधिकतम लाभ को प्रदर्शित करता है। फर्म B फर्म A द्वारा छूटे हुए बाजार के हिस्से (AD_1) का आधा ($AB=1/2AD_1$)अर्थात कुल बाजार का एक चौथाई (1/4=1/2*1/2) का उत्पादन करेगी।

फर्म B, के प्रवेश से कीमत गिरकर P_1 होने से फर्म A के लाभ में कमी आ जाती है जो कि गिरकर मात्र $OARP_1$रह जाता है। फर्म A यह मानते हुए कि फर्म B अब अपने उत्पादन स्तर में परिवर्तन नहीं करेगी क्योंकि वह अधिकतम लाभ अर्जित कर रही है, अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए उपलब्ध बाजार, $\left(1-\frac{1}{4}=\frac{3}{4}\right)$ का आधा$\left(\frac{3}{4}.\frac{1}{2}=\frac{3}{8}\right)$ उत्पादन करेगी जो कि पहले से कम है$\left(\frac{3}{8}=\frac{1}{2}-\frac{1}{8}\right)$ । पुनः फर्म B यह मानकर कि फर्म A अपने उत्पादन स्तर में परिवर्तन नहीं करेगी, वह अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए उपलब्ध बाजार$\left(1-\frac{3}{8}=\frac{5}{8}\right)$का आधा $\left(\frac{5}{8}.\frac{1}{2}=\frac{5}{16}\right)$ उत्पादन करेगी। जो कि पहले की अपेक्षा अधिक है$\left(\frac{5}{16}=\frac{1}{4}+\frac{1}{16}\right)$ ।

क्रिया और प्रतिक्रिया की यह प्रक्रिया चल ती रहेगी तथा फर्म A उत्पादन में कमी तथा फर्म B के उत्पादन या बाजार हिस्से में वृद्धि होती रहेगी। यह प्रक्रिया तब रुकेगी जबकि दोनों ही फर्मों का उत्पादन तथा बाजार हिस्सा बराबर हो जाएगा, जो कि कुल उत्पादन का एक तिहाई ($1/3OD_1$) होगा। इस प्रकार दोनों फर्में मिल कर कुल बाजार का दो तिहाई (2/3) उत्पादन करेंगी। यह स्थायी संतुलन की स्थिति होगी।

यदि दोनों ही फर्में पारस्परिक निर्भरता को पहचान लें और मिल कर एक गुट की तरह कार्य करें तो दोनों का संयुक्त उत्पादन, एकाधिकारी उत्पादन OA के बराबर तथा कीमत OP के बराबर होगा। दोनों OA का आधा-आधा $\left(\frac{1}{2}OA\right)$ हिस्सा बांट लेंगे अर्थात प्रत्येक फर्म कुल बाजार का एक चौथाई $\left(\frac{1}{4}OD_1\right)$ उत्पादन करेगी और उसे लाभ अधिकतम करने वाली कीमत OP पर बेचेंगी।

स्पष्ट है कि कूर्नो के द्वयाधिकारी समाधान में उत्पादन, अधिकतम सम्भव उत्पादन (अर्थात पूर्ण प्रतियोगी उत्पादन, OD_1) का दो तिहाई $\left(\frac{2}{3}OD_1\right)$और कीमत, अधिकतम लाभ कीमत (अर्थात एकाधिकारी कीमत, OP) की दो तिहाई $\left(OP_2=\frac{2}{3}OP\right)$ होगी।

यदि फर्मों या विक्रेताओं की संख्या दो से अधिक हो तो भी कूर्नो मॉडल को लागू किया जा सकता है। यदि उद्योग में फर्मों की संख्या द हो तो कूर्नो समाधान मे प्रत्येक फर्म 1/(n+1) करेगी तथा उद्योग का कुल उत्पादन n/(n+1) होगा।

आलोचना

1-कूर्नो मॉडल की अधिकांश मान्यताएं अवास्तविक हैं। प्रत्येक विक्रेता या फर्म यह मान लेता है कि उसकी प्रतिद्वंदी अपनी उत्पादन मात्रा में परिवर्तन नहीं करेगी जबकि बार-बार वह प्रतिक्रिया स्वरूप उसे परिवर्तित होते देखती है। स्पष्ट है कि फर्में अपने पिछले गलत अनुमानों से कुछ नहीं सीखतीं। वास्तव में कूर्नो की यह मान्यता तर्कसंगत विवेकशील नहीं है। अल्पाधिकार के अंतर्गत फर्मों की परस्पर निर्भरता की उपेक्षा करना इस मॉडल का एक प्रमुख दोष है।
2-कूर्नो के उत्पादन लागत शून्य मान लेने की मान्यता भी अवास्तविक है। फिर भी यदि उत्पादन लागत को शून्य न माना जाए तो भी कूर्नो समाधान अप्रभावित रहेगा।
3-यह एक बंद मॉडल है जो कि फर्मों के प्रवेश की इजाजत नहीं देता।
4-अंतिम संतुलन की स्थिति आने में कितना समय लगेगा , इस बारे में भी मॉडल कुछ नहीं कहता।

21.5 चैम्बरलिन मॉडल

चैम्बरलिन ने अपने द्वयाधिकार मॉडल में दोनों विक्रेताओं की परस्पर निर्भरता को स्वीकार करते हुए स्थिर संतुलन हल् प्रस्तुत किया। चैम्बरलिन, कूर्नो तथा अन्य प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा दिए गए मॉडल में फर्मों की परस्पर निर्भरता का ध्यान न रखने की आलोचना करते हैं। क्योंकि यह फर्मों का विवेकशील व्यवहार नहीं होगा। वास्तव में फर्में पारस्परिक निर्भरता को पहचान कर अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती हैं और ऐसी स्थिति में प्रत्येक फर्म एकाधिकारी कीमत वसूल करती है तथा एकाधिकारी संतुलन उत्पादन को बराबर-बराबर बांट लेती है और जब सभी फर्में में संतुलन होंगी तो उद्योग का लाभ भी अधिकतम होगा और संतुलन स्थिर होगा।

चित्र 21.2 में कूर्नो मॉडल की तरह मांग वक्र DD एक सीधी रेखा है जिसका ढाल ऋणात्मक है। सैद्धान्तिक सरलता के लिए उत्पादन लागत शून्य मान ली गयी है। यदि फर्म A पहले उत्पादन शुरु करती है तो वह उत्पादन को वहां निश्चित करेगी जहां उसका लाभ अधिकतम होगा अर्थात वह OX_0 मात्रा में उत्पादन करेगी। (क्योंकि X_0 पर फर्म A का MR = MC) तथा उसे एकाधिकारी कीमत OP_0 पर बेचेगी। फर्म B यह मानकर कि फर्म अपनी उत्पादन मात्रा में परिवर्तन नहीं करेगी, CD को अपना मांग वक्र मानकर अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करेगी तथा X_0D का

आधा अर्थात X_0 X_2 मात्रा में उत्पादन करेगी (क्योंकि X_2 पर फर्म B का MR = MC)। परिणामस्वरूप उद्योग का कुल उत्पाद OX_2 हो जाएगा तथा कीमत गिरकर OP हो जाएगी।

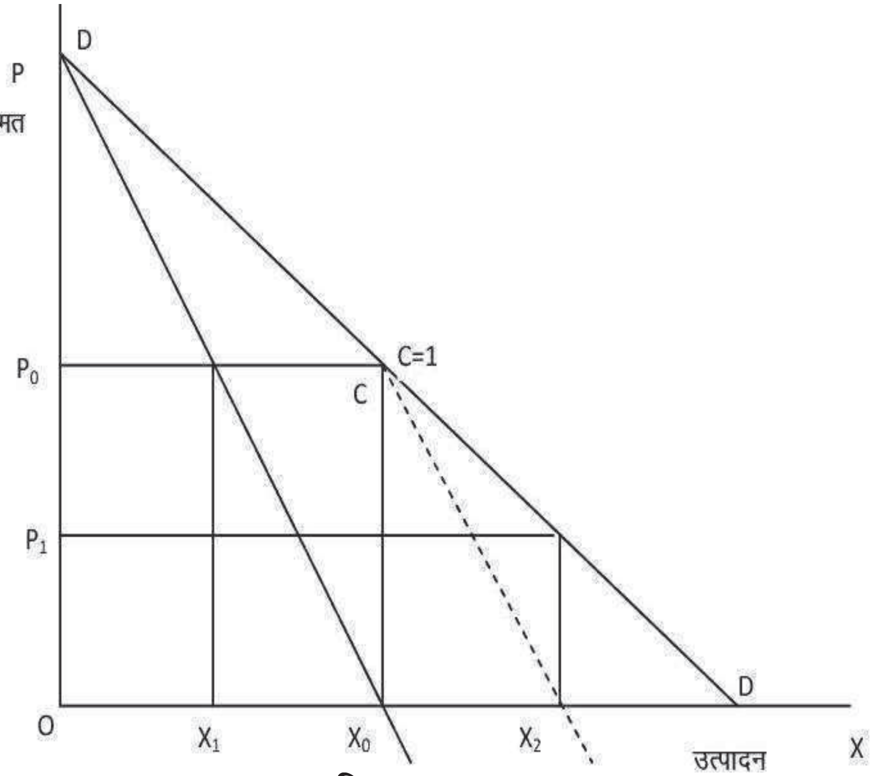

चित्र 21.2

यहां कूर्नो के विपरीत चैम्बरलिन यह मानते हैं कि फर्म । पारस्परिक निर्भरता को ध्यान में रखते हुए प्रतिक्रिया करती है फर्म A यह महसूस करती है कि वह जो भी निर्णय लेगी, फर्म B उस पर प्रतिक्रिया करेगी। इसलिए फर्म A अपने उत्पादन को कम करके OX_1 कर देती है। जो कि OX_0 का आधा है और B के उत्पादन X_0 X_2 के बराबर है। फर्म B भी परस्पर निर्भरता को स्वीकार करते हुए यह महसूस करती है कि दोनों ही फर्मो के लिए यह बेहतर होगा कि एकाधिकारी उत्पादन का आधा-आधा उत्पादन करें और उसे एकाधिकारी कीमत पर बेंचे। इस प्रकार वह X_0X_1 ($=X_0X_2$) उत्पादन करेगा। इस प्रकार परस्पर निर्भरता को पहचानते हुए दोनों फर्में एकाधिकारी हल् पर पहुंचती हैं जो कि स्थिर है और इसी कारण चैम्बरलिन मॉडल अन्य प्रतिष्ठित माडलों से बेहतर है।

चैम्बरलिन के अनुसार यदि फर्मे अपने उत्पादन की अपेक्षा अपनी कीमतों का समायोजन करें तो भी यही परिणाम प्राप्त होगा।

चैम्बरलिन मॉडल की गैर कपट संधि के तहत फर्मों के संयुक्त लाभ अधिकतम करने की स्थिति तभी सम्भव है जब फर्मों को मांग तथा लागत वक्रों के बारे में पूरी जानकारी हो। परन्तु व्यवहार में यह पूरी तरह सम्भव नहीं है। यह मॉडल एक बंद मॉडल है जो कि फर्मों के प्रवेश की उपेक्षा करता है।

21.6 विकुंचित मांग वक्र का सिद्धान्त

सर्वप्रथम हॉल एवं हिच ने अल्पाधिकारी बाजार में कीमत दृढ़ता की व्याख्या के लिए विकुंचित मांग वक्र का प्रयोग किया। उसी वर्ष (1939) अमेरिकी अर्थशास्त्री पॉल स्वीजी ने विकुंचित वक्र का प्रयोग अल्पाधिकारी बाजार में संतुलन के निर्धारण के लिए एक औजार के रूप में किया।

स्वीजी द्वारा प्रस्तुत विकुंचित मांग वक्र सिद्धान्त अल्पाधिकार में कीमत तथा उत्पादन के निर्धारण की व्याख्या नहीं करता है बल्कि सिर्फ यह बताता है कि जब एक बार अल्पाधिकार में कीमत निर्धारित हो जाती है तो उसके स्थिर बने रहने की प्रवृत्त क्यों होती है। क्योंकि प्रत्येक अल्पाधिकारी फर्म यह सोचती है कि यदि वह वर्तमान कीमत स्तर को कम करेगी तो प्रतिद्वंदी फर्में भी कीमत को कम करेंगी और इस प्रकार बाजार मांग बढ़ने के बावजूद फर्मों का हिस्सा अपरिवर्तित रहेगा परन्तु यदि फर्म कीमत में वृद्धि करेगी तो प्रतिद्वंदी फर्में ऐसा नहीं करेंगी और फर्म के बाजार हिस्से में कमी आ जाएगी। प्रतियोगी फर्मों के इस प्रकार की प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति के कारण ही अल्पाधिकारी बाजार में मांग वक्र वर्तमान कीमत के स्तर पर विकुंचित होता है तथा विकुंचित बिन्दु अर्थात वर्तमान कीमत स्तर के ऊपर का भाग अपेक्षाकृत लोचदार तथा नीचे का भाग अपेक्षाकृत बेलोचदार होता है।

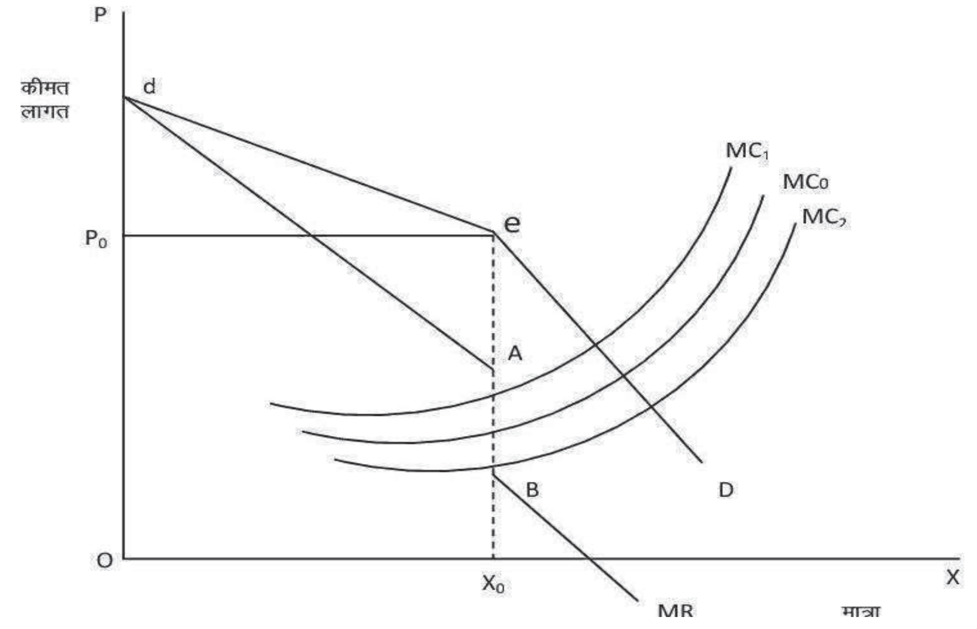

चित्र 21.3

चित्र 21.3 में अल्पाधिकारी का मांग वक्र dD बिन्दु e पर विकुंचित है, जहां वर्तमान कीमत P है जो कि स्थिर या दृढ़ रहेगी क्योंकि कीमत में ऊपर या नीचे की ओर परिवर्तन से कोई भी अल्पाधिकारी लाभान्वित नहीं होगा। विकुंचित मांग वक्र के अनुरूप सीमान्त आय वक्र (MR) असतत् होगा। चित्र में MR के दो भाग हैं, dA जो कि मांग वक्र के ऊपरी भाग से संबंधित है तथा

बिन्दु B से नीचे का भाग , जो कि मांग वक्र के नीचे के भाग से संबंधित है। MR की असतता या अन्तराल की लम्बाई मांग वक्र के दो भागों, de तथा eD,, की लोचों पर निर्भर करेगी। इन दोनों मांग वक्रों के लोचों का अन्तर जितना ही अधिक होगा, अन्तराल AB की लम्बाई उतनी ही अधिक होगी।

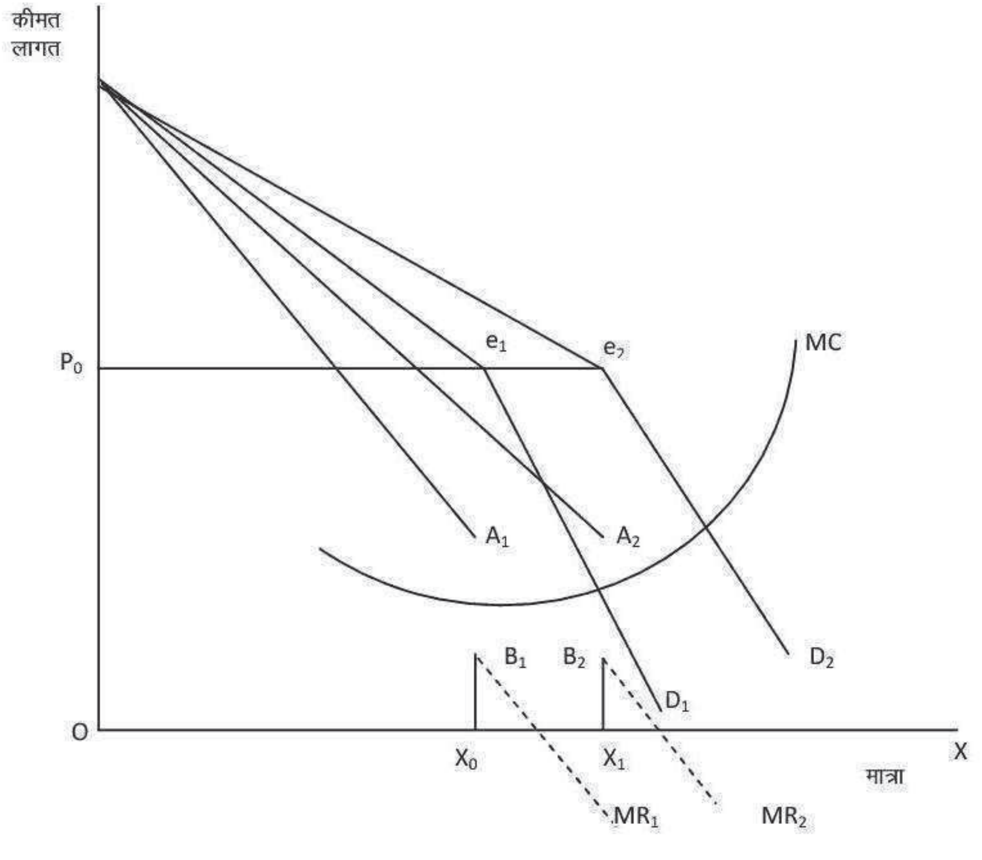

चित्र 21.4

अल्पाधिकारी का संतुलन विकुंचित बिन्दु e पर होगा जबकि कीमत P_0 तथा उत्पादन X_0 है, क्योंकि e बिन्दु के बायें किसी भी बिन्दु पर MC, MR से कम होगी, तथा विकुंचित बिन्दु e से दायें किसी भी बिन्दु पर MC, MR से अधिक होगी। इस प्रकार जब MC वक्र, MR के असतत् भाग AB से गुजरता है तो अल्पाधिकारी फर्म को वर्तमान कीमत, P पर अधिकतम लाभ होगा। AB भाग

के बीच जब तक MC वक्र रहेगा तब तक बिना कीमत P तथा उत्पादन X_0 को प्रभावित किए लागत परिवर्तित हो सकती है। इस प्रकार, एक सीमा तक (ABके बीच) लागत में परिवर्तन के बावजूद कीमत व उत्पादन में परिवर्तन नहीं होगा। चित्र में लागत में परिवर्तन से MC वक्र MC_1 या MC_2 हो जाता है परंतु P तथा X_0 स्थिर हैं।

इसी प्रकार एक सीमा के अन्दर मांग में परिवर्तन होने पर भी कीमत स्थिर रहती है। यद्यपि उत्पादन मात्रा परिवर्तित हो जाती है। चित्र 21.4 में जब अल्पाधिकारी की मांग बढ़ जाती है तो मांग वक्र D_1 ऊपर की ओर विवर्तित होकर D_2 हो जाता है तथा सीमान्त लागत (MC) वक्र नए MR_2 वक्र के अन्तराल से होकर गुजरता है। इस प्रकार कीमत P_0 पर स्थिर रहती है जबकि उत्पादन X_0 से बढ़कर X_1 हो जाता है।

जब अल्पाधिकारी उद्योग में लागत में वृद्धि हो जाती है तो कीमत स्थिर या दृढ़ नहीं रहेगी। जब लागत बढ़ने से सभी फर्में प्रभावित होती है तो फर्म यह सोचकर कीमत में वृद्धि करेगी कि अन्य फर्में भी उसका अनुसरण करेंगी। इस प्रकार विकुंचित बिन्दु ऊपर बायें की ओर विवर्तित हो जाएगा और नया संतुलन ऊँची कीमत P_1 तथा कम उत्पादन X_1 पर होगा (चित्र 21.5).

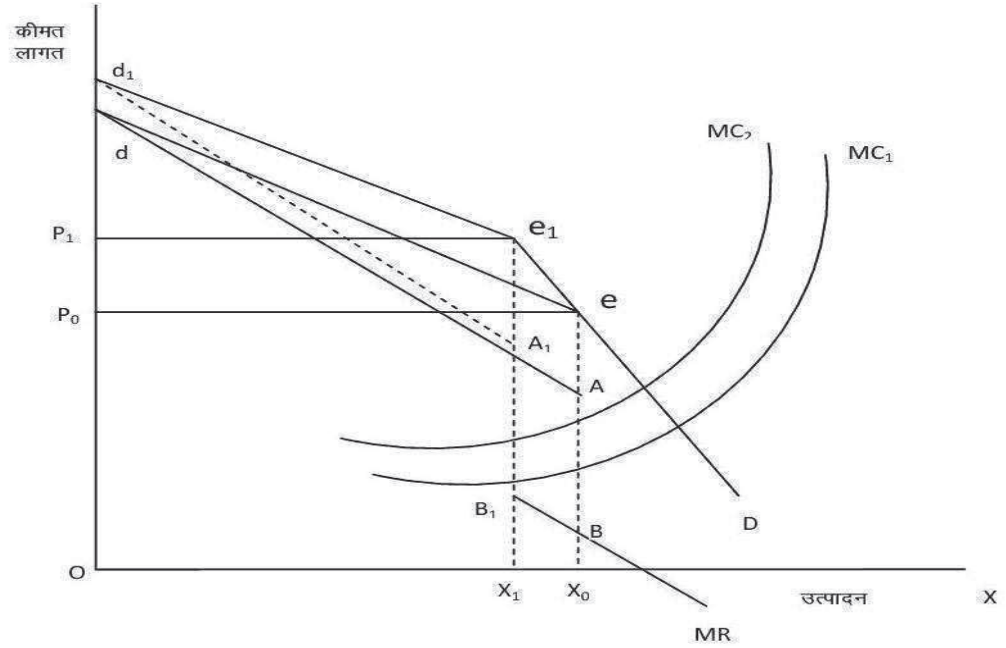

चित्र 21.5

सामान्यतः अल्पाधिकार का विकुंचित मांग वक्र सिद्धान्त कम होती मांग या गिरती लागतों की दशाओं में कीमत स्थिरता की व्याख्या करता है। जबकि लागतों के बढ़ने या मांग के बढ़ने पर कीमतों में वृद्धि की सम्भावना होती है।

आलोचना - एक अल्पाधिकारी बाजार में फर्मों के व्यवहार का एक संतोषजनक व्याख्या यह सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। परन्तु यह मॉडल कीमत या उत्पादन किस प्रकार निर्धारित होगा, इसके बारे में कुछ नहीं बताता। इस बात की व्याख्या नहीं करता कि कीमत के किस स्तर पर लाभ अधिकतम होगा। यह सिद्धान्त केवल यह बताता है कि कीमत एक बार निर्धारित हो जाने के बाद दृढ़ या स्थिर क्यों रहती है। यदि दो विकुंचित मांग वक्र हैं, जिसमें दो अलग-अलग कीमत स्तरों P_1 तथा P_2 पर विकुंचन है तो यह सिद्धान्त यह व्याख्या नहीं करता कि इसमें से कौन एक कीमत निर्धारित होगी, P_1 या P_2।

21.7 कार्टेल

अल्पाधिकारी बाजारों में स्वतंत्र रूप से कीमत निर्धारण काफी कठिन है। परस्पर निर्भरता के कारण उत्पन्न अनिश्चितता को दूर करने का एक तरीका फर्मों द्वारा आपस में किसी न किसी प्रकार का पारस्परिक समझौता होता है। अल्पाधिकारियों के मध्य आपसी समझौता या कपट संधि दो प्रकार की होती है-कार्टेल तथा कीमत नेतृत्व। दोनों ही स्थितियों में प्रायः फर्में आपस में गुप्त समझौते करती हैं क्योंकि अधिकांश देशों में खुले में फर्मों द्वारा समझौता करना या कीमत तथा उत्पाद संबंधी सामान्य नियम निर्धारित करना गैर कानूनी है।

एक उद्योग समूह में स्वतंत्र फर्मों के संगठन को कार्टेल कहते हैं।यहां हम दो प्रकार के कार्टेल की विवेचना करेंगे- संयुक्त लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य से बनाए गए कार्टेल तथा बाजार के बंटवारे के उद्देश्य से बनाए गए कार्टेल।

21.7.1 संयुक्त लाभ अधिकतमकरण कार्टेल

कपट संधि का चरम रूप है 'पूर्ण कार्टेल'। पूर्ण कार्टेल समांग वस्तुएं बनाने वाली फर्मों के बीच एक औपचारिक कपट संधि है जिसमें सदस्य फर्में अपने कीमत तथा उत्पादन निर्धारण संबंधी समस्त अधिकार एक ''केन्द्रीय प्रशासनिक एजेन्सी'' को सौंप देती ि हैं जो उनको संयुक्त अधिकतम लाभ प्रदान कर सके। एजेन्सी अपने सदस्यों के लिए उत्पादन, कोटा ली जाने वाली कीमत और उद्योग के लाभों का वितरण निर्धारित करती है और इस प्रकार यह एक एकाधिकारी की तरह कार्य करता है।

हम यह मान लेते हैं कि केन्द्रीय कार्टेल एजेन्सी का मुख्य उद्देश्य उद्योग के लाभ को अधिकतम करना होता है तथा उसको वस्तु के बाजार मांग वक्र और उसके अनुरूप सीमान्त आय (MR)वक्र की पूरी जानकारी रहती है। फर्मों के लागत वक्र भिन्न होते हैं, परन्तु केन्द्रीय एजेन्सी को प्रत्येक फर्म के लागत वक्र की जानकारी होती है। कार्टेल या उद्योग के सीमान्त लागत वक्र (MC) को सदस्य फर्मों के सीमांत लागत वक्रों के क्षैतिज योग से प्राप्त किया जाता है।

चूंकि केन्द्रीय एजेन्सी, अनेक प्लान्टों पर कार्य करने वाले एकाधिकारी की तरह कार्य करती है इसलिए उद्योग का संयुक्त लाभ वहां अधिकतम होगा जहां उद्योग के MR तथा MC वक्र एक दूसरे को काटते हैं।

विश्लेषण की सरलता के लिए, मान लिया दो फर्में A तथा B मिल कर कार्टेल बनाती हैं। दोनों फर्मों के लागत चित्र 21.6 में दिए हुए हैं। उद्योग का MC वक्र MC_1 तथा MC_2 वक्र के क्षैतिज योग से प्राप्त किया गया है। MC के अनुसार उत्पादन करने से प्रत्येक फर्म की उत्पादन मात्रा की कुल लागत न्यूनतम होगी। उद्योग की कुल उत्पादन मात्रा को फर्मों के बीच इस प्रकार विभाजित किया जाएगा कि सबकी MC समान हो जाए। बाजार मांग वक्र DD के दिए हुए होने पर उद्योग का संयुक्त लाभ बिन्दु e पर अधिकतम होगा जहां उद्योग का MC, MR के बराबर है। कुल उत्पादन X तथा कीमत P होगी। अब केन्द्रीय एजेन्सी उत्पादन X को फर्म A तथा B में प्रत्येक फर्म के MC वक्र को उद्योग के MR वक्र से बराबर करके बांटती है। फर्मA का सीमान्त लागत वक्र MC_1, e_1 बिन्दु तथा फर्म B का MC_2, e_2 बिन्दु पर MR के बराबर है। इस प्रकार फर्म A, X_1 तथा फर्म B, X_2 मात्रा का उत्पादन करेगी।

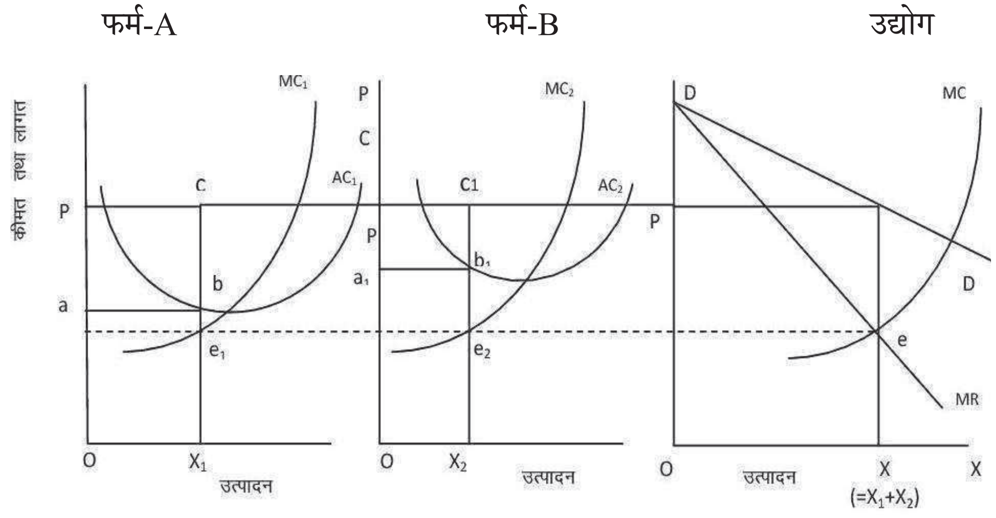

चित्र 21.6

यहां यह उल्लेखनीय है कि फर्म A कम लागत पर अधिक उत्पादन करती है। उद्योग का कुल लाभ दोनों फर्मों के लाभ का योग है ; ($abcP + a_1b_1c_1P$)। इस लाभ का बंटवारा केन्द्रीय कार्टेल एजेन्सी निर्धारित करेगी।

मूल्यांकन - सैद्धान्तिक रूप से पूर्ण कार्टेल के अंतर्गत एकाधिकारी समाधान प्राप्त करना आसान है परन्तु व्यवहार में इस प्रकार के कार्टेल का निर्माण तथा संयुक्त लाभ अधिकतम करना काफी कठिन

है। व्यवहार में प्रायः समझौता सिर्फ कीमत संबंधी होता है। दीर्घकाल में कार्टेल के निर्माण तथा उसके कार्यकरण में अनेक कठिनाइयां आती हैं।

1-संयुक्त लाभ अधिकतमीकरण द्वारा संतुलन सम्भव तभी है जब प्रत्येक फर्म समांग वस्तुओं का उत्पादन करें तथा उनके मांग व लागत वक्र समरूप हों, जबकि व्यवहार में यह कठिन है।

2-बाजार मांग वक्र का सही अनुमान काफी कठिन है क्योकि फर्म यह सोचती है कि उसके उत्पादन की मांग लोच अधिक है।

3-सदस्य फर्मों द्वारा अपनी लागत के बारे में कार्टेल को सही जानकारी न उपलब्ध कराने की स्थिति में MC वक्र का अनुमान भी गलत हो सकता है। उत्पादन व लाभ का अधिक भाग प्राप्त करने की चाह में फर्में अपने लागत को कम बता सकती हैं।

4-कार्टेल निर्माण की प्रक्रिया प्रायः धीमी होने से, हल् अवधि में फर्मो की लागत संरचना बदल सकती है। फर्मों की संख्या अधिक होने पर भी कार्टेल निर्माण में कठिनाई आती है या यह जल्दी टूट सकता है।

5-कार्टेल द्वारा निर्धारित कीमत में दृढ़ता होती है, लंबे समय तक इसके स्थिर बने रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है, भले ही बाजार दशाओं में परिवर्तन हो रहा हो। क्योंकि कार्टेल में कीमत पर सहमति बनने में लम्बा समय लगता है तथा अनेक कठिनाइयां आती हैं। ऐसे में कीमत स्थिरता कार्टेल को छोड़ने का कारण बन सकती है।

6-कुछ फर्में अपने ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए अतिरिक्त छूटों या कीमत में कमी का सहारा ले सकती हैं इससे समझौते की अंतिम स्थिति पर पहुंचने में कठिनाई होती है।

7-यदि कार्टेल में उच्च लागत वाली फर्म हो, जिसकी लागत उद्योग की MC से अधिक हो, तो संयुक्त लाभ के अधिकतम होने के लिए उसे बंद कर दिया जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में उच्च लागत वाली फर्में कार्टेल छोड़कर जा सकती हैं।

8-कार्टेल कीमत के अधिक होने पर सरकारी हस्तक्षेप का खतरा बढ़ जाता है। जिससे सदस्य उससे कम कीमत रख सकते हैं।

9-ऊँची कार्टेल कीमत, जो कि एकाधिकार लाभ उत्पन्न करती हैं, से उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश की सम्भावना बढ़ जाती है। नयी फर्मों के प्रवेश को रोकने के लिए फर्में कम कीमत रख सकती हैं।

10-कुछ फर्में सामान्य जन में अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के उद्देश्य से कार्टेल कीमत से कम कीमत वसूल सकती हैं।

21.7.2 बाजार बांट कार्टेल

बाजार के बंटवारे से सम्बन्धित कार्टेल अधिक व्यवहारिक है। इसके अंतर्गत फर्में बाजार के बंटवारे को सहमत हो जाती हैं, परन्तु अपने उत्पादन के तरीके, विक्रय गति विधियों तथा अन्य निर्णयों से संबंधित स्वतंत्रता काफी हद तक अपने पास ही रखती हैं। बाजार के बंटवारे की दो विधियां हैं - गैर कीमत प्रतियोगिता तथा कोटा प्रणाली।

21.7.2.1 गैर-कीमत प्रतियोगिता समझौता

यह एक ढीले प्रकार का कार्टेल है। इसके अंतर्गत अल्पाधिकारी फर्म एक सामान्य कीमत पर सहमत हो जाती है, जिस पर प्रत्येक फर्म कोई मात्रा बेच सकती है। एक समान कीमत का निर्धारण सौदेबाजी के द्वारा होता है। कम लागत फर्में, कम कीमत के लिए तथा अधिक लागत फर्में ऊँची कीमत के लिए जोर देती हैं। परन्तु अन्त में एक कीमत पर समझौता होता है जिस पर कि सभी सदस्य फर्मों को कुछ लाभ अवश्य प्राप्त हो रहा हो। फर्में कार्टेल कीमत से नीचे की कीमत पर वस्तु न बेचने के लिए सहमत होती है परन्तु गैर-कीमत प्रतियोगिता के द्वारा अपनी बिक्री बढ़ाने का प्रयास कर सकती हैं। फर्में अपने उत्पाद के रंग, आकार, डिजाइन, पैकिंग आदि को परिवर्तित कर सकती हैं तथा अपनी विज्ञापन तथा विक्रय गति विधियां बदल सकती हैं।

इस प्रकार कार्टेल सामान्यतया अस्थिर होता है। क्योंकि कम लागत फर्म द्वारा कार्टेल कीमत से कम कीमत पर वस्तु बेचने की सम्भावना प्रबल होती है। ऐसे कार्टेल टूटने तथा कीमत प्रतियोगिता शुरु होने का खतरा बना रहता है। यदि कार्टेल बनाने वाली फर्मों के लागत वक्रों में भिन्नता कम है तो कार्टेल की जीवन अवधि लम्बी हो सकती है।

21.7.2.2 कोटा समझौता द्वारा बाजार का बंटवारा

बाजार के बंटवारे का एक दूसरा तरीका है, प्रत्येक फर्म का बाजार में कोटा निर्धारित कर देना। यदि सभी फर्मों के लागत वक्र समान हो तो सभी फर्मों के बीच बाजार का बंटवारा बराबर-बराबर होगा और एकाधिकारी समाधान प्राप्त होगा। यदि समान लागत वाली सिर्फ दो ही फर्में हों तो प्रत्येक फर्म एकाधिकारी कीमत पर कुल बाजार मांग का आधा बेचेंगी। चित्र 21.7 में एकाधिकारी कीमत P_2 है। कुल उत्पादन X_0 है जिसमें कि प्रत्येक फर्म का कोटा बराबर है। ($X_1 = X_2$ तथा $X_1 + X_2 = X$) । यदि फर्मों की लागतों में अन्तर होगा तो कोटा तथा बाजार में हिस्सा भिन्न-भिन्न होगा। लागत के आधार पर कोटा हिस्से का बंटवारा कार्टेल को अस्थिर बनाएगा। लागतों से भिन्नता की स्थिति में बाजार हिस्से का बंटवारा अंततः फर्मों की समझौता शक्ति तथा उनकी लागतों के स्तर पर निर्भर करेगा। समझौता शक्ति में फर्म की बीते वर्षों में बिक्री का स्तर तथा उसकी उत्पादक क्षमता का विशेष महत्व होता है।

उल्लेखनीय है कि कार्टेल अल्पाधिकारी बाजार में कीमत दृढ़ता या स्थिरता लाएंगे, यह आवश्यक नहीं है। ज्यादातर कार्टेल ढीले होते हैं। कार्टेल समझौता सदस्यों के लिए बाध्यकारी नहीं होता। इसके टूटने का खतरा बराबर बना रहता है। यदि फर्मों के प्रवेश की स्वतंत्रता हो तो कार्टेल की अस्थिरता

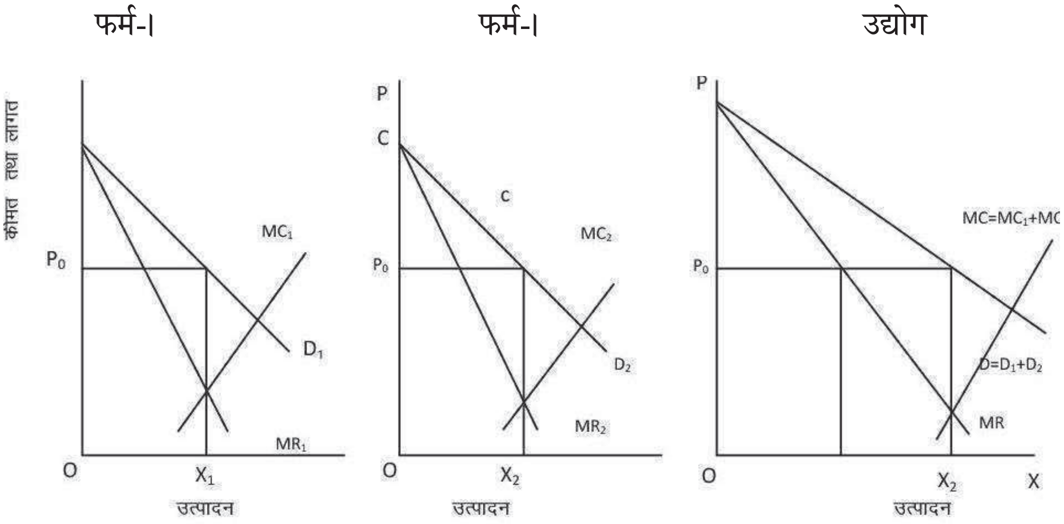

चित्र–21.7

और बढ़ जाती है। यदि कार्टेल कीमत ऊँची हो और लाभ अधिक हो तो नयी फर्मों के प्रवेश की संभावना बढ़ जाती है।

21.8 कीमत नेतृत्व

इसके अंतर्गत अल्पाधिकारी फर्मों के बीच एक प्रकार की अनौपचारिक समझौता या अपूर्ण कपट संधि होती है जिसमें एक फर्म द्वारा नियत कमी कीमत का उद्योग की सभी फर्में अनुसरण करती है क्योंकि ऐसा करना अन्य फर्मों के लिए लाभदायक होता है या फिर वे अल्पाधिकारी अनिश्चितता से बचना चाहती है। कीमत नेतृत्व, कार्टेल की अपेक्षा व्यवहार में अधिक दिखता है क्योंकि यह सदस्य फर्मों से उनके उत्पाद तथा विक्रय गति विधियों के सम्बन्ध में पूरी स्वतंत्रता देता है। यदि वस्तुएँ समान हो तो फर्मों की कीमत समान होगी। परन्तु वस्तुओं में भिन्नता होने पर कीमतें भिन्न हो सकती है, परन्तु उनके परिवर्तन की दिशा समान होगी।

कीमत नेतृत्व विभिन्न प्रकार का हो सकता है परन्तु सामान्यतया तीन प्रकार के कीमत नेतृत्व प्रचलित हैं:-

1) कम-लागत कीमत नेतृत्व

2) प्रधान फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व

3) स्थितिमान कीमत नेतृत्व

21.8.1 कम लागत कीमत नेतृत्व मॉडल

इस मॉडल के अन्तर्गत कम लागत होने के कारण एक अल्पाधिकारी फर्म कम कीमत निर्धारित करती है और वह उद्योग की अन्य फर्मों की नेता बन जाती है। अन्य फर्मों को कम लागत फर्म की कीमत का अनुसरण करना पड़ता है। निम्नलिखित मान्यताओं के आधार पर इस मॉडल में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण होता है

1-दो फर्में हैं, जो कि समान वस्तुओं का उत्पादन करती हैं।

2-दोनों फर्मों की लागतों में भिन्नता है।

3-दोनों फर्में एक समान मांग वक्र का सामना करती हैं अर्थात दोनों फर्मों का बाजार मांग में बराबर हिस्सा है।

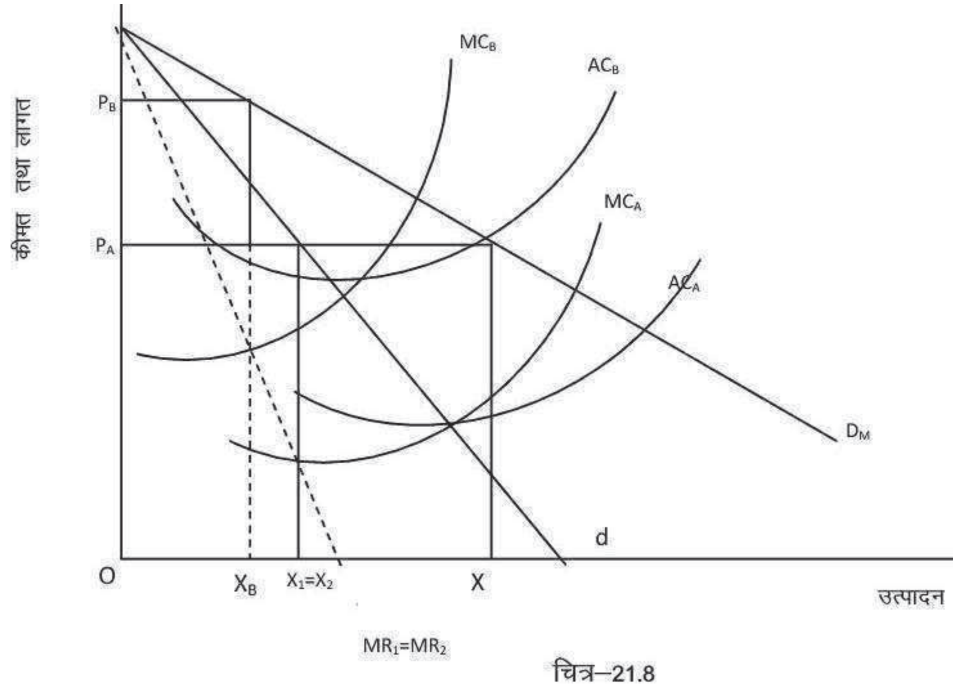

चित्र–21.8

चित्र 21.8 में दो फर्मों A तथा B के लागत तथा मांग वक्र दिए हुए हैं। प्रत्येक फर्म का मांग वक्र d है जो कि बाजार मांग वक्र D_m का आधा है। फर्म A की लागत फर्म B की अपेक्षा कम है क्योंकि MC_A, MC_B के नीचे है। संतुलन की स्थिति में फर्म A, X मात्रा का उत्पादन करेगी तथा PA कीमत निर्धारित करेगी क्योंकि इस स्थिति में $MC_A = MR_1$ और वह अधिकतम लाभ अर्जित कर रही है। इसी प्रकार फर्म B का लाभ X_B उत्पादन तथा P_B कीमत पर अधिकतम होगा। चूंकि P_B, P_A

से अधिक है अतः फर्म B अपने बाजार हिस्से या क्रेताओं को खो सकती है क्योंकि दोनों ही फर्में समान वस्तुओं का उत्पादन कर रही हैं। इसलिए अधिक लागत वाली फर्म ठए फर्म । की कीमत का अनुसरण करेगी और $X_2(=X_1)$ मात्रा का उत्पादन करेगी। हालांकि P_A कीमत पर फर्म B के लाभ अधिकतम नहीं होगा, परन्तु कीमत युद्ध से बचने के लिए वह कम लागत फर्म । को अपना नेता मान लेने में ही अपना हित देखेगी। यदि फर्म B की न्यूनतम लागत, फर्म A द्वारा निर्धारित कीमत से अधिक होगी तो वह उद्योग से बाहर चली जाएगी। ऐसी स्थिति में फर्म । एकाधिकारी फर्म बन जाएगी।

यदि लागतों के साथ-साथ, दोनों फर्मों के मांग वक्र भी भिन्न-भिन्न हों तो कम लागत फर्म का मांग वक्र (D_A), उच्च लागत फर्म के मांग वक्र (D_B) की अपेक्षा अधिक लोचदार होगा। फर्म A, $MR_A = MC_A$ के अनुरूप उत्पादन X_A तथा कीमत P_A पर अधिकतम लाभ अर्जित कर रही है। फर्म B का अधिकतम लाभ P_B कीमत तथा X_B उत्पादन की स्थिति में होगा। परन्तु वह कम लागत फर्म A का अनुसरण करेगी और P_A कीमत पर X_C मात्रा का उत्पादन करेगी।

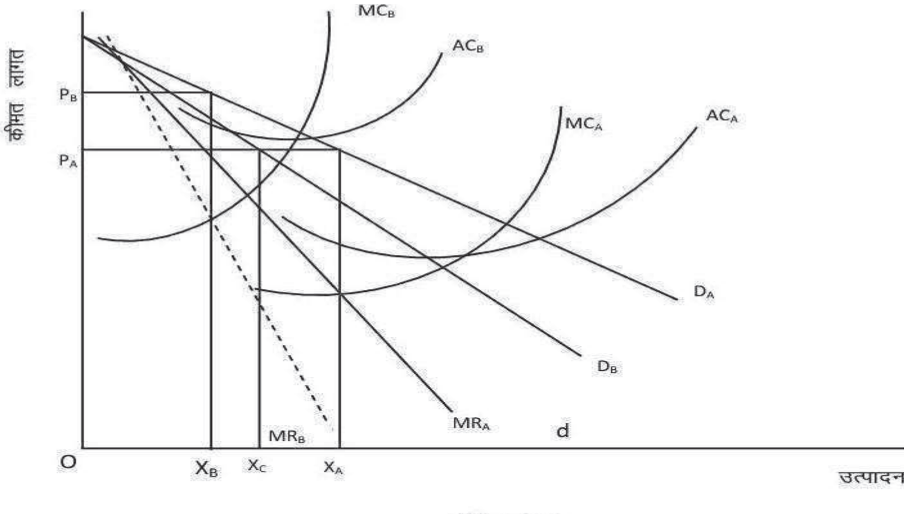

चित्र–21.9

यदि नेता फर्म तथा अनुयायी फर्म के बीच कोई समझौता नहीं है तो अनुयायी फर्म P_A कीमत पर X_C (या $X_2 = X_1$)से कम उत्पादन करके नेता फर्म । को गैर अधिकतमीकरण की स्थिति में धकेल सकती है।

प्रधान फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व

कीमत नेतृत्व की एक विशिष्ट स्थिति वह है जब एक उद्योग की कुछ फर्मों में से एक फर्म कुल उत्पादन के एक बहुत बड़े लाभ का उत्पादन करने के कारण बाजार पर अपना प्रभुत्व रखती है। यह प्रधान फर्म अपने मांग वक्र के अनुरूप वस्तु की कीमत का निर्धारण करती है, जिससे उसका लाभ

अधिकतम हो। अन्य फर्में छोटी होने के कारण बाजार पर प्रभाव डाल्ने की स्थिति में नहीं होती हैं तथा प्रधान फर्म द्वारा निर्धारित कीमत को स्वीकार करके उसके अनुसार अपने उत्पादन की मात्रा निश्चित करती है।

इस मॉडल में यह मान लिया जाता है कि प्रधान फर्म को वस्तु के बाजार मांग DD के संबंध में पूर्ण जानकारी है। साथ ही उसे अन्य छोटी फर्मों के MC वक्र की भी जानकारी है, जिसके क्षैतिज योग से, विभिन्न कीमतों पर छोटी फर्मों की वस्तु की आपूर्ति निर्धारित होती है। इस प्रकार प्रधान फर्म अपने अनुभव से विभिन्न कीमतों पर छोटी फर्मों द्वारा आपूर्ति का अनुमान लगा सकती है।

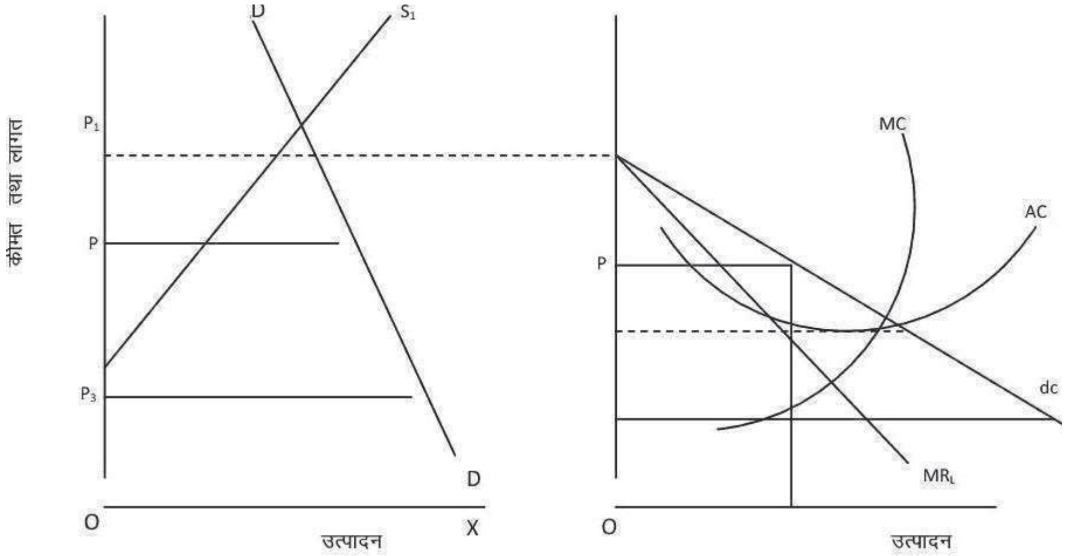

चित्र–21.9

चित्र 21.9 में DD बाजार मांग वक्र तथा Sm छोटी फर्मों द्वारा वस्तु की आपूर्ति को दर्शाता है। प्रत्येक कीमत पर प्रधान फर्म बाजार के उस हिस्से के बराबर उत्पादन करती है जिसकी आपूर्ति छोटी फर्मों द्वारा नहीं हो पाती है। उदाहरण के तौर पर P_1 कीमत पर प्रधान फर्म के उत्पाद की मांग शून्य होगी क्योंकि कुल बाजार मांग की आपूर्ति छोटी फर्मों द्वारा की जाती है। कीमत P_1 से नीचे गिरने पर प्रधान फर्म के उत्पाद की मांग बढ़ने लगती है। P_2 कीमत पर कुल बाजार मांग P_2B_1 है। इसका P_2A भाग के बराबर की आपूर्ति छोटी फर्मों द्वारा तथा बाकी AB भाग की आपूर्ति प्रधान फर्म द्वारा की जाएगी। P_3 कीमत पर कुल मांग P_3B_2 है, और इस कीमत पर छोटी फर्मों की आपूर्ति शून्य है। कुल बाजार मांग की आपूर्ति प्रधान फर्म द्वारा की जाती है। P_3 से कम कीमत पर प्रधान फर्म की मांग और बाजार मांग एक ही होगी।

चित्र 21.9 B में कस् प्रधान फर्म का मांग वक्र तथा MR उसके अनुरूप सीमान्त आय वक्र है। AC व MC औसत व सीमान्त लागत वक्र है। प्रधान फर्म P कीमत निर्धारित करेगी जहां उसका MR =

MC और उत्पादन OX_1 कीमत पर कुल बाजार मांग PB है, जिसका PA भाग छोटी फर्मों द्वारा तथा $AB = OX_1$ भाग प्रधान फर्म द्वारा आपूर्ति की जा रही है। छोटी फर्में प्रधान फर्म की कीमत का अनुसरण करेंगी इसलिए वे अपने लाभ को अधिकतम नहीं कर पाएंगी। उनका लाभ उनकी लागत संरचना पर निर्भर करेगा। प्रधान फर्म अपने लाभ को अधिकतम कर पाए इसके लिए यह आवश्यक है कि छोटी अनुयायी फर्में न सिर्फ प्रधान फर्म की कीमत स्वीकार करें बल्कि अपने बाजार हिस्से (A_1B_1) के बराबर उत्पादन भी करें; यदि छोटी फर्में A_1B_1 से ज्यादा या कम उत्पादन करती हैं तो बाजार मांग DD दी हुई होने पर वह अधिकतम लाभ की स्थिति में नहीं रहेगी। इस प्रकार कीमत नेतृत्व को सुरक्षित रखने तथा अपने लाभ को अधिकतम रखने के लिए प्रधान फर्म को छोटी अनुयायी फर्मों के साथ बाजार विभाजन विषयक समझौता करना आवश्यक हो जाता है।

आलोचना

कीमत नेतृत्व मॉडल के अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण की समस्या का एक स्थिर समाधान इस बात पर निर्भर करेगा कि अनुयायी फर्में कितनी निष्ठापूर्वक नेता फर्म का अनुसरण करती हैं। नेता फर्म का बड़ी होना तथा कम लागत वाली होना दोनों ही आवश्यक है।

किसी फर्म का कीमत नेतृत्व इस बात पर भी निर्भर करेगा कि वह अपने अनुयायी फर्मों की प्रतिक्रियाओं को कितना उचित ढंग से अनुमानित कर सकता है। दूसरे यदि नेता फर्म अपनी लागत कम होने के लाभ को बरकरार नहीं रख पाती है तो वह नेतृत्व करने की अपनी स्थिति खो देगी। वास्तविक उद्योग जगत में नये उत्पादों तथा तकनीकों के प्रवर्तन से अपेक्षाकृत छोटी फर्में उद्योग की नेता बन जाती है।

व्यवहार में, कीमत नेतृत्व के कई ऐसे उदाहरण मिल ते हैं जिसमें नेता फर्म न तो सबसे बड़ी होती है और न ही वह कम लागत वाली फर्म होती है। विशेषकर मंदी की स्थितियों में, बाजार में बने रहने के लिए अपेक्षाकृत छोटी फर्में अपनी कीमतें कम कर देती हैं। परन्तु वास्तव में नेतृत्व की क्षमता उस फर्म में होती है जो कि न सिर्फ कीमत में परिवर्तन करे बल्कि दीर्घकाल तक बनाए रखने में समर्थ हो।

नेता फर्म द्वारा कीमत ऊँची रखने पर प्रतिद्वंदी अन्य फर्में गुप्त कीमत कटौतियां कर सकती है तथा उद्योग में नयी फर्में आने को प्रेरित हो सकती हैं। यदि नयी फर्म को वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ की स्थिति हो तो वह धीरे-धीरे अपने बाजार हिस्से में विस्तार करते हुए, नेता फर्म बन सकती है।

21.8.3 बेरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व मॉडल

इस मॉडल में सभी फर्में औपचारिक या अनौपचारिक रूप से उस फर्म के कीमत परिवर्तन का अनुकरण करने को सहमत हो जाती हैं, जो कि बाजार की स्थितियों की बेहतर जानकारी रखती हो

तथा भविष्य में बाजार में होने वाले परिवर्तनों का बेहतर अनुमान लगा सकती हो। यह आवश्यक नहीं है कि ऐसी अनुभवी या पुरानी फर्म सबसे बड़ी हो या कम लागत वाली हो। यह वह फर्म होती है जो बाजार में वस्तु की मांग व लागत की स्थितियों और समस्त अर्थव्यवस्था की स्थितियों में परिवर्तन का पूर्वानुमान लगाने में एक बैरोमीटर की तरह कार्य करती है। बेरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व निम्नलिखित कारणों से विकसित होता है

1-अल्पाधिकारी उद्योग की बड़ी फर्मों के बीच प्रतिद्वंदिता से गला-काट प्रतियोगिता शुरु हो जाती है जिससे सभी फर्मों को हानि होती है। बड़ी फर्मों के बीच प्रतिद्वंदिता के कारण उनमें से किसी एक को उद्योग का नेता स्वीकार करना सम्भव नहीं होता है।

2-उद्योग की अधिकतर फर्मों को लागत, मांग तथा पूर्ति दशाओं की लाXतार गणना करते रहने की न तो क्षमता होती है और न ही इच्छा। इसलिए वे ऐसा करने वाली एक योग्य फर्म को अपना नेता मान लेती हैं।

3-सामान्यतया बेरोमेट्रिक फर्म उद्योग विशेष की लागतों तथा मांग दशाओं में परिवर्तनों तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों के संबंध में एक अच्छी भविष्यवक्ता होती हैं जिससे अन्य फर्मे उसे अपना नेता मानकर अपनी कीमत नीति तय करती हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कीमत दृढ़ता से क्या तात्पर्य है?
2. प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व तथा बैरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. कार्टेल से क्या तात्पर्य है?
4. बैरोमीटर कीमत नेतृत्व पर टिप्पणी लिखिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विकुंचित मांग वक्र का सिद्धान्त किस अर्थशास्त्री ने दिया?
2. क्रूनों मॉडल में उत्पादन लागत के सम्बन्ध में क्या मान्यता है?
3. यदि मांग वक्र में किसी बिन्दु पर $e = 1$हो तो उससे संबंधित सीमान्त आय (MR) कितनी होगी?
4. यदि छोटी अनुयायी फर्मे, प्रधान फर्म द्वारा निर्धारित कीमत को स्वीकार करती हैं परन्तु अपने बाजार हिस्से से कम उत्पादन करती हैं तो प्रधान फर्म का लाभ अधिकतम होगा या नहीं?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. क्रूनों मॉडल की मुख्य मान्यता है -

(क) प्रतिद्वंदी फर्मों के उत्पादन की स्थिरता

(ख) कीमत स्थिरता

(ग) परस्पर निर्भरता

(घ) बाजार नेतृत्व

2. अल्पाधिकार में विकुंचित मांग वक्र किस तथ्य की व्याख्या करता है?

(क) कीमत तथा उत्पादन निर्धारण

(ख) कीमत दृढ़ता

(ग) कीमत नेतृत्व

(घ) प्रतिद्वन्दियों के बीच कपट संधि

3.विकुंचित मांग वक्र में विकुंचन बिन्दु के ऊपर का भाग होता है-

(क) अधिक लोचदार

(ख) कम लोचदार

(X) शून्य लोचदार

(घ) अनन्त लोचदार

4. विकुंचित मांग वक्र में MR वक्र के अन्तराल की लम्बाई जितनी अधिक होगी -

(क) कीमत अपरिवर्तित रहने की सम्भावना उतनी ही कम होगी।

(ख) कीमत अपरिवर्तित रहने की सम्भावना अधिक होगी।

(ग) कीमत उतनी ही तेजी से बदलेगी।

(घ) उपर्युक्त तीनों असत्य हैं।

सत्य व असत्य बताइए

1. बैरोमीट्रिक फर्म वह होती है जिसका बाजार में हिस्सा सबसे अधिक होता है।
2. कार्टेल गैर-कपट संधि अल्पाधिकार के अंतर्गत आता है।
3. कार्टेल के अंतर्गत सदस्य फर्में एक केन्द्रीय कार्टेल एजेन्सी की स्थापना करते हैं जिसका मुख्य उद्देश्य उद्योग के लाभ को अधिकतम करना होता है।
4. क्रूनों मॉडल के दूयाधिकार मॉडल में तिहाई प्रत्येक फर्म मुख्य बजार मांग का एक तिहाई उत्पादन करती है।
5. चैम्बरलिन के अल्प समूह मॉडल में फर्में अपनी परस्पर निर्भरता को पहचान कर व्यवहार करती हैं।

21.9 बॉमल का अल्पाधिकार का बिक्री अधिकतम मॉडल

प्रो0 जे0एस0 बॉमल ने किसी फर्म द्वारा अपने लाभ को अधिकतम करने की मान्यता को चुनौती दी। विशेषकर एक अल्पाधिकारी का मुख्य उद्देश्य लाभ को नहीं बल्कि बिक्री को अधिकतम करना होता है। बिक्री अधिकतम से तात्पर्य बिक्री की भौतिक मात्रा को अधिकतम करने से नहीं है बल्कि बिक्री से प्राप्त कुल आय अर्थात् बिक्री के मौद्रिक मूल्य को अधिकतम करने से है। इसलिए बॉमल के इस सिद्धान्त को बिक्री अधिकतम मॉडल या 'आय अधिकतम मॉडल' कहा जाता है।

बॉमल के अनुसार आज के युग में फर्में उनके मालिक नहीं बल्कि प्रबन्धक चलाते हैं और व्यवसायिक प्रबन्धक के संबंध में यह मान्यता अधिक विवेकपूर्ण है कि वह न्यूनतम लाभ की शर्त के साथ फर्म की बिक्री को अधिकतम करने का प्रयास करता है। इस सिद्धान्त में प्रबन्धक की भूमिका को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। प्रबन्धक फर्म के उत्पाद के मूल्य, उत्पादन मात्रा एवं विज्ञापन नीति के निर्धारण में बिक्री अधिकतम करने को इसलिए अधिक महत्व देता है क्योंकि उसका निष्पादन तथा आत्महित इसी से जोड़कर देखा जाता है।

प्रो0 बॉमल लाभ के उद्देश्य की पूरी तरह उपेक्षा नहीं करते हैं। बिक्री बढ़ाने के साथ-साथ फर्म एक न्यूनतम लाभ अवश्य प्राप्त करना चाहती है जिससे कि फर्म के भावी विकास की वित्त व्यवस्था हो सके तथा अंशधारियों को उचित प्रतिफल मिल सके तथा शेयरधारकों की फर्म में रुचि बनी रहे। लाभ के इस न्यूनतम स्तर को प्राप्त करने के पश्चात फर्म का उद्देश्य लाभ के स्थान पर बिक्री बढ़ाना हो जाता है। प्रो0 बॉमल न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध की शर्त के साथ एक अल्पाधिकारी फर्म द्वारा, बिक्री अधिकतम के उद्देश्य को लेकर कीमत तथा उत्पादन मात्रा के निर्धारण की व्याख्या करते हैं।

मान्यताएँ

1. फर्म एक अवधि के दौरान अपनी कुल बिक्री आय को अधिकतम करने का प्रयास करती है।
2. न्यूनतम लाभ प्रतिबंध बर्हिजात रूप में मांग तथा अंशधारियों, बेंक व अन्य वित्तीय संस्थाओं के प्रत्याशाओं द्वारा निर्धारित होता है।
3. लागत वक्र, U - आकार के हैं तथा मांग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ ऋणात्मक ढाल का है।

बिना विज्ञापन के बॉमल का मॉडल

प्रो0 बॉमल के बिक्री आय को अधिकतम करने के मॉडल को चित्र 21.10 की सहायता से स्पष्ट कर सकते हैं। चित्र में TR कुल आय तथा TC कुल लागत वक्र है। TP कुल लाभ वक्र है जो कि विभिन्न उत्पादन स्तरों पर TR तथा TC का अन्तर है। जहां TC और TR बराबर हैं वहां कुल लाभ TP शून्य है।

यदि फर्म का उद्देश्य लाभ अधिकतम करना होगा तो वह OX_0 मात्रा का उत्पादन करेगी और उसका कुल लाभ EX_0(=BC)होगा जो कि अधिकतम है। TR वक्र के बिन्दु R_1 पर बिक्री अधिकतम है,

जहां सीमान्त आय शून्य तथा मांग की कीमत लोच (e) एक के बराबर है। जब फर्म की बिक्री अधिकतम है तो उत्पादन OX_1 है तथा लाभ X_1E_1 (= R_1C_1) है। जो कि अधिकतम लाभ (E_0X_0) से कम है। परन्तु यदि OX_1 उत्पादन पर प्राप्त लाभ E_1X_1 शेयरधारकों को संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं है तो फर्म अपने न्यूनतम लाभ के अनुसार अपने उत्पादन में समायोजन कर सकती है। यदि फर्म OP_2 (= X_2E_2) न्यूनतम लाभ अर्जित करना चाहती है तो वह OX_2 मात्रा का उत्पादन करेगी जो कि OX_1 से कम है। OX_2 उत्पादन पर फर्म की आय R_2X_2 है जो कि अधिकतम आय R_1X_1 की अपेक्षा कम है। स्पष्ट है कि फर्म न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध की शर्त के साथ अपनी बिक्री को अधिकतम करने का प्रयास करती है। न्यूनतम लाभ प्रतिबंध के साथ अधिकतम बिक्री आय का उद्देश्य अधिकतम लाभ वाले उत्पादन की तुलना में, अधिक उत्पादन तथा कम कीमत की ओर ले जाता है। क्योंकि कीमत = कुल आय/उत्पादन । OX_1 उत्पादन पर कीमत R_1X_1/OX के बराबर होगी।

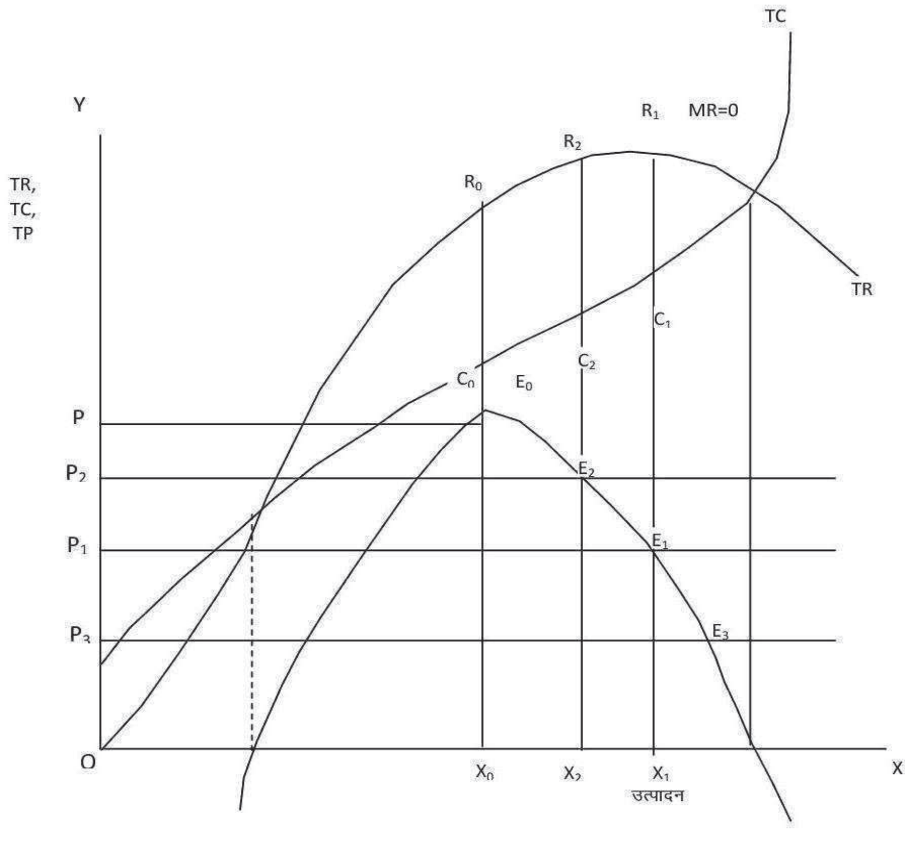

चित्र–21.10

यदि आवश्यक न्यूनतम लाभ OP_3 हो तो फर्म OX_1 मात्रा का उत्पादन करेगी, जो कि उसकी बिक्री को अधिकतम करता है। परंतु OX_1 उत्पादन स्तर पर फर्म का कुल लाभ OP_1 न्यूनतम आव9श्यक लाभ, OP_3 से अधिक है। स्पष्ट है कि यहां न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध कार्य नहीं कर रहा है। यदि न्यूनतम स्वीकार्य लाभ E_0X_0 (= OP) से अधिक है तो दी हुई लागत आय स्थितियों में वह उससे अधिक

लाभ प्राप्त नहीं कर सकती है। इसलिए फर्म को इस न्यूनतम स्वीकार्य लाभ स्तर से कम करना होगा या उद्योग छोड़ना होगा।

विज्ञापन सहित बॉमल का मॉडल

अल्पाधिकारी बाजार संरचना में एक फर्म के कीमत तथा उत्पादन निर्धारण में गैर कीमत प्रतियोगिता महत्वपूर्ण होती है। बॉमल अपने मॉडल में विज्ञापन व्यय से लेकर कीमत तथा उत्पादन निर्धारण की चर्चा करते हैं। यहां बॉमल यह मान लेते हैं कि किसी फर्म द्वारा विज्ञापन व्यय में वृद्धि सदैव बिक्री की भौतिक मात्रा में वृद्धि करेगी, परन्तु एक बिन्दु के बाद यह बिक्री घटती दर से बढ़ेगी। यदि वस्तु की कीमत दी हुई हो (स्थिर हो) तो बिक्री से कुल आय में हुई वृद्धि विज्ञापन व्यय में वृद्धि के परिणामस्वरूप बिक्री भौतिक मात्रा में वृद्धि के अनुपात में होगी।

चित्र 21.11 में OD विज्ञापन व्यय को बताता है जो कि मूल बिन्दु से 45^0 का कोण बनाता है। TC कुल लागत वक्र है जो कि विज्ञापन व्यय में अन्य लागतों की (स्थिर व परिवर्तनशील) निश्चित मात्रा का योग है। TR कुल आय वक्र है जो कि कीमत के स्थिर रहने पर विज्ञापन व्यय बढ़ने के साथ कुल आय में परिवर्तनों को बताता है। PP कुल लाभ वक्र है जो कि TR व TC का अन्तर है। यदि फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने की कोशिश करेगी तो उसका विज्ञापन व्यय OA_0होगा, जहां E_0X_0 कुल लाभ है जो कि अधिकतम है। यदि न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध OP ($=E_1A_1$) के

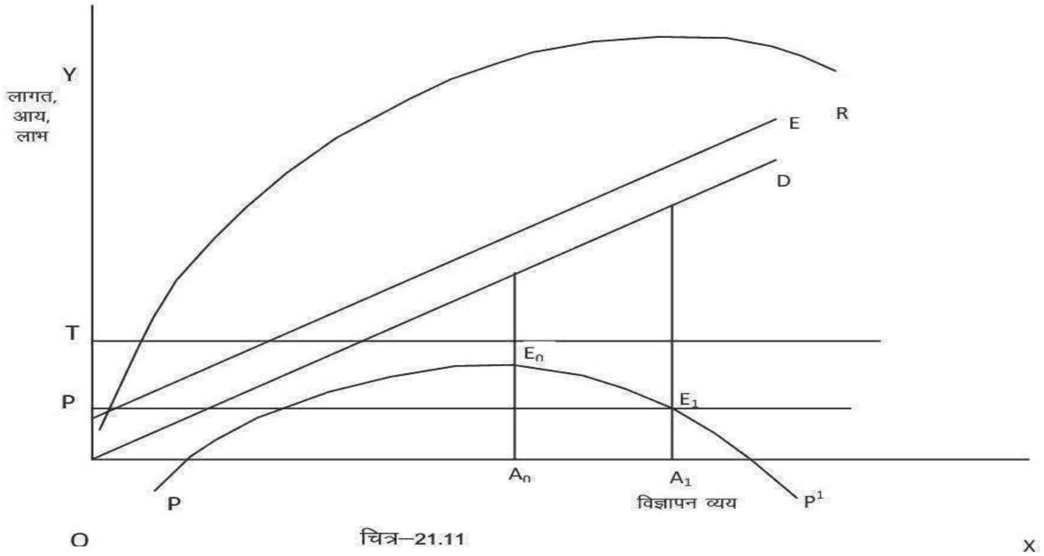

चित्र–21.11

बराबर हो तो फर्म का कुल विज्ञापन व्यय OA_1होगा। जो कि OX_0 से अधिक है। इस प्रकार फर्म अपने विज्ञापन व्यय को तब तक बढ़ाती है जब तक कि वह अपने न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध के स्तर तक न पहच जाए। उल्लेखनीय है कि यहां आय के अधिकतम होने की कोई सम्भावना नहीं होती है।

जैसा कि चित्र 21.11 में OX_1 उत्पादन मात्रा के अनुरूप X_1R_1 आय है, क्यांकि कीमत में कमी के विपरीत विज्ञापन व्यय में वृद्धि हमेशा कुल आय या बिक्री में वृद्धि करेगी।

आलोचना

1. दीर्घकाल में बॉमलके बिक्री अधिकतम तथा परम्पराXत लाभ अधिकतम मॉडल के परिणाम एक जैसे होंगे, क्योंकि न्यूनतम आवश्यक लाभ दीर्घकाल में लाभ के सामान्य स्तर के ही बराबर होगा।

2. बॉमल का सिद्धान्त फर्म के संतुलन तथा उद्योग के संतुलन में कोई अन्तर नहीं करता है। सभी फर्में अपने बिक्री क®अधिकतम करेंगी तो उद्योग का संतुलन कैसे होगा इसके बारे में यह सिद्धान्त कुछ नहीं कहता।

3. यह फर्मों के कीमत तथा उत्पादन संबंधी निर्णयों में परस्पर निर्भरता के तत्व की अवहेYना करता है। एक अल्पाधिकारी बाजार में प्रतिद्वन्दिता के वास्तविक तथा सम्भावित प्रतियोगिता की यह उपेक्षा करता है।

4. बिक्री अधिकतम करने वाली फर्म विस्थापन पर अपेक्षाकृत अधिक व्यय करती है। इसलिए यह सामाजिक रूप से अधिक स्वीकार्य हो यह आवश्यक नहीं है।

21.10सारांश

अल्पाधिकार वह बाजार स्थिति होती है जिसमें समरूप या विभेदीकृत वस्तुएं बेचने वाली थोड़ी सी फर्में होती हैं। इसकी मुख्य विशेषता परस्पर निर्भरता है, जिसके कारण अल्पाधिकारी मांग वक्र अनिश्चित होता है। अर्थशास्त्रियों ने अल्पाधिकारी समूह के व्यवहार, उनके उद्देश्यों तथा एक फर्म द्वारा कीमत व उत्पादन में परिवर्तन से उसकी प्रतिद्वंदी फर्मों के प्रतिक्रिया ढांचे के सम्बन्ध में मान्यताओं के आधार पर बहुत से माडलों का विकास किया है।

फर्मों की परस्पर निर्भरता के कारण अल्पाधिकारी बाजारों में स्वतंत्र रूप से कीमत निर्धारण करना काफी कठिन है। इसलिए प्रायः अल्पाधिकारी फर्मों के बीच किसी न किसी प्रकार का समझौता उद्योग विशेष में पाया जाता है। यह समझौता औपचारिक या अनौपचारिक हो सकता है परन्तु फर्मो के अनिश्चित व्यवहार के कारण अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत व उत्पादन का निर्धारण व एक स्थायी समाधान एक दुर्लभ कार्य है। अल्पाधिकार के अंतर्गत लाभ अधिकतम करने के मॉडल का एक विकल्प बिक्री अधिकतम मॉडल है।

21.11शब्दावली

द्वयाधिकार- द्वयाधिकार अल्पाधिकारी बाजार का एक विशेष सरलतम रूप है, जिसमें एक वस्तु के केवल दो उत्पादक या विक्रेता होते हैं।

विकुंचित मांग वक्र- अल्पाधिकार के अंतर्गत प्रायः मांग वक्र में विकुंचन होता है। यह विकुंचन वर्तमान कीमत पर होता है क्योंकि वर्तमान कीमत के ऊपर की आय अत्यधिक लोचदार तथा नीचे की आय बेलोचदार होता है।

कपट संधि- अल्पाधिकारी बाजारों में अनिश्चितता के कारण स्वतंत्र रूप से कीमत निर्धारण करना कठिन है। इसलिए अल्पाधिकारी फर्में प्रायः आपस में औपचारिक या अनौपचारिक समझौता कर लेती है, औपचारिक समझौते 'कपट संधि' कहे जाते हैं।

कार्टेल- एक उद्योग में स्वतंत्र फर्मों के संगठन को कार्टेल कहते हैं। कार्टेल कीमतों, उत्पादनों, बिक्रियों, वस्तु के वितरण और लाभ अधिकतमीकरण संबंधी समान नीतियों का अनुसरण करता है।

प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व- जब अल्पाधिकारी उद्योग की कुछ फर्मों में से एक फर्म का कुल उत्पादन के एक बहुत बड़े भाग पर नियंत्रण होता है तो इस बड़ी फर्म का बाजार पर अधिक प्रभाव होने के कारण वह वस्तु की कीमत निर्धारित करती है तथा अन्य छोटी फर्में उसका अनुसरण करती हैं। इसे प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व कहा जाता है।

बैरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व- जब एक फर्म जो कि बाजार में वस्तु की मांग , लागत तथा पूरी अर्थव्यवस्था के संदर्भ में बाजार स्थितियों में परिवर्तन का सही अनुमान Yगा पाती है तो उद्योग की अन्य फर्में वस्तु की कीमत परिवर्तन करने में इस फर्म का अनुसरण करती है। बैरोमीट्रिक कीमत नेता न्यूनतम लागत वाली प्रधान फर्म या सबसे बड़ी फर्म हो यह जरूरी नहीं है।

अभ्यास प्रश्न- 3

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. अल्पाधिकार का बिक्री अधिकतमीकरण मॉडल किसने प्रस्तुत किया?

(क) हॉल एवं हिच (ख) चैम्बरलिन

(ग) बॉमल (घ) स्वीजी

2. बिक्री अधिकतम मॉडल के लिए क्या सत्य है?

(क) उत्पादन स्तर बढ़ता है किन्तु कीमत स्तर गिर जाता है।

(ख) उत्पादन स्तर घटता है किन्तु कीमत स्तर बढ़ जाता है।

(ग) उत्पादन तथा कीमत स्तर दोनों बढ़ते हैं।

(घ) उत्पादन तथा कीमत स्तर दोनों गिर जाते हैं।

3. बॉमलके बिक्री अधिकतम मॉडल के लिए क्या असत्य है?

(क) बिक्री के मौद्रिक मूल्य को अधिकतम करना।

(ख) न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध की शर्त

(ग) बिक्री की भौतिक मात्रा को अधिकतम करना।

(घ) उपरोक्त सभी असत्य हैं।

20.12अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) ख (2) ग (3) घ

सत्य व असत्य बताइए

(1) असत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) सत्य (5) सत्य

अभ्यास प्रश्न-2

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) स्वीजी (2) लागत शून्य है (3) शून्य (4) नहीं

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) क (2) ख (3) ख (4) ख

सत्य व असत्य बताइए

(1) असत्य (2) असत्य (3) सत्य (4) सत्य (5) सत्य

अभ्यास प्रश्न-3

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) ग (2) क (3) ग

20.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Ferguson C.E., (1972), Micro Economic Theory, 3rd Edition, Homewood, III: R. D. Irwin.
2. Koutsoyiannis, A., (1979), Modern Microecomomics, 2nd Edition, Macmillan, London.
3. Ahuja H.L. (2006), Advanced Economic Theory: Microeconomic Analysis, S.Chand & Company Ltd.
4. E.U. Browing & J.M. Prowing, (1994), Microeconomic Theory & Applications, Kalyani Pub. New Delhi.

20.14 उपयोगी/सहायक ग्रंथ

1. Dwivedi D.N., (2006) Micro Economics: Theory & Applications, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd (Pearson).
2. Peterson, L. and Jain (2006), Managerial Economics, 4th edition Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd (Pearson).
3. Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill.
4. Mishra, S. K. and Puri, V. K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.
5. Panhaj Ghai & Anuj Gupta(2002), Microeconomic Theory & Applications II, Ist Edition, Sonp & Sons, New Delhi.
6. S.P.S. Chauhan (2009), Microeconomic Theory & Applications, Part-II, PHI Learning Private Ltd, New Delhi.
7. M. George Mankiw (1998), Principals of Microeconomics, Ist Edition, Elesevier.
8. Paul Krugman & Robin Wells (2010), Microecomics, 2nd Edition, WH Freman & Co.

9. D.S. Watson & M. Getz, Price Theory and its Uses. 5th Revised Edition.
10. J.P. Gould and E.P. Lazer (1989), Microeconomic Theory, 6th Edition. Homewood, III: R. D. Irwin .

21.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अल्पाधिकार की मुख्य विशेषताओं को बताइए। इसमें कीमत दृढ़ता क्यों पायी जाती है?
2. अल्पाधिकार में विकुंचित मांग वक्र सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
3. क्रूनों के दूयाधिकार मॉडल की सचित्र व्याख्या कीजिए। चैम्बरलिन का अल्प समूह मॉडल किस प्रकार क्रूनों मॉडल से भिन्न है?
4. कार्टेल के अंतर्गत संयुक्त लाभ अधिकतम कैसे होता है? उन कारणों को बताइए जिससे कार्टेल के टूटने की सम्भावना बनी रहती है।
5. एक प्रधान फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व के अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण की व्याख्या कीजिए।
6. बॉमल के बिक्री अधिकतम मॉडल की चित्र की सहायता से व्याख्या कीजिए- (A) जब फर्मों द्वारा विज्ञापन नहीं किया जा रहा हो, (B) जब फर्में अपने उत्पाद का विज्ञापन करती हों।

इकाई 22 साधनों का कीमत निर्धारण, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत

इकाई की रूपरेखा

22.0 प्रस्तावना
22.1 उद्देश्य
22.2 वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
22.2.1 सिद्धान्त का सामान्य कथन
22.2.2 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की मान्यताएँ
22.2.3 सीमान्त उत्पादकता का अर्थ
22.2.4 साधन बाजार में फर्म का सन्तुलन
22.2.5 पूर्ण प्रतियोगिता में साधन कीमत निर्धारण
22.3 सांराश
22.4 शब्दावली
22.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
22.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
22.7 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
22.8 निबन्धात्मक प्रश्न

22.0 प्रस्तावना

'वितरण' के अन्तर्गत उत्पदन के साधनों की कीमतों के निर्धारण का अध्ययन किया जाता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने 'साधनों की कीमत-निर्धारण' तथा 'वस्तुओं की कीमत-निर्धारण' में अन्तर किये थे। उन्होंने वस्तुओं के कीमत निर्धारण को 'कीमत-सिद्धान्त' का नाम दिया तथा 'साधनों की कीमत-निर्धारण' को 'वितरण के सिद्धान्त' का नाम दिया था। किन्तु आधुनिक 'अर्थशास्त्री' 'वस्तु की कीमत-निर्धारण' एवं 'साधन की कीमत-निर्धारण' के लिए अलग -अलग सिद्धान्तों को मान्यता नहीं देते हैं। इसका कारण यह है कि साधनों की कीमत का निर्धारण भी उसी 'माँग एवं पूर्ति' के सिद्धान्तों के द्वारा होता है। जिसके द्वारा वस्तु की कीमत का निर्धारण होता है। अतः आधुनिक अर्थशास्त्री साधनों की कीमत-निर्धारण को भी 'कीमत-सिद्धान्त' का एक भाग मानते है। इसीलिए साधनों की कीमतों के निर्धारण का अध्ययन व्यष्टि अर्थशास्त्र में किया जाता है।

22.1 उद्देश्य

इस सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्रीय आय में से भू-स्वामी को लगान का भुगतान किया जाता है। तत्पश्चात् श्रमिकों को मजदूरी दी जाती है और अन्त में जो राशि शेष बचते है वह साहसी को ब्याज, लाभ, लगान के रुप में कैसे प्राप्त होती है, का अध्ययन किया जायेगा। वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त जिसे साधन कीमत निर्धारण का सिद्धान्त भी कहा जाता है, कि किसी साधन का पुरस्कार उसके सीमान्त उत्पादन के समतुल्य होता है।

- उत्पादन साधनों - भूमि, श्रम, पूँजी तथा साहस का मूल्य निर्धारण करना।
- सभी साधनों का उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार मूल्य निर्धारण करना।
- भूमि की लगान , श्रम की मजदूरी, पूँजी का ब्याज तथा साहस का लाभ निर्धारण करना।
- उत्पादन साधनों की मांग एवं पूर्ति के अनुसार मूल्य निर्धारण करना।

22.2 वितरण का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त

वितरण का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त, उत्पादन के साधनों का पारिश्रमिक निर्धारित करने का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसे 'वितरण का केन्द्रीय सिद्धान्त' भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् 1894 में विक्सटीड वालरस जे0बी0 क्लार्क आदि अर्थशास्त्रियों ने किया था। बाद में श्रीमती जॉन रॉबिन्सन एवं प्रो0जे0आर0 हिक्स ने इसे आधुनिक रूप में विकसित किया।

22.2.1 सिद्धान्त का सामान्य कथन

''सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त यह बतलाता है कि एक साधन की कीमत उसकी उत्पादकता पर निर्भर होती है और वह सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है।''

साधनों की कीमत उनकी उत्पादकता पर निर्भर-साधन की माँग 'व्युत्पन्न माँग' होती है अतः साधनों की माँग उनके द्वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं की माँग पर निर्भर होती है। यदि वस्तु की माँग अधिक है तो साधन की माँग भी अधिक होगी क्योंकि अधिक मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए साधनों की माँग अधिक मात्रा में की जायेगी। इसके विपरीत, यदि उत्पादित वस्तु की माँग कम है तो वस्तु का कम मात्रा में उत्पादन करने के लिए साधन की माँगभी कम की जायेगी। साधनों की माँग उत्पादक के द्वारा इसलिए की जाती क्योंकि साधनों में वस्तुओं को उत्पादित करने की क्षमता होती है। दूसरे शब्दों में, साधनों की कीमत इसलिए दी जाती है क्योंकि उसमें उत्पादकता होती है।

साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर-किसी साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही क्यों दी जाती है, उसकी औसत उत्पादकता के बराबर क्यों नहीं? इसका उत्तर यह है कि साधनों के प्रयोग की दृष्टि से सीमान्त उत्पादकता एक फर्म के अधिकतम लाभ की स्थिति को बतलाती है। दूसरे शब्दों में, एक फर्म उत्पादन के साधन की विभिन्न इकाइयों का प्रयोग उस सीमा तक करता है जहाँ पर साधन की सीमान्त उत्पादकता और साधन के लिए दिये जाने वाला मूल्य दोनों एक दूसरे के बराबर हो जाते हैं। जिस प्रकार से एक फर्म को किसी वस्तु के उत्पादन में उस समय अधिकतम मौद्रिक लाभ प्राप्त होता है जिस उत्पादन पर फर्म की सीमान्त लागत और उसकी सीमान्त आय एक दूसरे के बराबर हो जाती है, ठीक उसी प्रकार, एक उत्पादक को अधिकतम लाभ तब प्राप्त होता है जबकि उसके साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उस साधन की सीमान्त लागत एक दूसरे के बराबर हो जाती है।चूँकि एक उत्पादक का भी उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है, अतः साधन की कीमत भी उसकी सीमान्त उत्पादकता के द्वारा निर्धारित होती है न कि औसत उत्पादकता के द्वारा। इसीलिए अर्थशास्त्रियों ने साधन के मूल्य निर्धारण करने के लिए सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

प्रायः यहाँ यह प्रश्न किया जाता है कि साधन की कीमत, साधन की उत्पादकता पर क्यों निर्भर करती है? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि वस्तु और साधन की माँग में अन्तर है। वस्तु की माँग प्रत्यक्ष रूप से, उस वस्तु से मिल ने वाली उपयोगिता के आधार पर की जाती है, जबकि साधन की माँग व्युत्पन्न माँग होती है। साधन की माँग इस बात पर निर्भर करती है कि 'साधन में उत्पादन करने की क्षमता कितनी है' अर्थात् साधन की माँग 'साधन की उत्पादकता पर निर्भर करती है', इसलिए यह कहा जाता है कि जिस साधन की उत्पादकता जितनी अधिक होगी, उसकी माँग

भी उतनी ही अधिक होगी और इसके विपरीत भी सही सिद्ध होगा। यही कारण है कि साधन की कीमत का निर्धारण साधन की सीमान्त उत्पादकता से तय होता है।

साधन की सीमान्त उत्पादकता के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है, उसे साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं।

22.2.2 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की मान्यताएँ

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित हैः-

1. पूर्ण प्रतियोगिता- यह मान लिया गया है कि बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की दशा पायी जाती है। क्रेता और विक्रेता आपस में प्रतियोगिता के आधार पर साधनों का क्रय-विक्रय करते तो हैं, परन्तु वे आपस में एक-दूसरे को प्रभावित नहीं कर सकते हैं।
2. साधनों का प्रतियोगी बाजार- उत्पत्ति के साधनों के द्वारा उत्पादित वस्तु का बाजार भी प्रतियोगी बाजार मान लिया जाता है।
3. उत्पत्ति के साधनों में समानता-उत्पत्ति के साधन की विभिन्न इकाइयाँ एक-दूसरे की पूर्ण स्थानापत्र भी होती है।
4. परिवर्तित साधन की कीमत की जानकारी-यह मान लिया गया है कि अन्य साधनों को स्थिर रखकर ‘साधन विशेष’ को परिवर्तित किया जाता है और परिवर्तित साधन की कीमत को ज्ञात कर लिया जाता है।
5. लाभ का अधिकतम करना-प्रत्येक उत्पादक तथा फर्म का अन्तिम उद्देश्य यह होता है कि वह अपने लाभ में अधिकमत वृद्धि कर लेता है।
6. उत्पत्ति ह्नास नियम की मान्यता-यह मान लिया गया है क उत्पादन में उत्पत्ति ह्नास नियम लागू होता है।
7. सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त-पूर्ण रोजगार की धारणा को मानकर कार्य करता है।

22.2.3 सीमान्त उत्पादकता का अर्थ

अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुछ उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं। दूसरे शब्दों में, साधन की एक अतिरिक्त इकाई से होने वाले उत्पदान को उस साधन की सीमान्त उत्पादकता कहा जाता है। प्रो0 हिक्स के अनुसार ‘‘सीमान्त उत्पादकता जो किसी उपादान को सन्तुलन की दशा में मिल ने वाले वास्तविक पुरस्कार का माप है, वह वृद्धि है जो किसी फर्म की उत्पत्ति में किसी उपादान की पूर्ति की एक इकाई बढ़ाने से सम्भव होती है, जबकि फर्म का संगठन उत्पादन के नये स्त के साथ समायोजित हो गया हो, परन्तु फर्म के शेष संगठन में, जिसमें कीमतों की सामान्य प्रणाली भी

सम्मिलित है, कोई परिवर्तन न हुआ हो।'' सीमान्त उत्पादकता को तीन प्रकार से व्यक्त किया जा सकता हैः-

i. **सीमान्त भौतिक उत्पादकता** - जब कभी सीमान्त उत्पादकता को 'वस्तु की भौतिक मात्रा' में व्यक्त किया जाता है तब उसे 'सीमान्त-भौतिक उत्पादकता' कहा जाता है।

जब उत्पादन के क्षेत्र में अन्य साधनों को स्थिर रखकर किसी एक साधन की एक अतिरिक्त

काई को उत्तरोत्तर बढ़ाया जाता है, तब इस साधन के प्रयोग के परिणामस्वरूप कुल भौतिक उत्पादन में जो वृद्धि होती है उस अतिरिक्त वृद्धि को उस साधन की 'सीमान्त-भौतिक उत्पादकता' कहा जाता है।

उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थात् परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के क्रियाशील होने के कारण प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन की भौतिक उत्पादकता बढ़ती है। उत्पादकता बढ़ते-बढ़ते एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाती है, जो सबसे अधिक होती है और इस चरम बिन्दु के बाद साधन की भौतिक उत्पादकता घटनी प्रारम्भ हो जाती है।

ii. **सीमान्त आगम उत्पादकता**- फर्म या उत्पादक की नजर केवल इस पर ही नहीं कि उसे उसके साध के द्वारा कितनी मात्रा में भौतिक उत्पादन उपलब्ध कराया जा रहा है, बल्कि उसकी नजर इस बात पर भी रहती है कि वस्तु को बेचकर उसे कितन आय प्राप्त हो रही है, अर्थात् प्रत्येक फर्म या उत्पादक का हित सीमान्त-भौतिक उत्पादकता (MPP)की अपेक्षा सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) पर निर्भर है। अतः प्रत्येक फर्म या उत्पादक यह जानना चाहता है कि, किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई को लगाने से उसकी कुल आय में कितनी वृद्धि होती है। सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) को हम इस प्रकार से भी परिभाषित कर सकते हैं कि, अन्य साधनों को स्थिर रखने के बाद, परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल आय में जो वृद्धि होती है, उसे साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता कहते है। सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) को दूसरे शब्दों में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MRP) को सीमान्त आगम (MR)से गुणा कर दें, तो हमें सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) प्राप्त हो जायेगा। संक्षेप में,

$$MRP \times MR = MRP$$

iii. सीमान्त मूल्य उत्पादकता (Marginal Value Product or MVP) -'सीमान्त मूल्य उत्पाद' अथवा सीमान्त मूल्य उत्पादकता को तब प्राप्त किया जा सकता है, जबकि सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को उत्पाद ;च्तवकनबजद्ध की कीमत से गुणा कर दिया जाय।

दूसरे शब्दों में $$MVP = MPP \times Price$$

चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य AR = MR

इसलिए MVP = MPP x MR = MRP

अतः यह कहा जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त उपज का मूल्य या सीमान्त मूल्य उत्पाद (MVP) और सीमान्त आगम उत्पादकता (M RP) एक ही होती है।

22.2.4 साधन बाजार में फर्म का सन्तुलन

जिस प्रकार वस्तु के बाजार में फर्म के सन्तुलन का अध्ययन किया जाता है उसी प्रकार साधन बाजार में फर्म के सन्तुलन का अध्ययन किया जा सकता है। उत्पादन बाजार फर्म के सन्तुलन का अभिप्राय यह है कि फर्म प्रत्येक साधन की कितनी मात्रा का प्रयोग करती है और उसके लिए कितना मूल्य देती है। हम उत्पादन बाजार में फर्म के सन्तुलन का अध्ययन पूर्ण तथा अपूर्ण दोनों ही प्रतियोगिताओं के अन्तर्गत कर सकते हैं।

22.2.5 **(I)** पूर्ण प्रतियोगिता में साधन कीमत का निर्धारण

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कोई भी फर्म साधन की कीमत पर प्रभाव नहीं डाल् सकती है। क्योंकि उद्योग द्वारा फर्म के लिए श्रम की मजदूरी दी हुई मान ली जाती है। संक्षेप में, फर्म को प्रचलित मजदूरी की दर पर श्रम की इकाई को क्रय करना होता है। इस दर पर वह श्रम की जितनी चाहे उतनी मात्रा क्रय कर सकती है, ऐसी दशा में सीमान्त मजदूरी और औसत मजदूरी एक-दूसरे के बराबर होती हैं, इसलिए उन्हें एक पड़ी हुई रेखा के द्वारा दिखाया जा सकता है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत:

प्रचलित मजदूरी = सीमान्त मजदूरी = औसत मजदूरी होती है।

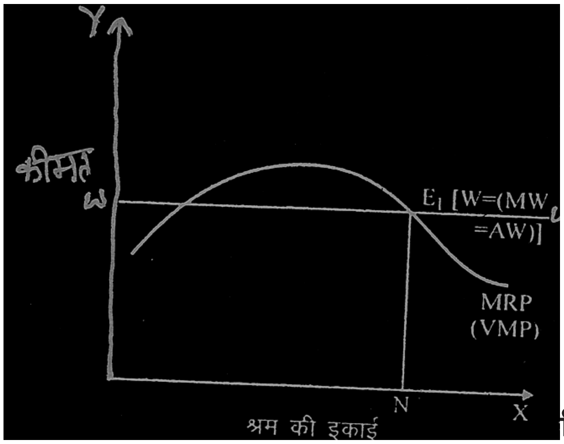

चित्र 22.1

फर्म के साम्य को निम्नांकित चित्र में स्पष्ट किया गया है। चित्र में MRP वक्र श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता है जो सीमान्त उपज के मूल्य (VMP) के बराबर, है, क्योंकि बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की शर्त मान ली गयी है। MW = AW एक सीधी पड़ी सरल रेखा है जो इस बात को बताती है कि

प्रचलित मजदूरी की दर पर फर्म जितनी मात्रा में चाहे श्रम को खरीद सकती है। फर्म का सन्तुलन वहाँ होगा जहाँ MRP वक्र MW = AW वक्र को ऊपर से नीचे को काटता है। चित्र 22.1 में यह स्थिति बिन्दु E_1से स्पष्ट की गयी है। इस बिन्दु पर फर्म सन्तुलन की स्थिति में होगी और उसका लाभ भी अधिकतम होगा। फर्म के सन्तुलन E_1 पर फर्म प्रचलित मजदूर की दर से ON मात्रा में श्रम को क्रय करेगी। E_1 बिन्दु के बाद MRP वक्र MW = AW के नीचे चला जाता है अर्थात् श्रम की सीमान्त उत्पादकता प्रचलित मजदूरी की दर से कम रह जाती है। अतः फर्म के द्वारा श्रम को ON मात्रा से अधिक मात्रा में नहीं लगाया जायेगा।

अल्पकाल में फर्म को साधन की इकाइयों के प्रयोग से लाभ या हानि हो सकती है।

(1) अल्पकाल में फर्म को लाभ. फर्म के लाभ को चित्र 22.2 में स्पष्ट किया गया है। किसी भी साधन की कीमत उस बिन्दु पर तय होगी जहाँ पर MRP = MFC के होगा अर्थात् सीमान्त आय उत्पादकता त्र सीमान्त साधन लागत के।

चित्र में E बिन्दु पर MEP = MFC के है। इस बिन्दु पर सीमान्त आय उत्पादकता और

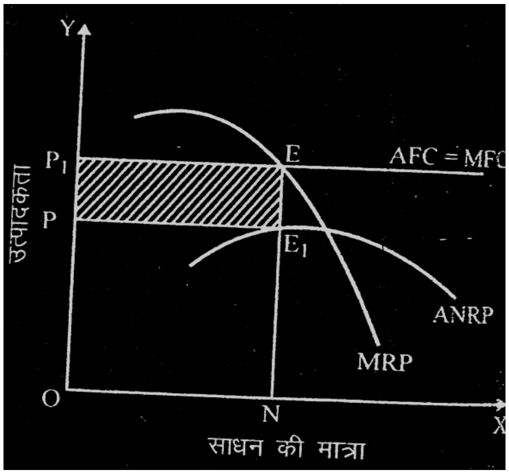

चित्र 22.2

सीमान्त साधन लागत एक-दूसरे के बराबर हैं, इसलिए साधन की कीमत NE या OP होगी। इस कीमत पर ON मात्रा में साधन की माँग की जायेगी।

फर्म को साधन की इकाइयों के लगाने से लाभ होगा अथवा हानि? इस बात का पता लगाने के लिए औसत शुद्ध आगम उत्पादकता (ANRP) और औसत साधन लागत (AFC) की तुलना करनी होगी। यदि ANRP, AFC से अधिक है, तो वह लाभ की स्थिति होगी औ र कम होने पर हानि होगी, चित्र 22.3 में लाभ PEE_1P_1 से दिखाया गया है।

(2) अल्पकाल में हानि-यदि अल्पकाल में शुद्ध आगम उत्पादकता (ANRP) से साधन की कीमत ऊँची है, तो फर्म की हानि होगी, जैसा कि चित्र 22.3 में स्पष्ट किया गया है। चित्र के अनुसार साधन की कीमत OP_1 है, जबकि

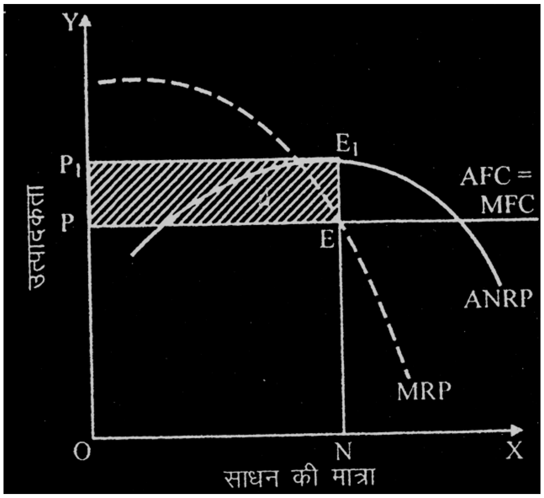

चित्र 22.3

साधन की उत्पादकता OP है। इस प्रकार फर्म की हानि PE_1EP_1 के बराबर है।

(3) दीर्घकाल में सामान्य लाभ -दीर्घकाल में फर्म को साधन की इकाइयां के प्रयोग से केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा। अर्थात् दीर्घकाल में एक फर्म का AFC ANRP के बराबर होगा। यदि AFC, ANRP से कम है तो फर्म को साधन की इकाइयों के प्रयोग से लाभ प्राप्त होगा। स्पष्ट है की अनेक फर्में इस लाभ से आकर्षित होकर उद्योग में प्रवेश करेंगी जिससे साधन की माँग उत्तरोत्तर

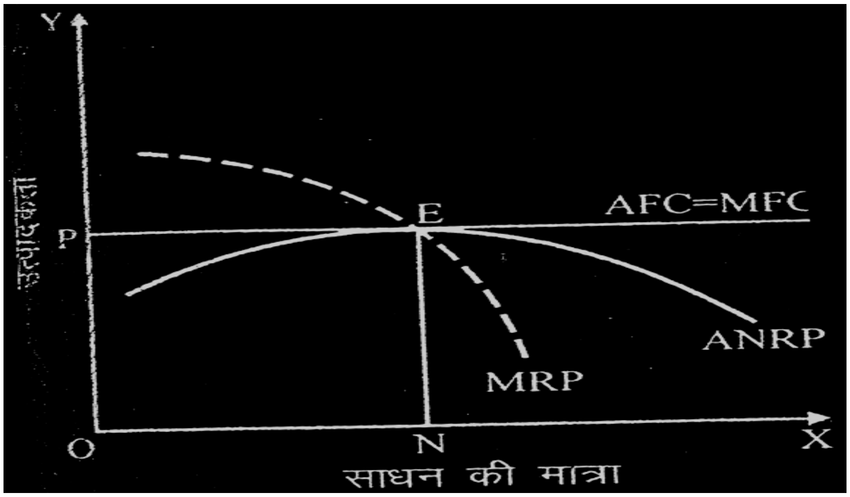

चित्र 22.4

बढ़ने लगेगी। माँग के बढ़ने के कारण साधन का AFC बढ़कर ANRP के बराबर हो जायेगा। यदि AFC, ANRP से बढ़ जाता है, तो फर्मों के द्वारा साधन की माँग नहीं की जायेगी, क्योंकि इस स्थिति में फर्म को हानि उठानी होती है। फर्मों द्वारा साधनों की माँग के कम कर देने से धीरे-धीरे AFCघटने लगेगी और अन्त में यह घटते-घटते ANRP के बराबर हो जाती है। इस प्रकार दीर्घकाल में फर्मों को सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा। दीर्घकाल में फर्म तथा उद्योग के साम्य के लिए निम्नलिखित दशाओं का पूरा होना आवश्यक है:-

(i) MRP = MFC (ii) ANRP = AFC

यहाँ MFC का तात्पर्य सीमान्त परिश्रमिक से है। चित्र 22.4 में इस स्थिति को स्पष्ट किया गया है। चित्र में E बिन्दु पर MRP = MFC = ANRP = AFC के है। अतः साधन की कीमत NE या OP निर्धारित होती है। इस साम्य पर फर्म के द्वारा साधन की ON मात्रा की माँग की जायेगी तथा फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा।

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचनाएँ

1. इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन-साधन की सभी इकाइयाँ सजातीय होती है जबकि वास्तविक व्यवहार में उत्पादन-साधन की इकाइयाँ विजातीय होती हैं।

2. इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न उपयोगों के बीच उत्पादन-साधनों की गति शील ता पूर्ण होती है। जबकि यह मान्यता सही नहीं है। भूमि में तो गति शील ता का पूर्ण अभाव होता ही है, पूँजी व श्रम भी पूर्णतः गति शील नहीं होते। जिससे उनकी सीमान्त उत्पादकता समान नहीं हो सकती।

3. इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन साधन पूर्णतया विभाज्य होते हैं। परिणामतः उनकी मात्राओं में अनन्त सूक्ष्म परिवर्तन किये जा सकते हैं। सत्य तो यह है कि एक निश्चित सीमा से आगे उत्पादन-साधन अविभाज्य हो जाते हैं।

4. इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन-प्रक्रिया में साधन के अनुपातों को बदला जा सकता है। जबकि प्रावैधिक अन्य कारणों से सामान्यतया ऐसा सम्भव नहीं होता।

5. आलोचकों के अनुसार बड़े उद्योगों तथा कुछ विशेष परिस्थितियों में किसी एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को मापना ही सम्भव नहीं होता।

6. कुछ आलोचक इसे वास्तविक नहीं मानते। क्योंकि सिद्धान्त सामान्यतः साधन के पारिश्रमिक को दिया हुआ तथा स्थिर मानता है।

7. इस सिद्धान्त के अनुसार किसी उत्पादन-साधन की सीमान्त उत्पादकता उसके पारिश्रमिक को प्रभावित करती है,

8. यह सिद्धान्त स्थिर अथवा आनुपातिक प्रतिफल नियम की मान्यता पर आधारित है। जबकि वास्तविक जीवन में वर्धमान अथवा ह्रासमान प्रतिफल नियम भी कार्यशील होता है।

9. यह सिद्धान्त साधन के कीमत-निर्धारण की केवल दीर्घकालीन व्याख्या ही हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

10. यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की गलत एवं अवास्तविक धारणा पर निर्मित किया गया है।

11. कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त को इस आधार पर स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है कि यह पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के वर्तमान आय-वितरण को उचित बताता है जबकि इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह वितरण अन्यायपूर्ण ही नहीं, बल्कि असमतायुक्त भी है।

12. कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त की इस आधार पर आलोचना की है कि सीमान्त उत्पादकता आय-वितरण के लिए कोई वास्तविक आधार प्रस्तुत नहीं करती और न ही किसी उत्पादन-साधन के पारिश्रमिक तथा उसकी सीमान्त उत्पादकता के बीच कोई घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

13. यह सिद्धान्त उत्पादन-साधन की पूर्ति को स्थिर मानकर चलता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि भूमि को छोड़कर किसी भी साधन की पूर्ति स्थिर नहीं है, विशेषकर दीर्घकाल में तो किसी भी साधन की पूर्ति स्थिर नहीं होती।

14. यह सिद्धान्त केवल मांग पक्ष पर बल देने के कारण एकपक्षीय है।

19.4 वितरण का आधुनिक सिद्धान्त अथवा मांग एवं पूर्ति सिद्धांत

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धांत एकपक्षीय है क्योंकि यह केवल मांग -पक्ष पर ही बल देता है। वितरण का सही सिद्धांत माँग एवं पूर्ति का सिद्धांत है जिसमें वस्तु के मूल्य-निर्धारण की ही तरह माँग एवं पूर्ति की शक्तियों के क्रियाशील न के कारण उत्पादन के साधन का मूल्य अथवा पारितोषिक निर्धारित होता है।

19.4.1 मांग -पक्ष: किसी वस्तु की मांग इसलिए होती है क्योंकि उससे उपभोक्ताओं के प्रत्यक्ष उपयोगिता मिल ती है। साधन की भी एक उपयोगिता होती है पर यह व्युत्पादित होती है। तात्पर्य यह है कि साधन की मांग उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। कोई भी उत्पादक इससे अधिक पारिश्रमिक के रूप में किसी भी साधन को नहीं देगा। जिसकी व्याख्या सीमान्त उत्पाकदता के सम्बन्ध में की जा चुकी है।

19.4.2 पूर्ति-पक्ष: पूर्ति-पक्ष अथवा लागत-पक्ष वह न्यूनतम सीमा है जिससे कम पर कोई उत्पादन का साधन कार्य करने के लिए तैयार नहीं होता है। वह न्यूनतम सीमा साधन के त्याग पर निर्भर करती है और जैसे-जैसे किसी साधन की मात्रा बढ़ती जाती है वैसे-वैसे अन्य परिस्थितियों के समान रहने पर, त्याग बढ़ता जाता है। सीमान्त त्याग की माप अवसर लागत के आधार पर करते है।

19.4.3 संतुलन: इस प्रकार किसी भी साधन का मूल्य या पारिश्रमिक सीमान्त उत्पादकता पर आधारित मांग तथा त्याग पर आधारित पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है तथा मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ साधन की सीमान्त उत्पादकता उसके सीमान्त त्याग के बराबर हो जाये। इस स्थिति का प्रदर्शन रेखाचित्र नं0 19.4 के माध्यम से किया जा सकता है।

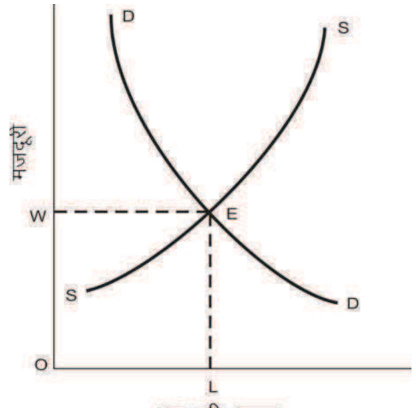

चित्र नं0 19:4

इस रेखाचित्र में सीमान्त उत्पादकता पर आधारित मांग वक्र (DD) तथा सीमान्त त्याग पर आधारित पूर्ति वक्र (SS) एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। उत्पादक OL साधनों को लगायेगा तथा OW पारिश्रमिक देगा।

वितरण के मांग एवं पूर्ति सिद्धांत की व्याख्या विशेषरूप से मजदूरी के सन्दर्भ में की गयी है, पर यहाँ इतना स्पष्ट कर देना उचित होगा कि किसी साधन के मांग एवं पूर्ति के ऊपर बाजार की दशाओं का भी प्रभाव पड़ेगा। क्योंकि किसी साधन की मांग उस साधन की सीमान्त उत्पादकता या सीमान्त आय उत्पादन के ऊपर निर्भर करता है और सीमान्त आय उत्पादन के ऊपर उस बाजार की दशाओं का प्रभाव पड़ेगा जिसमें साधन द्वारा उत्पादित वस्तुयें बेची जायेंगी। इस प्रकार किसी साधन के मूल्य-निर्धारण के सम्बन्ध में, माँग एवं पूर्ति की इन विभिन्न दशाओं के आधार पर, निम्नांकित प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती है -

1. जब वस्तु बाजार तथा साधन-बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता हो।

2. जब वस्तु बाजार तथा साधन-बाजार दोनों में अपूर्ण प्रतियोगिता हो।

3. जब वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता तथा साधन-बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता हो।

4. जब वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता तथा साधन-बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हो।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. किसी साधन की सीमान्त भौतिक उत्पदकता (MPP) होती हैः-

A. अन्य साधन स्थिर रहने पर, किसी साधन की मात्रा में परिवर्तन के परिणामस्वरूप कुल भौतिक उत्पादन में जो वृद्धि होती है।
B. अतिरिक्त प्राप्त होने वाला आगम।
C. एक साधन की परिवर्तनशील मात्रा से स्थिर साधनों को प्राप्त होने वाली आय।
D. उपर्युक्त में से कोई नहीं।

2. साधन की एक इकाई बढ़ने से कुल उत्पादन में जो मात्रा की वृद्धि होती है उसेः-

A. न्याय का सिद्धान्त भी कहा जाता है
B. सीमान्त आगम उत्पादकता कहते हैं
C. औसत आगम उत्पादकता कहते हैं
D. सीमान्त आगम कहते है

3. किसी साधन का MRP होता हैः-

A.MRP x MR B. MRP x साधन की कीमत

C. MRP x MR D.इनमें से कोई नहीं

4. निम्नलिखित कौन अर्थशास्त्री वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त से सम्बन्धित है:-

A. जे0 बी0 क्लार्क B. डाल्टन C. एजवर्थ D. पीगू

5. साधनों की कीमत निर्धारण के लिए वस्तु सिद्धान्त से अलग सिद्धान्त की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि:-

A. साधन की व्युत्पन्न माँग होती है B. साधन की साधारण माँग होती है

C. साधन की पूर्ति स्थिर रहती है D. इनमें से कोई नहीं

6. किसी एक साधन की सीमान्त एवं औसत आगम उत्पादकता वक्र ;डत्च् एवं ।त्च्द्धः-

A. X अक्ष के समानान्तर एक सीधी रेखा होती है

B. Y अक्ष के समानान्तर एक सीधी रेखा होती है

C. उल्टे की आकृति की एक रेखा होती है

D. उल्टे की भाँति दो रेखाएँ होती है

उत्तर:- 1- **1– (a), 2– (a), 3– (a), 4– (a), 5– (a), 6– (d)]**

लघु -उत्तरीय प्रश्न

1. व्युत्पन्न माँग किसे कहते हैं ?

2. उत्पत्ति के साधनों की माँग संयुक्त माँग होती है क्यों ?

3. वितरण की सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त क्या निष्कर्ष प्रस्तुत करता है ?

4. साधन कीमत निर्धारण एवं वस्तु निर्धारण में क्या अन्तर है ?

5. सीमान्त भौतिक उत्पादन तथा सीमान्त आगम उत्पादन में अन्तर बताइए ?

6. वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त में किन-किन अर्थशास्त्रियों का योग दान रहा है ?

22.3 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त यह बतलाता है कि एक साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है। उत्पादन के अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे ही उस साधन की 'सीमान्त उत्पादकता' कहते हैं । पूर्ण प्रतियोगिक के अन्तर्गत सीमान्त आगम उत्पादकता एवं औसत आगम उत्पादकता वक्र की प्रवृत्ति अंग्रेजी के U अक्षर के उल्टे आकार की होती है। सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र, औसत उत्पादकता वक्र एवं औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता वक्र को उनके उच्चतम बिन्दु पर काटते हुए नीचे तीव्र गति से गिरता है। सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र को साधन विशेष का माँग

वक्र भी कहा जाता है। एक फर्म साधन विशेष का प्रयोग उस सीमा तक करता है जहाँ साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता और साधन की सीमान्त लागत एक दूसरे के बराबर होती है। इस साम्य बिन्दु पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। इसी साम्य बिन्दु पर साधन को कीमत निर्धारित होती है।

वितरण का आधुनिक सिद्धान्त- माँग एवं पूर्ति का सिद्धान्त है।

साधन की माँग व्युत्पन्न माँग होती है। माँग पक्ष की ओर से साधन की सीमान्त आय उत्पादकता वक्र, साधन की माँग वक्र होता है। साधन की पूर्ति उसकी अवसर लागत होती है।

22.4 शब्दावली

सीमान्त भौतिक उत्पादकता- जब साधन की सीमान्त उत्पादकता को वस्तु की भौतिक मात्रा में व्यक्त किया जाता है तब उसे सीमान्त उत्पादकता कहते हैं।

सीमान्त आगम उत्पादकता- उत्पादन के अन्य साधनों को स्थिर साधनों जिनका प्रयोग परिवर्तनशील साधनों के साथ किया गया है, के योग दान को घटा दिया जाता है तो जो शेष बचता है उसे सीमान्त विशुद्ध आगम उत्पादकता कहते हैं।

औसत भौतिक उत्पादकता- जब कुल भौतिक उत्पादन को परिवर्तनशील साधन की इकाइयां से भाग दिया जाता है तो उस साधन की औसत भौतिक उत्पादकता प्राप्त हो जाती है।

औसत आगम उत्पादकता- कुल आय को परिवर्तनशील साधन की कुल इकाइयों से भाग देने से जो भजनफल प्राप्त होता है वह उस साधन की औसत आगम उत्पादकता कहलाती है।

औसत विशुद्ध उत्पादकता- औसत आगम उत्पादकता में से स्थिर साधनों के योग दान को घटा देने के बाद शेष बचता है उसे औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता कहते हैं।

22.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न

उत्तर:- 1- **1– (a), 2– (a), 3– (a), 4– (a), 5– (a), 6– (d)],**

22.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्रा, जे0पी0 (2009): उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त -मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन,वाराणसी।

2. सिन्हा, वी0सी0 (1990): उन्नत आर्थिक सिद्धान्त, स्टूडेन्ट फ्रेन्डस इलाहाबाद।

3. आहुजा, एम0एल0 (2006): उच्च आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक विश्लेषण, चन्द्र प्रकाशन, दिल्ली।

4. लाल, एस0 एन0 (2005): उच्च आर्थिक सिद्धान्त, शिवा पब्लिशिंग हाऊस -इलाहाबाद।

5. लाल, एस0 एन0 (2008): माइक्रों इकोनामिक्स:शिवा पब्लिशिंगहाऊस - इलाहाबाद।

6. जैन, पी0 सी0 (1995): उच्च आर्थिक विश्लेषण, चुग प्रकाशन, इलाहाबाद।

7. त्रिपाठी, बद्री विशाल (2000): एडवांस इकोनोमिक थ्योरी,किताब महल्, इलाहाबाद।

22.7सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

1. Mehta,J.K.(1980):EconomicTheory,ChughPublications,Allahabad.
2. Jhingan, M.L. (2007) : Advanced Economic Theory, Vrinda Prakashan, New Delhi.
3. Seth, M.L. (2007): Micro Economics, L.N. Agrwal Publications, Agra.
4. P. Samuelson (1967) : Micro Economic Theory & Policy, Oxford University Press, U.K.
5. Dhingra, I.S. (2005) : Advaned Economics Theory New Century Publication. Delhi
6. Tripathi, B.B. (2000) : Micro Economics, Kitab Mahal Allahabad.

22.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साधन कीमत का निर्धारण कैसे होता है। चित्र द्वारा व्याख्या कीजिए।
2. वितरण में सीमान्त उत्पादकों के सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए तथा इसकी तुलना वितरण के आधुनिक सिद्धान्त से कीजिए।
3. वितरण के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
4. वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए और इसकी सीमाएँ बताइए।

इकाई 23साधन कीमत निर्धारण-अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत

इकाई की रूपरेखा

23.0 प्रस्तावना
23.1 उद्देश्य
23.2 साधन बाजार में क्रय एकाधिकार तथा पदार्थ बाजार में एकाधिकार अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता
23.3 सांराश
23.4 शब्दावली
23.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
23.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
23.7 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
23.8 निबन्धात्मक प्रश्न

23.0 प्रस्तावना

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साधनों के कीमत निर्धारण की स्थिरता जब उत्पन्न होती है तो श्रम बाजार में कुछ उत्पादक, शेष उत्पादकों की तुलना में अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में सभी उत्पादक संगठित होकर अपना एक संघ बना लेते हैं जिसके माध्यम से बाजार में मजदूरी दर को नियंत्रित कर लेते हैं इसके प्रत्युक्तर में श्रमिकों के अंसठित होने से उन्हें जो पारिश्रामिक दी जाती है उसे वे स्वीकार करने को मजबूर हो जाते हैं। वास्तविकता यह होती है तब मजदूरी का निर्धारण उत्पादकों व श्रमिकों के संघों के बीच सौदा करने की शक्ति से निर्धारित होता है।

23.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- अपूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादन साधनों - भूमि, श्रम, पूँजी तथा साहस का मूल्य निर्धारण करना।
- अपूर्ण प्रतियोगिता में सभी साधनों का उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार मूल्य निर्धारण करना।

23.2 साधन बाजार में क्रय एकाधिकार तथा पदार्थ बाजार में एकाधिकार अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मतानुसार किसी भी वस्तु का उत्पादन, उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के अपने लाभ को अधिकतम करना होता है अतः साधन की कीमत भी उसकी सीमान्त उत्पादकता के द्वारा निर्धारित होता है। इसके अन्तर्गत हम श्रमिकों के शोषण का अध्ययन करते हैं। अर्थात् यदि श्रम बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो और वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो तो श्रमिक संघ श्रमिकों को शोषण कैसे करा पाता है इसका अध्ययन के रुप में लिया गया है।

अपूर्ण प्रतियोगिता वाले श्रम बाजार की कई दशाएँ हो सकती हैं, परन्तु हम यहाँ विशेषकर दो दशाओं पर विचार करेंगे:-

1. **क्रेता एकाधिकार की स्थिति**-क्रेताएकाधिकार की स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब श्रम बाजार में कुछ उत्पादक, शेष उत्पादकों की तुलना में अधिक प्रभावशाली होते हैं या सभी उत्पादक संगठित होकर अपना एक संघ बना लेते हैं। इस प्रकार का संगठन , मजदूरी की दर को नियन्त्रित करता है, अतः श्रमिकों के असंगठित होने के कारण उन्हें जो मजदूरी दी जाती है उसे वे स्वीकार कर लेते हैं।
2. **विक्रेता एकाधिकार की स्थिति**-दूसरी ओर, श्रमिक बाजार में, श्रमिक संगठित होकर अपना श्रम बेचते हैं। इस दशा में वे श्रम पूर्ति के एकाधिकारी हो जाते हैं। अतः वास्तविकता

यह है कि श्रम बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है और मजदूरी का निर्धारण उत्पादकों व श्रमिकों के संघों के बीच सौदा करने की शक्ति से निर्धारित होता है।

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण को रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट करने से पूर्व इस बात को भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत मजदूरी रेखा (AW) ऊपर बढ़ती हुई होती है। यही बात 'सीमान्त-मजदूरी रेखा' (MW) में भी लागू होती है, अर्थात् पूर्ण प्रतियोगिता की तरह से अपूर्ण प्रतियोगिता AW = MW में नहीं होता है। सीमान्त मजदूरी रेखा (MW) का ऊपर को उठता हुआ होना, इस बात को बताता है कि उद्योग पतियों को अतिरिक्त श्रमिकों के काम पर लगाने के लिए ऊँची मजदूरी देनी होगी। पूर्ण प्रतियोगिता की भँति फर्म का माँग वक्र उसका सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) वक्र होगा।

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की पूर्व धारणा पर आधारित है। जब साधन बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता होती है तो सन्तुलन में साधन की कीमतें उसकी सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) के समान नहीं होती है। अब हम यह स्पष्ट करेंगे कि जब साधन बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती हो, तो साधन की कीमत किस प्रकार निर्धारित होती है तथा उसकी सीमान्त आय उत्पादकता से क्या सम्बन्ध होता है। यहाँ पर अपूर्ण प्रतियोगिता की एक चरम सीमा वाली दशा क्रय-एकाधिकार का विवेचन करेंगे। साधन बाजार में क्रय-एकाधिकार उस अवस्था को कहते हैं, जब साधन खरीदने वाले का एकाधिकार हो या खरीदने वाला एक ही हो। अब कल्पना करो कि एक विशेष प्रकार का साधन खरीदने वाला एक ही नियोजक है। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता के विपरीत इस अवस्था में नियोजक मजदूरी की दर को प्रभावित कर सकता है, अर्थात् साधन की कीमत घटा-बढ़ा सकता है। यह बात भी समझनी आसान ही है कि यदि उसकी साधन की माँग अधिक हो जाय तो उसे अधिक मजदूरी देनी पड़ेगी।

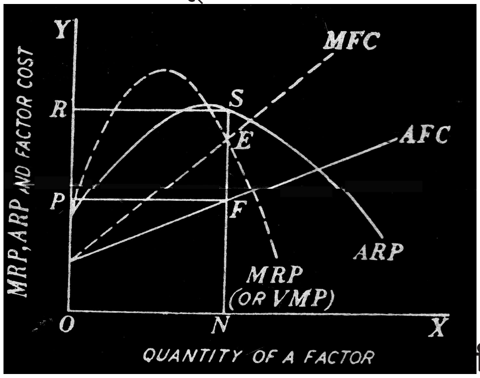

चित्र 23.1

इसलिए साधन की औसत लागत अथवा कीमत वक्र AFCबायें से दायें को ऊपर की ओर चढ़ता है और सीमान्त साधन लागत वक्र MFC इसके ऊपर होता है। रेखाकृति 23.1 में ARP औसत आय उत्पादकता का वक्र है और MRP सीमान्त आय उत्पादकता का वक्र है।

इस दशा में फर्म का सन्तुलन वहाँ होगा जहाँ सीमान्त साधन लागत MFC और सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) आपस में बराबर हों। ये E बिन्दु पर समान हैं, क्योंकि इस बिन्दु पर ये दोनों वक्र MFC और MRP परस्पर काटते हैं। अतः नियोजक का सन्तुलन बिन्दु E पर होगा और वह ON साधन की इकाइयाँ काम पर लगाएगा। इस सन्तुलन की दशा में आप देखेंगे कि साधन की औसत कीमत OP अथवा NF निर्धारित हुई है जो सीमान्त आय उत्पादकता (MRP)जो इस रेखाकृति में NE है, से कम है। इसका अर्थ यह है कि साधन नियोक्ता के लिए उत्पादन तो अधिक करते हैं, परन्तु नियोक्ता उन्हें कीमत कम देता है। इससे नियोक्ता को अनुचित लाभ प्राप्त होता है या वह उनका शोषण करता है। अर्थशास्त्री इसको क्रय एकाधिकारिक शोषण कहते हैं। यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि यदि पूर्ण प्रतियोगिता न हो और नियोक्ता का एकाधिकार हो, तो स्वभावतः वह श्रमिकों व अन्य साधनों का शोषण करेगा और मजदूर कम देगा। इसलिए क्रय-एकाधिकार या अपूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में श्रम का शोषण होगा।

ऊपर साधनों की कीमतों के निर्धारण की विवेचना, उस स्थिति में की जब कि साधन बाजार में क्रय एकाधिकार हो किन्तु पदार्थ बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती हो। अब प्रश्न है कि जब साधन बाजार में क्रय एकाधिकार के साथ पदार्थ मार्केट में भी एकाधिकार अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती हो, साधनों की कीमत किस प्रकार निश्चित होगी। इस स्थिति में भी फर्म सन्तुलन में तब होगा जब सीमान्त आय उत्पादकता तथा सीमान्त साधन लागत परस्पर समान होंगी (MRP = MFC)। किन्तु अब जबकि पदार्थ बाजार मं एकाधिकार (अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता) है, सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) सीमान्त उत्पादन के मूल्य के बराबर नहीं होगी। चूँकि इस स्थिति में भी, ऊपर की तरह साधन मार्केट में क्रय-एकाधिकार है, सीमान्त साधन लागत (MFC) वक्र, औसत साधन लागत (AFC) वक्र के ऊपर स्थित होगा।

ऐसी फर्म जिसको साधन बाजार में क्रय-एकाधिकार तथा पदार्थ बाजार में एकाधिकार प्राप्त हो की सन्तुलन स्थिति रेखाकृति 23.2 में प्रदर्शित की गयी है। इस रेखाकृति पर दृष्टि डालने से ज्ञात होगा कि फर्म बिन्दु E जहाँ पर कि सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) तथा सीमान्त साधन लागत परस्पर बराबर हैं सन्तुलन में है और इसके तदनुरूप साधन की ON इकाइयाँ नियोजित की जा रही हैं। सन्तुलन स्थिति में साधन की FN कीमत निर्धारित हुई हैं जो MRP तथा VMP दोनों से कम है। इस प्रकार नयी स्थिति में फर्म के सन्तुलन की शर्त को निम्न प्रकार लिख सकते है:-

$$\mathbf{VMP > MRP = <MFC > P_f}$$

जहाँ P_f साधन की कीमत का सूचक है।

स्पष्ट है कि साधन बाजार में क्रय-एकाधिकार तथा पदार्थ बाजार में एकाधिकार में किसी साधन का दोहरा शोषण होगा।

रेखाकृति 23.2 में MRP तथा AFC में अन्तर EE साधन बाजार में

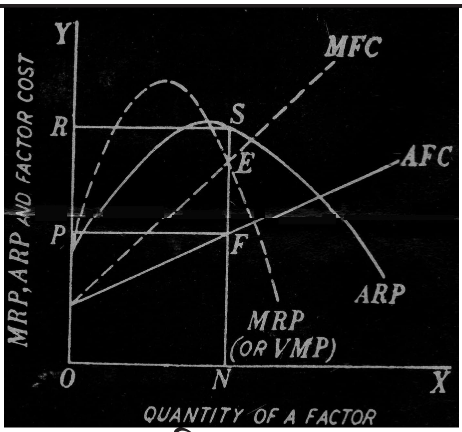

चित्र 23.2

क्रय-एकाधिकार के होने के कारण है और इसलिए यह साधन के क्रय एकाधिकारिक शोषण को मापता है। सन्तुलन स्थिति में VMP तथा MRP में अन्तर HE पदार्थ मार्किट में एकाधिकार के पाये जाने के कारण है इसलिए यह साधन के एकाधिकारिक शोषण को मापता है।

23.3 सांराश

साधन बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति तब पायी जाती है, जब श्रम बाजार में श्रम का एक क्रेता होता है यह स्थिति एक क्रेताधिकारी की होती है। इस प्रकार की स्थिति मे ं एकाधिकारी क्रेता मजदूरी दर को निश्चित ही प्रभावित कर सकता है। अतः यदि श्रम की माँग में वृद्धि हो जाती है तो उसे आर्थिक परिश्रमिक देनी पड़ सकती है परिणामतः औसत मजदूरी वक्र और सीमान्त मजदूरी वक्र बाएँ से दाएँ को ऊपर की ओर उठते हुए होगें। और सीमान्त आगम उत्पाद झुकता हुआ होता है। साम्य बिन्दु के बाद उत्पादकता की स्थिति की गणना की जाती है। निष्कर्षतः बाजार मेंं जब अपूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है तो सेवायोजक एकाधिकार का लाभ उठाते हुए श्रमिकों या साधनों को उनकी उत्पादकता से कम मजदूरी देकर उनके शोषण का भी भय रहता है।

23.4 शब्दावली

क्रय एकाधिकार शोषणः- मजदूर की सीमान्त उत्पादकता अधिक होने पर भी यदि मजदूर की औसत मजदूरी कम होती है तो कम मजदूर इस बात का प्रमाण है कि सेवायोजक एकाधिकार का लाभ उठाते हुऐ श्रमिकों का शोषण करते हैं।

साधन कीमत का अपूर्ण सिद्धान्तः- सीमान्त उत्पादकता विश्लेषण उत्पादन के साधनों की कीमत के निर्धारण का पूर्ण सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं करता बल्कि यह साधनों के माँग पक्ष पर निर्भर होता है।

23.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म को वस्तु की अतिरिक्त इकाईयाँ बेचने के लिए वस्तु की कीमत...

(a) घटानी पड़ती है (b) बढ़ानी पड़ती है

(c) पहले घटानी फिर बढ़नी पड़ती है (d) उपरोक्त कोई नहीं

2. अपूर्ण प्रतियोगिता में साधन कीमत निर्धारण की अवस्था में निम्न में कौन सी स्थिति रहती है।

(a) MR, AR से अधिक रहती है (b) MR, AR से कम रहती है

(c) न कम न अधिक (d) कोई नहीं

3. साधनों की कीमत निर्धारण में अपूर्ण प्रतियोगिता मं निम्न में कौन सी स्थिति होती है-

(a) VMP < MRP (b) VMP = MRP

(c) VMP > MRP (d) कोई नहीं

4. निम्नांकित में से कौन वितरण के सीमान्त उत्पादकत सिद्धान्त से सम्बन्धित हैं।

(a) पीगू (b) जे0 बी0 क्लार्क

(c) डाल्टन (d) एजवर्थ

5. साधन कीमत निर्धारण हेतु अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत MRP और ARP वक्र होते हैं-

(a) नीचे से ऊपर की ओर (b) ऊपर से नीचे की ओर

(c) न नीचे न ऊपर (d) कोई नहीं

उत्तरः- **1— (a), 2— (b), 3— (c), 4— (b), 5— (a)**

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. एक क्रेताधिकार किसे कहते हैं ?
2. व्युत्पादित माँग क्या है ?
3. साधन कीमत निर्धारण एवं वस्तु कीमत निर्धारण में क्या अन्तर है ?

23.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्रा, जे0पी0 (2009): उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त -मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन,वाराणसी।

2. सिन्हा, वी0सी0 (1990): उन्नत आर्थिक सिद्धान्त, स्टूडेन्ट फ्रेन्डस इलाहाबाद।

3. आहूजा, एम0एल0 (2006): उच्च आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक विश्लेषण, चन्द्र प्रकाशन, दिल्ली।

4. लाल, एस0 एन0 (2005): उच्च आर्थिक सिद्धान्त, शिवा पब्लिशिंग हाऊस -इलाहाबाद।

5. लाल, एस0 एन0 (2008): माइक्रों इकोनामिक्स:शिवा पब्लिशिंगहाऊस - इलाहाबाद।

8. जैन, पी0 सी0 (1995): उच्च आर्थिक विश्लेषण, चुग प्रकाशन, इलाहाबाद।

9. त्रिपाठी, बद्री विशाल (2000): एडवांस इकोनोमिक थ्योरी,किताब महल्, इलाहाबाद।

23.7 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Mehta,J.K.(1980):EconomicTheory,ChughPublications,Allahabad.
- Jhingan, M.L. (2007) : Advanced Economic Theory, Vrinda Prakashan, New Delhi.
- Seth, M.L. (2007): Micro Economics, L.N. Agrwal Publications, Agra.
- P. Samuelson (1967) : Micro Economic Theory & Policy, Oxford University Press, U.K.
- Dhingra, I.S. (2005) : Advaned Economics Theory New Century Publication. DelhiTripathi, B.B. (2000) : Micro Economics, Kitab Mahal Allahabad

23.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में साधनों के कीमत निर्धारण की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।

2. अपूर्ण प्रतियोगिता में साधन बाजार में फर्म का साम्य कैसे निर्धारित होता है।

3. अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में क्रय अधिकार द्वारा साधन कीमत का निर्धारण कैसे होता है। आलोचनात्मक व्याख्या दीजिए।

4. साधन की माँग से क्या समझते हैं ?

इकाई 24 मजदूरी निर्धारण सिद्धान्त

इकाई संरचना

24.1 प्रस्तावना
24.2 उद्देश्य
24.3 जीवन-निर्वाह मजदूरी सिद्धान्त
24.4 मजदूरी का जीवन-स्तर सिद्धान्त
24.5 मजदूरी का अवशेष-अधिकार सिद्धान्त
24.6 मजदूरी कोष सिद्धान्त
24.7 मजदूरी निर्धारण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
24.8 सारांश
24.9 शब्दावली
24.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
24.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
24.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
24.13 निबन्धात्मक प्रश्न

24.1 प्रस्तावना

सामान्यतया श्रम के प्रयोग के बदले प्राप्त होने वाला कैसा भी प्रतिफल अथवा मानवीय प्रयत्नों के प्रतिफल के रुप में हमें जो प्राप्त होता है उसे पारिश्रमिक या मजदूर कहा जाता है। मजदूरी के अन्तर्गत- कारखानों में काम करने वाले, विभिन्न तरह के श्रमिकों की मजदूरी, लिपिक, अधिकारी, प्रबन्धक आदि के श्रम के बदले, डाक्टर आदि की फीस, विभिन्न प्रकार के व्यावसायियों, के सेवाओं का पुरस्कार आदि मजदूरी के अन्र्तगत आता है।

मजदूरी के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि श्रम उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन है और मजदूरी वस्तुओं आदि सेवाओं के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले श्रम का पुरस्कार होता है।

24.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- मजदूरी पर प्रभाव डालने वाले तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना।
- मुद्रा की क्रय शक्ति तथा नकद मजदूरी दरों में सम्बन्ध स्थापित करना।
- नकद मजदूरी के अन्तर्गत अन्य लागतों का मूल्यांकन करना।
- कार्य के स्वभाव, भावी उन्नति की आशा, कार्यावधि, अन्य का मजदूरी दर के साथ समन्वय स्थापित करते हुए मजदूरी दर के सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त करना।

मजदूरी निर्धारण के सिद्धान्त के उद्देश्य के अन्तर्गत यह पता लगाना कि श्रम के प्रयोग के बदले दी गई कीमत मजदूरी किस प्रकार शोषण मुक्त हो सकती है। क्योंकि मजदूरी के द्वारा ही उत्पादक उनका शोषण करता है। मजदूरी जितना श्रम का त्याग करता है उसके बदले में उसे उतनी मजदूरी नहीं मिल पाती है जितना कि उसके अपने श्रम का परित्याग किया है। इस सिद्धान्त में यह मान लिया जाता है कि सभी श्रमिक एक जैसे कुशल हैं, श्रमिकों में पूर्ण गति शील ता होती है और उत्पादन में उत्पन्न ह्यस नियम लागू रहता है। समय-समय पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने राष्ट्रीय आय में से श्रमिक को मिल ने वाले अंश को निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। परिणामस्वरूप, अर्थशास्त्र में मजदूरी-निर्धारण के अनेक सिद्धान्त बनाये गये। मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त प्राचीन सिद्धान्तों से कुछ भिन्न अवश्य है, किन्तु प्राचीन सिद्धान्तों के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वास्तव में, मजदूरी के वर्तमान सिद्धान्त को समझने के लिए प्राचीन सिद्धान्तों की व्याख्या करनी आवश्यक है। अतः मजदूरी निर्धारण के कुछ प्रमुख सिद्धान्तों को नीचे दिया जा रहा है।

24.3 जीवन-निर्वाह मजदूरी सिद्धान्त

18वीं शताब्दी में फ्राँस के प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों विशेषकर **तरगो** ने मजदूरी के जीवन-निर्वाह सिद्धान्त की रचना की थी। बाद में रिकार्डो के द्वारा इस सिद्धान्त की पुष्टि की गयी। इसके अतिरिक्त, जर्मनी के अर्थशास्त्री **लैसली** ने भी इस सिद्धान्त को मान्यता दी। उन्होने इस सिद्धान्त को 'मजदूरी का लौह-नियम' या 'मजदूरी का ब्रजैन नियम' के नाम से पुकारा था। इस सिद्धान्त को 'मजदूरी का प्राकृतिक नियम' भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त का आधार 'माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त' है।

सिद्धान्त की मान्यताएँ

सिद्धान्त की व्याख्या करने से पूर्व इस सिद्धान्त की दो प्रमुख मान्यताओं को जानना आवश्यक है।

(ii) जनसंख्या का तेजी से बढ़ना, तथा
(iii) क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम का लागू होना।

सिद्धान्त की व्याख्या-उपर्युक्त दोनों मान्यताओं को जानना आवश्यक है। जनसंख्या बढ़ती है, वहीं मजदूरों की मजदूरी में भी कमी आ जाती है। दूसरी ओर, मूल्यों के बढ़ जाने से असल मजदूरी कम होती है। सारांश यह है कि ''एक हाथ पर कम मजदूरी तथा दूसरे हाथ पर ऊँचे मूल्यों के कारण मजदूर अपने आप को हथौड़ा तथा निहाई के बीच कुचलता हुआ अनुभव करता है।''

इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी जीवन-निर्वाह के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्तिं के बराबर होती है। तरगो ने अपने देश फ्राँस में मजदूरों को न्यूनतम आवश्यकताओं पर रहते हुए देखा और उनके दिमाग में यह धारणा बैठ गयी कि मजदूरी प्राकृतिक नियम द्वारा निर्धारित होती है। इस नियम के अनुसार, यदि मजदूरी जीवन-निर्वाह के न्यूनतम स्तर से अधिक होती है, तो मजदूर शादियाँ करेंगे, बच्चे बढ़ेंगे, जनसंख्या बढ़ेगी और श्रम की पूर्ति भी बढ़ जायेगी। काम के अवसरों मं वृद्धि न होने से काम चाहने वाले मजदूरों के बीच काम को पाने के लिए तीव्रतर प्रतियोगिता होगी, और प्रतियोगिता के कारण मजदूरी की दर घटती जायेगी जब तक कि वह जीवन-निर्वाह स्तर के बराबर न हो जाये। इसके विपरीत, यदि मजदूरी की दर जीवन-निर्वाह मजदूरी से नीची है, तो मजदूरों को अच्छा खाना और अच्छा मकान नहीं मिलेगा, उनकी आर्थिक दशा दयनीय होगी, वे अल्पायु में ही मरने लगेंगे। कुल मिलाकर श्रम की पूर्ति कम हो जायगी। ऐसी दशा में यदि श्रम की माँग पूर्ववत् बनी रहे, तो मजदूर की दर बढ़ेगी और अन्ततः जीवन-निर्वाह की दर के बराबर आ जायेगी।

इस व्याख्या को चित्र 24.1 से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में WW मजदूरी दर है जो जीवन-निर्वाह स्तर के बराबर है, यही श्रम का पूर्ति वक्र भी है तो पूर्णतया लोचदार है। मजदूरी वक्र के

अनुसार OW मजदूरी की दर पर चाहे जितने श्रमिकों को काम पर लगाया जा सकता है। श्रम का माँग वक्र DD है। श्रम की माँग चाहे DD हो अथवा D_1D_1 व D_2D_2 , श्रम की मजदूरी ही OW ही रहती है। यदि मजदूरी दर OW से कम है तो श्रमिकों की मृत्यु दर में वृद्धि होगी। यदि मजदूर की दर OW से अधिक होती है, तो जनसंख्या बढ़ती है। इस प्रकार प्राकृतिक नियम के आधार पर मजदूरी दर OW ही रहती है।

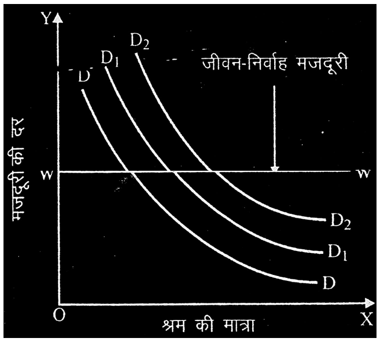

चित्र 24.1

रिकार्डो ने यह कहकर इस सिद्धान्त की पुष्टि की है कि **''श्रम की प्राकृतिक कीमत व कीमत है जो कि श्रमिकों को एक-दूसरे के साथ निर्वाह करने तथा अपनी जाति को, बिना वृद्धि अथवा किसी कमी के, स्थिर बनाये रखने के लिए आवश्यकता है।''**

आलोचना :- जीवन-निर्वाह सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाँए निम्नलिखित हैं

(1) जनसंख्या (श्रम की पूर्ति) बढ़ती नहीं वरन् घटती है-सिद्धान्त बताता है कि मजदूरों की आर्थिक स्थिति के अच्छा होने से जनसंख्या (श्रम की पूर्ति) बढ़ जाती है। यह कथन गलत है। आज दुनिया के विकसित औद्योगिक देशों में मजदूरों की मजदूरी की दर जीवन-निर्वाह मजदूरी की दर से कहीं अधिक है। इतने पर भी उनकी जनसंख्या में उतनी वृद्धि नहीं हुई जितनी कि कल्पना की गयी है। अतः सिद्धान्त का यह कथन गलत है कि मजदूरों की आर्थिक स्थिति के अच्छा होने से उनकी जनसंख्या बढ़ेगी और मजदूरी जीवन-निर्वाह स्तर के ही बराबर बनी रहेगी।

(2) विभिन्न देशों में ही नहीं वरन् उसी देश में मजदूरी की दरों का भिन्न होना- इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न देशों में तथा एक ही देश के विभिन्न भागों में मजदूरी की दर समान होनी चाहिए, क्योकि जीवन-निर्वाह का न्यनतम स्तर सभी स्थानों पर एक ही होता है। किन्तु हम देखते हैं, मजदूरी की दरें भिन्न होती हैं जो कि इस सिद्धान्त के विपरीत है। अतः व्यावहारिक रूप से यह सिद्धान्त सही नहीं है।

(3) सिद्धान्त एकपक्षीय होना-इस सिद्धान्त में केवल श्रम की पूर्ति पर ही ध्यान दिया गया है, जबकि मजदूरी के निर्धारण के लिए श्रम की पूर्ति के साथ श्रम की माँग को भी महत्व दिया जाना चाहिए था।

(4) पूँजीपतियों के साथ पक्षपात-सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा गया है कि यह सिद्धान्त श्रमिकों के साथ न्याय नहीं करता है। पूँजीपतियों के प्रभाव में आकर उनके लाभ को बढ़ाने के लिए श्रमिकों की मजदूरी जीवन-निर्वाह के ही बराबर देने की बात की जाती है, क्योंकि यह तो उनकी नियति है।

(5) श्रमिकों की उत्पादन क्षमता पर ध्यान नहीं-इस सिद्धान्त ने सभी मजदूरों को एक ही तराजू पर तोला है। चूँकि इस सिद्धान्त ने श्रमिकों की उत्पादकता पर विशेष ध्यान नहीं दिया है, इसलिए इस सिद्धान्त को अपूर्ण तथा एकपक्षीय माना जाता है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के कारण ही मजदूरी निर्धारण का जीवन-निर्वाह सिद्धान्त 19वीं शताब्दी के मध्य में त्याग दिया गया और आज इस सिद्धान्त का केवल ऐतिहासिक महत्व ही है।

24.4 मजदूरी का जीवन-स्तर सिद्धान्त

19वीं शताब्दी के मध्य में जीवन-निर्वाह सिद्धान्त को त्याग दिया गया और उसके स्थान पर मजदूरी के जीवन-स्तर सिद्धान्त को मान्यता दी गयी। यह सिद्धान्त जीवन-निर्वाह सिद्धान्त का ही संशोधित रूप है, क्योंकि इसमें अर्थशास्त्रियों ने **'जीवन-निर्वाह'** शब्द को

त्यागकर **'जीवन-स्तर'** शब्द का प्रयोग किया है।

'जीवन-स्तर मजदूरी' से न केवल अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता है, बल्कि वह उससे अधिक आराम व विलास की वस्तुओं को भी क्रय कर सकेगा। इससे मजदूरों की कार्यक्षमता बढ़ती है और उत्पादन भी बढ़ता है। इसमें श्रमिकों की मोYभाव करने की शक्ति सुदृढ़ हो जाती है, क्योंकि यह **'जीवन-निर्वाह मजदूरी'** से ऊँची मजदूरी होती है।

सिद्धान्त के गुण :-यह सिद्धान्त तार्किक दृष्टिकोण से उपयुक्त है, क्योंकि मजदूरी में बहुधा जीवन-स्तर के बराबर होने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

(1) जीवन-स्तर से तात्पर्य उन वस्तुओं तथा सेवाओं से है, जिनका उपभोग करने का एक वर्ग विशेष आदी हो गया है। इस स्तर को यथावत् बनाये रखने के लिए श्रमिक प्रयत्न करते हैं।

(2) जीवन-स्तर तथा कार्यक्षमता के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जीवन-स्तर जितना ही ऊँचा होगा कार्यक्षमता भी उतनी ही अधिक होगी इससे उत्पादन शक्ति भी बढ़ेगी।

(3) यदि कुछ समय तक मजदूरों को मजदूरी जीवन-स्तर के बराबर मिल ती रहे, तो श्रमिकों की मोलभाव करने की शक्ति बढ़ जायेगी। यही कारण है कि वे भविष्य में भी अपनी मजदूरी को इससे कम नहीं होने देंगे।

आलोचना:- जीवन-स्तर सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाँए निम्न हैं

(i) यह सिद्धान्त जीवन-निर्वाह की ही तरह एकपक्षीय है, अर्थात् यह श्रम के पूर्ति पक्ष को लेकर चलता है, जबकि मजदूरी के निर्धारण के लिए श्रम के माँग की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

(ii) मजदूरी केवल जीवन-स्तर से प्रभावित नहीं होती है, जैसा कि यह सिद्धान्त मानकर चलता है, वरन् वह जीवन-स्तर के अतिरिक्त अन्य बातों से भी प्रभावित होती है।

(iii) ऊँचे जीवन-स्तर के अतिरिक्त मजदूर की ऊँची मजदूरी होने के कई अन्य कारण भी हो सकते हैं, जैसे-शिल्पकला में उन्नति, विनियोग की दर, उत्पादन विधि इत्यादि।

24.5 मजदूरी का अवशेष अधिकार सिद्धान्त

सिद्धान्त की व्याख्या :-सर्वप्रथम इस सिद्धान्त को अमरीकी अर्थशास्त्री बॉकर ने बनाया। इस सिद्धान्त के अनुसार कुल उत्पादन में से लगान , ब्याज तथा लाभ को निकाल देने के बाद जो राशि शेष बचती है उसे मजदूरों में बाँट दिया जाता है। सिद्धान्त बताता है कि कुल उत्पादन में से लगान , ब्याज व लाभ को घटाने के बाद जो अवशेष बच जाता है वही मजदूरी होती है, अर्थात्

मजदूरी = (कुल उत्पादन) - (लगान + ब्याज + लाभ)

सिद्धान्त के अनुसार, यदि श्रमिकों की कार्यक्षमता या उत्पादन-शक्ति में वृद्धि हो जाये, तो कुल उत्पादन में वृद्धि होगी। फलतः मजदूरों को मिल ने वाले अवशेष भाग में भी वृद्धि हो जायेगी। अतः श्रमिक जितना अधिक उत्पादन बढ़ायेंगे, उन्हें उतनी ही अधिक मात्रा में मजदूरी मिलेगी।

सिद्धान्त के गुण:- इस सिद्धान्त की प्रमुख विशेषता यह है कि यह श्रमिकों की कार्यक्षमता पर विशेष ध्यान देता है। यह व्यावहारिक ही है कि कार्यक्षमता के बढ़ने से उत्पादन बढ़ता है और उत्पादन के बढ़ने से मजदूरों की मजदूरी भी बढ़ती है। इससे पूर्व के सिद्धान्त इस बात को स्पष्ट नहीं कर पाये हैं कि मजदूर पर कार्यक्षमता का क्या प्रभाव पड़ता है। अतः यह सिद्धान्त बताता है कि यदि मजदूर मेहनत करें तो उनकी मजदूरी बढ़ सकती है।

आलोचना:- मजदूरी का अवशेष अधिकारी सिद्धान्त भी दोषों से मुक्त नहीं है। इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं -

(1) पूर्ति पक्ष पर ध्यान न देना-यह सिद्धान्त अन्य सिद्धान्तों की तर से अपूर्ण है, क्योंकि इसमें श्रम की पूर्ति पर ध्यान नहीं दिया गया है।

(2) एक ही देश में मजदूरी की भिन्न दरों को स्पष्ट न करना-यह सिद्धान्त इस बात की तो व्याख्या करता है कि विभिन्न देशों में मजदूरी की दरों में अन्तर क्यों आता है, परन्तु इस बात की व्याख्या नहीं करता कि एक ही देश के विभिन्न भागों में मजदूरी की दर की भिन्नता का क्या कारण है।

(3) अवास्तविक होना-यह सिद्धान्त वास्तविकता से दूर है। सिद्धान्त इस बात को बताता है कि अवशेष श्रमिकों को मिल ता है। पर व्यवहार में अवशेष के अधिकारी तो साहसी होते हैं न कि श्रमिक।

(4) श्रमिक संघों को महत्व न देना-यह सिद्धान्त श्रमिक संगठन की ओर ध्यान नहीं देता है, जबकि मजदूरी को बढ़ाने में श्रम-संगठनों का महत्वपूर्ण हाथ है।

(5) स्वार्थपूर्ण सिद्धान्त-यह सिद्धान्त स्वार्थ से पूरित है। लगान , ब्याज तथा लाभ के सम्बन्ध में तो यह किसी एक सिद्धान्त को मानकर उनके हिस्सों का निर्धारण करता है, परन्तु उत्पत्ति के महत्वपूर्ण साधन श्रमिक को बचा-खुचा भाग देने की बात करता है जो तर्कहीन है।

24.6 मजदूरी-कोष सिद्धान्त

मजदूरी-कोष के सिद्धान्त के प्रतिपादक एडम स्मिथ थे। बाद में जे0एस0 मिल   ने इस सिद्धान्त को पूरा किया था। मिल   का कहना था कि मजदूरी, पूँजी और जनसंख्या के अनुपात पर निर्भर होती है। मजदूरी कोष में वृद्धि के बिना मजदूरी नहीं बढ़ सकती है। संक्षेप में, श्रम की मजदूरी दो बातों पर निर्भर करती है:-

(1) मजदूरी कोष -मजदूरी कोष वह कोष है जो पूर्व बचतों के फलस्वरूप तैयार किया जाता है। सेवायोजक इस कोष का उपयोग श्रम को क्रय करने की लिए करते हैं। कोष के अनुपात में श्रमिकों की माँग की जाती है। जिस अनुपात में कोष बढ़ता-घटता है, उसी अनुपात में श्रमिकों की माँग भी बढ़ती-घटती है। उल्लेखनीय है कि सेवायोजकों के द्वारा कोष की राशि को किसी बैंक आदि में नहीं रखा जाता है, बल्कि वे एक अनुमान के आधार पर इस कोष को, अपने दिमाX में, श्रम क्रय करने के लिए रख लेते हैं।

(2) श्रमिकों की पूर्ति -काम चाहने वाले मजदूरों के द्वारा श्रम की पूर्ति की जाती है। किसी समय विशेष में काम चाहने वाले श्रमिकों की संख्या का भाग मजदूरी कोष में दे देने पर जो राशि प्राप्त होती है वही औसत मजदूरी की दर है। मजदूरी की दर तभी बढ़ सकती है जब मजदूरों की संख्या में कमी हो अथवा मजदूरी कोष में वृद्धि का प्रश्न है, उसे एकाएक नहीं बढ़ाया जा सकता, क्योंकि कोष का निर्माण तो भूतकाY की बचतों से होता है। अतः यदि श्रमिकों को अपनी आर्थिक दशा में सुधार लाना है या अपनी मजदूरी की बढ़वाना है, तो उनको चाहिए कि वे अपने परिवार को न बढ़ायें अथवा जनसंख्या को नियन्त्रित करें।

आलोचना :-मजदूरी कोष-सिद्धान्त के प्रमुख आलोचक लाँग तथा थार्टन हैं। उनके द्वारा इस सिद्धान्त की निम्न आलोचनाएँ की गयी हैं:-

(1) मजदूरी कोष में परिवर्तन सम्भव है-सिद्धान्त में कहा गया है कि मजदूरों को मजदूरी देने के लिए एक कोष की स्थापना नहीं की जाती है। यदि हम यह मान भी लें कि मजदूरी कोष की कल्पना सेवायोजकों के मस्तिष्क में है, तो भी इसका कोई निश्चित परिणाम नहीं होता, क्योंकि यह कोष निश्चित घटनाओं के प्रभाव से घट व बढ़ सकता है। जब व्यापार में तेजी आती है, तब नये-नये उद्योग खोले जायेंगे, मजदूरों की माँग बढ़ायी जायेगा और मजदूरी-कोष में वृद्धि होगी। इसके विपरीत, मन्दी के समय बेरोजगारी बढ़ेगी और मजदूरों की माँग घटायी जायेगी। मुद्रा के चलन वेग का प्रभाव भी 'मजदूरी कोष' को बढ़ा और घटा सकता है। अतः मजदूरी कोष स्थिर नहीं है इसमें घट-बढ़ हो सकती है।

(2) श्रम उत्पादकता की अपेक्षा- इस सिद्धान्त के अनुसार सभी मजदूरों को समान रूप से मजदूरी दी जाती है, परन्तु व्यावहारिक जीवन में ऐसा नहीं होता है। मजदूरों की उत्पादकता में अन्तर आने के कारण ही मजदूरी की दरों में भिन्नता आती है और उन्हें भिन्न-भिन्न दरों से मजदूरी दी जाती है।

(3) एक व्यवसाय की मजदूरी का प्रभाव दूसरे व्यवसाय में-सिद्धान्त के अनुसार एक व्यवसाय की मजदूरी का प्रभाव दूसरे व्यवसाय में नहीं पड़ता है। आलोचकों का मत है कि एक व्यवसाय में मजदूरी की दर के बढ़ जाने से दूसरे व्यवसाय में भी मजदूरी की दर बढ़ती है। यदि दूसरे व्यवसाय में मजदूरी नहीं बढ़ती है, तो श्रमिक संघर्ष के बल बूते पर मजदूरी बढ़वा लेते हैं या वे दूसरे व्यवासय में चले जाते हैं।

(4) मजदूरी बढ़ने से लाभ में कमी नहीं होती है-सिद्धान्त से ज्ञात होता है कि मजदूरों व सेवायोजकों के बीच हमेशा संघर्ष रहता है, क्योकि मजदूरी बढ़ने से लाभ में कमी और मजदूरी कम होने पर लाभ में वृद्धि होती है। यही घटना संघर्ष को जन्म देती है। परन्तु अनुभव से पता चलता है कि ऐसा होता नहीं है। जब की कोई व्यवसाय प्रारम्भ किया जाता है या उसमें विस्तार किया जाता है, तब मजदूरी बढ़ने के साथ-साथ लाभ की दर भी बढ़ती है।

(5) विभिन्न व्यवसायों में मजदूरियाँ भिन्न होने की व्याख्या-आलोचकों का कहना है कि यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नहीं करता है कि विभिन्न व्यवसायों में मजदूरी की दर, भिन्न क्यों होती है।

(6) वस्तु की माँग घटने-बढ़ने के प्रभाव की उपेक्षा-सिद्धान्त का कथन है कि वस्तुओं की माँग से श्रम की माँग प्रभावित नहीं होती है। आलोचकों का मत है कि वस्तुओं की माँग के घट-बढ़ जाने से उत्पादन की मात्रा भी घट-बढ़ जाती है। फलतः श्रमिकों की माँग भी प्रभावित होती है। उपर्युक्त आलोचकों के कारण मिल ने अपने सिद्धान्त को वापस ले लिया था।

24.7 मजदूरी निर्धारण का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त

सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन जे0बी0 क्लार्क, प्रो0 वॉन थ्यूनन, जेवन्स, आदि ने किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादकों द्वारा मजदूरों की माँग उनकी सीमान्त उत्पत्ति पर निर्भर करती है। जिस प्रकार किसी एक उपभोक्ता के लिए किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता के आधार पर तय होता है, उसी प्रकार मजदूर की मजदूरी भी उसकी सीमान्त उत्पादकता के आधार पर तय होती है। श्रम की सीमान्त उत्पादकता से तात्पर्य उत्पादन की उस मात्रा से है, जोकि अन्य साधनों के पूर्ववत् रहने पर एक श्रमिक के बढ़ाने या घटाने से बढ़ती अथवा घटती है। उदाहरण के लिए, यदि 10 मजदूर, अन्य साधनों के साथ मिल कर 100 इकाइयों का उत्पादन करते हैं, और 11वाँ मजदूर साधनों की उसी मात्रा के साथ मिल कर 115 इकाइयों का उत्पादन करें तो श्रम की सीमान्त उत्पादकता इन दोनों के अन्तर (115 - 100 = 15) 15 इकाइयों के तुल्य होगी।

जब किसी कार्य में अन्य साधनों को स्थिर रखकर श्रम की इकाइयों को उत्तरोत्तर बढ़ाया जाता है, तब उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने से प्रति मजदूर उत्पादन करता घटता है। उत्पादक के द्वारा मजदूरों को उस सीमा तक बढ़ाया जाता है, जहाँ पर मजदूर को दी जाने वाली मजदूरी उसके द्वारा कुल उत्पत्ति में की जाने वाली वृद्धि के तुल्य हो जाय। इस बात को हम उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट कर चुके हैं। ग्यारहवाँ मजदूर सीमान्त-मजदूरी तथा दों द्वारा प्राप्त उत्पादन, सीमान्त-उत्पत्ति कहलाती है। इस दशा में एक उत्पादक सीमान्त मजदूर को काम देने में उदासीन रहता है, क्योंकि उत्पादक को श्रमिक के सीमान्त उत्पादन के बराबर मजदूरी देनी होती है और इसलिए उसे कोई लाभ नहीं होता। दीर्घकाल में मजदूरी की दर उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की होती है, चित्र 24.2 से इस बात को स्पष्ट किया गया है।

चित्र के पैनल A में उद्योग और पैनल B में फर्म के सन्तुलन को दिखाया गया है।

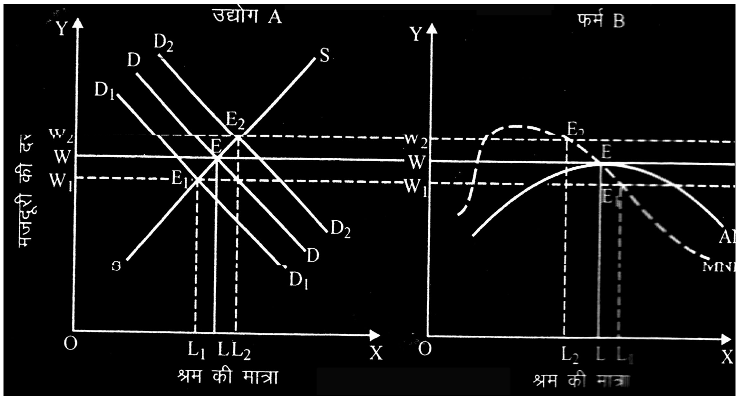

चित्र 24.2

पैनल A में SS श्रम का पूर्ति वक्र व DD माँग वक्र है। दोनों एक-दूसरे को E बिन्दु पर

काटते हैं, जहाँ मजदूरी की दर OW तय होती है। पैनल B में OW फर्म के लिए मजदूरी दर व MW श्रम का पूर्ति वक्र है जो पूर्णतया लोचदार है। इसका अर्थ यह हुआ कि OW मजदूरी की दर पर जितना चाहें उतने मजदूरों को काम पर Yगाया जा सकता है। एक फर्म श्रम को उस समय तक काम पर लगायेगी जहाँ OW मजदूरी की दर मजदूर की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है। चित्र के पैनल B में यह स्थिति E बिन्दु पर है जहाँ मजदूरी दर, औसत शुद्ध आगम उत्पादकता (ANRP) तथा शुद्ध सीमान्त आगम उत्पादकता (MNRP) तीनों बराबर हैं तथा इस साम्य बिन्दु पर फर्म श्रम की OL मात्रा का प्रयोग करती है।

माना श्रम की माँग D_1D_2में वृद्धि होती है, फलतः मजदूरी की दर OW से बढ़कर OW2हो जाती है। मजदूरी में वृद्धि होने के कारण फर्म के द्वारा व्स्2मात्रा में श्रम की माँग की जाती है जो पहले से कम है। ऐसी दशा में फर्म को WW_2 के बराबर हानि होगी, क्योंकि श्रम की औसत शुद्ध आगम उत्पादकता (ANRP) OW_2से WW_2 के बराबर कम है। फर्म को हानि होने से श्रम की माँग घटाकर D_1D_1 कर दी जाती है जिससे मजदूरी की दर भी कम होकर OW_1 रह जाती है। ऐसी स्थिति में फर्म को W_1W के बराबर लाभ होता है। लाभ की यह स्थिति केवल अल्पकाल में ही होती है। दीर्घकाल में श्रम की मजदूरी उसकी शुद्ध सीमान्त आगम उत्पादकता तथा औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता के बराबर होगी। संक्षेप में, WW = MNRP = ANRP की स्थिति साम्य की स्थिति होगी। यह स्थिति पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में पायी जाती है। अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति के अन्तर्गत मजदूरी की दर श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता के बराबर होगी।

सिद्धान्त की मान्यताएँ :-सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएँ निम्न हैं:-

(i) श्रम की सभी इकाइयाँ उत्पादकता की दृष्टि से समान होती हैं।
(ii) श्रमिकों व सेवायोजकों की सौदा करने की शक्ति बराबर होती है।
(iii) श्रम के अतिरिक्त अन्य सभी साधन स्थिर होते हैं।
(iv)सिद्धान्त उत्पत्ति ह्रास नियम पर आधारित है।
(v) दीर्घकाल में श्रम की मजदूर उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर निश्चित होती हैं, तथा
(vi)श्रम पूर्ण रूप से गति शील है।

आलोचना:-सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ अग्रलिखित हैं

(1) यह एकपक्षीय सिद्धान्त है-इस सिद्धान्त में केवल श्रम की माँग को ही महत्व दिया गया है। सच तो यह है कि श्रम की पूर्ति पक्ष का जब तक अध्ययन नहीं किया जाता है, तब तक सिद्धान्त का कथन सही नहीं हो सकता है।

(2) मजदूरी सदैव सीमान्त उत्पादकता के बराबर तय नहीं होती है-इस सिद्धान्त के अनुसार, मजदूर की मजदूरी उसकी सीमान्त उत्पादकता से न तो कम होगी न अधिक। सिद्धान्त का यह कथन त्रुटिपूर्ण है। व्यवहार में सेवायोजक मजदूरों की आर्थिक कमजोरी एवं संगठन के अभाव का फायदा उठाकर उनकी सीमान्त उत्पादकता से भी कम मजदूरी देते हैं।

(3) अवास्तविक मान्यताएँ-सिद्धान्त की मान्यता के अनुसार काम करने वाले मजदूर समान विशेषता वाले होंगे, श्रम पूर्ण गति शील होगा, प्रत्येक स्थान में उत्पादित वस्तु का मूल्य समान रहता है तथा ब्याज व किराये की दरें निश्चित व स्थिर रहती हैं। आलोचकों के अनुसार ये सब बातें समान नहीं रहती हैं, अतः इन सब परिवर्तनों के कारण सिद्धान्त की बातें सत्य नहीं हैं। स्था व व्यवसाय की भिन्नता के कारण मजदूरी की दरों में परिवर्तन आते रहते हैं।

(4) एक अतिरिक्त इकाई बढ़ाना सदैव सम्भव नहीं होता-सिद्धान्त की आलोचना यह कहकर भी की जाती है कि इसमें मान लिया गया है कि अन्य साधनों में परिवर्तन किये बिना ही श्रम की एक इकाई बढ़ायी जा सकती है। किन्तु, यदि उत्पादन का प्राविधिक-गुण स्थिर हो, तो इस प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं है।

(5) पूर्ण प्रतियोगिता की कल्पना अवास्तविक होना-यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। परन्तु व्यवहार में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पायी जाती है। हाँ, व्यवहार में अपूर्ण प्रतियोगिता होती है। श्रमिकों के बीच भी अपूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है, जिससे मजदूरी दर सीमान्त उत्पत्ति से भिन्न होती है।

24.8 सांराश

श्रमिकों की सेवाओं के लिए उन्हें जो पुरस्कार दिया जाता है उसे मजदूरी कहते हैं। मजदूरी दो प्रकार की होती है, अर्थात् - नकद मजदूरी - श्रमिकों को मुद्रा के रूप में जो मजदूरी प्राप्त होती है उसे नकद मजदूरी कहते हैं। वास्तविक मजदूरी - वास्तविक मजदूरी, नकदी मजदूरी की क्रय शाक्ति होती है, साथ ही इसमें अन्य सुविधाएँ प्राप्त होती हैं उन्हें भी जोड़ा जाता है। वास्तविक मजदूरी के तत्व - (1) मौद्रिक मजदूरी की मात्रा (2) मुद्रा की क्रय शक्ति (3) अतिरिक्त आय (4) अन्य सुविधाएँ (5) कार्य की प्रकृति (6) कार्य के घण्टे (7) भविष्य में उन्नति की आशा (8) सामाजिक प्रतिष्ठा (9) आराम एवं छुट्टीयाँ।

मजदूरी निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त - श्रमिक के माँग एवं पूर्ति का सिद्धान्त श्रमिक की माँग व्युत्पन्न माँग होती है।

श्रमिक की माँग निम्न तत्वों पर निर्भर होती है - (1) श्रम की उत्पादकता (2) तकनीकी (3) श्रमिक द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग (4) पूँजी की कीमत श्रम की पूर्ति - (1) एक फर्म के लिए श्रम की पूर्ति पूर्णतया लोचदा होती है, ये उपयोग के लिए पूर्ति रेखा पूर्णतया लोचदार नहीं होती है। एक उद्योग के लिए श्रम की पूर्ति दो तत्वों से प्रभावित होती है- (अ) श्रम की व्यावसायिक गति शील ता और (ब) कार्य-आराम अनुपात मजदूरी दर का निर्धारण माँग एवं पूर्ति की सापेक्षिक शाक्तियों के द्वारा होता है।

24.9 शब्दावली

सामूहिक सौदेबाजी- जब श्रमिक संघ, सेवायोजकों से मोल भाव करके मजदूरों की मजदूरी में वृद्धि का प्रयत्न करते हैं तो यह स्थिति सामूहिक सौदेबाजी की होती है।

मौद्रिक या नकद मजदूरी- मौद्रिक या नकद मजदूरी वह मजदूरी है जो श्रमिक को उसके श्रम के बदले एक निश्चित समय में मुद्रा के रुप में दी जाती है।

मजदूरी कोष - मजदूरी कोष वह कोष होता है जो पूर्व बचतों के फलस्वरूप् तैयार किया जाता है। सेवायोजक इस कोष का उपयोग श्रम को क्रय करने के लिए करते हैं।

असल या वास्तविक मजदूरी - वास्तविक मजदूरी वस्तुओं एवं सेवाओं की उस मात्रा को बताती है जिसे एक निश्चित समय में श्रमिक प्रचलित कीमतों पर क्रय कर सकता है।

24.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. यदि श्रम की उत्पादकता बढ़ती है, तो उसकी मजदूरी स्तर भी -
(a) बढ़ेगा (b) स्थिर होगा (c) कम होगा (d) कोई प्रभाव नहीं होगा
2. मजदूरी का अवशेष अधिकारी सिद्धान्त प्रतिपादित किया -
(a) पीगू ने (b) मार्शल ने (c) जे0बी0 से ने (d) वाकर ने
3. नाम-मात्र की मजदूरी से आश्य है -
(a) जो मजदूरी मुद्रा में मिल ती है (b) जो मुद्रा में नहीं मिल ती
(c) जो नगण्य हो (d) जो उचित समय पर न दी जाए
4. मजदूरी के लौह नियम का प्रतिपादन किस अर्थशास्त्री ने किया -
(a) रिकार्डो (b) एडम स्मिथ (c) जे0एस0 मिल (d) पीगू
5. 'मजदूरी कोष सिद्धान्तों' के प्रतिपादक हैं -
(a) जे0 एस0 मिल (b) फिशर (c) माल्थस (d) मार्शल
6. मजदूरी का जीवन-निर्वाह सिद्धान्त बताता है कि दीर्घकाल में श्रम का पूर्तिं वक्र होता है-
(a) पूर्णतः लोचदार (b) पूर्णतः बेलोचदार (c) लोचदार (d) इनमें से कोई नहीं

उत्तर - **1. (a), 2. (d), 3. (a), 4. (b), 5. (a), 6. (a)**

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मौद्रिक व नकद मजदूरी में अन्तर।
2. मजदूरी की कोई दो परिभाषाएँ।
3. श्रम की माँग का अर्थ एवं उसे प्रभावित करने वाले तत्व।
4. श्रम की पूर्तिं।
5. वास्तविक मजदूरी से क्या आशय है ?

24.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्रा, जे0पी0 (2009): उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त -मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन,वाराणसी।
2. सिन्हा, वी0सी0 (1990): उन्नत आर्थिक सिद्धान्त, स्टूडेन्ट फ्रेन्डस इलाहाबाद।

3. आहूजा, एम0एल0 (2006): उच्च आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक विश्लेषण, चन्द्र प्रकाशन, दिल्ली।
4. लाल, एस0 एन0 (2005): उच्च आर्थिक सिद्धान्त, शिवा पब्लिशिंग हाऊस -इलाहाबाद।
5. लाल, एस0 एन0 (2008): माइक्रों इकोनामिक्स:शिवा पब्लिशिंगहाऊस - इलाहाबाद।
8. जैन, पी0 सी0 (1995): उच्च आर्थिक विश्लेषण, चुग प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. त्रिपाठी, बद्री विशाल (2000): एडवांस इकोनोमिक थ्योरी,किताब महल्, इलाहाबाद।

24.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Mehta,J.K.(1980):EconomicTheory,ChughPublications,Allahabad.
- Jhingan, M.L. (2007) : Advanced Economic Theory, Vrinda Prakashan, New Delhi.
- Seth, M.L. (2007): Micro Economics, L.N. Agrwal Publications, Agra.
- P. Samuelson (1967) : Micro Economic Theory & Policy, Oxford University Press, U.K.
- Dhingra, I.S. (2005) : Advaned Economics Theory New Century Publication. DelhiTripathi, B.B. (2000) : Micro Economics, Kitab Mahal Allahabad

24.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्रम की माँग एवं पूर्ति की व्याख्या कीजिए तथा मजदूरी निर्धारण पर इसके प्रभाव बताइए।
2. मजदूरी के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
3. मजदूरी किसे कहते हैं मौद्रिक एवं वास्तविक मजदूरी में अन्तर बताइए। वास्तविक मजदूरी के निर्धारक तत्व को समझाइए।
4. अपूर्ण प्रतियोगिता में किस प्रकार मजदूरी निर्धारण होता है ?
5. पूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी निर्धारण समझाइए।
6. श्रम का पूर्ति वक्र पीछे की ओर मुड़ा हुआ क्यों होता है ?
7. श्रम की माँग व्युत्पन्न माँग क्यों होती है ?
8. क्रेता एकाधिकार शोषण को समझाइए।

इकाई 25 रिकार्डो का लगान सिद्धान्त और आर्थिक लगान

इकाई की रूपरेखा

25.0 प्रस्तावना
25.1 उद्देश्य
25.2 रिकार्डो का लगान सिद्धान्त
25.3 विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान
25.4 गहन खेती के अन्तर्गत लगान
25.5 रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचनाएँ
25.6 आर्थिक लगान या आधुनिक लगान सिद्धान्त
25.7 लगान के आधुनिक सिद्धान्त की आलोचनाएँ
25.8 सांराश
25.9 शब्दावली
25.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
25.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
25.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
25.13 निबन्धात्मक प्रश्न

25.0 प्रस्तावना

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त को 'आर्थिक लगान का सिद्धान्त' भी कहा जाता है। रिकार्डो के पहले प्रकृतिवादियों का विचार था कि, ''लगान प्रकृति की उदारता का परिणाम होता है।'' उनका विचार था कि चूँकि प्रकृति बहुत दयालु है इसलिए किसान को उसकी लागत से अधिक मूल्य का अनाज प्राप्त होता है। यह आधिक्य ही लगान होता है। इसके विपरीत, डेविड रिकार्डो का विचार था कि 'लगान प्रकृति की कंजूसीपन एवं सीमितता के कारण प्राप्त होता है'। चूँकि अच्छी किस्म की उपजाऊ भूमि की कमी होती हैं, इसलिए किसान बाध्य होकर कम उपजाऊ या घटिया किस्म की भूमि पर खेती करता है। जैसे ही वह कम उपजाऊ भूमि पर खेती करता है वैसे ही उसे अधिक उपजाऊ भूमि से लगान मिल ना शुरू हो जाता हैं। अतः रिकार्डो के अनुसार, -''ऊँचा लगान प्रकृति की उदारता के कारण नहीं बल्कि उसकी कंजूसीपन के कारण उत्पन्न होता है।''

25.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- अल्पकालिक विशिष्टता प्राप्त उत्पादन के सभी साधनों के वास्तविक आय तथा हस्तान्तरण आय के अन्तर द्वारा लगान या अधिशेष की जानकारी प्राप्त करना।
- बदलते हस्तान्तरण आय के साथ-साथ परिवर्तित लगान को ज्ञात करना।

25.2 रिकार्डो के लगान सिद्धान्त

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि भूमि की मौलिक और अविनाशी शक्तियों द्वारा लगान किस भाँति व्युत्पन्न होता हैं। अर्थात् विभिन्न प्रकार के भूमि के टुकडे जिन पर कृषि का कार्य किया जा रहा है, उन सबका क्षेत्रफल समान होने से भूमियों से अतिरिक्त लगान प्राप्त होता है इसके अतिरिक्त यह पता लगाना कि विस्तृत खेती में किस प्रकार लगान उदय होता है। यह तो सभी जानते हैं कि उत्पादकता की माँग बढ़ने पर जैसे-जैसे उपजाऊ भूमि पर कृषि विस्तार होता है, तैसे-तैसे अच्छी भूमियों पर उत्पत्ति की बचत बढ़नें लगता है या जैसे-जैसे खेती की सीमा विस्तार होता है, वैसे-वैसे लगान में वृद्धि होती है।

रिकार्डो के अनुसार लगान की परिभाषा -''लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमि के मालिक को भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के उपयोग के लिए दिया जाता है।''

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त का स्पष्टीकरण-रिकार्डो का भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों से अभिप्राय भूमि की उपजाऊपन से था। भूमि का यह उपजाऊपन कुछ सीमा तक अर्जित और कुछ

सीमा तक प्राकृतिक होता है। व्यक्ति भूमि में सुधार करके एवं रासायनिक खाद एवं कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करके भूमि के उपजाऊपन को बढ़ा सकता है, किन्तु रिकार्डो के अनुसार अनाज के उत्पादन के उस भाग को लगान कहा जाएगा जो प्रकृति की ओर से प्राप्त उपजाऊपन के कारण प्राप्त होता है और जिसे किसान लगान के रूप में भूमिपति को देता है।

लगान एक भेदात्मक बचत है -रिकार्डो के अनुसार लगान एक भेदात्मक बचत है। भूमि के सभी टुकड़े उपजाऊपन की दृष्टि से एक समान नहीं होते हैं। रिकार्डो ने अधिक उपजाऊ भूमि को 'अधिसीमान्त भूमि' कहा है जबकि कम उपजाऊ भूमि को सीमान्त भूमि। रिकार्डो का विचार था कि यदि दोनों प्रकार की भूमि पर समान मात्रा में श्रम एवं पूँजी लगाई जाती है तो अधिसीमान्त भूमि में सीमान्त भूमि की तुलना में अधिक उत्पादन प्राप्त होगा। सीमान्त भूमि की उपज की तुलना में जो अधिक उत्पादन प्राप्त होगा वही उस अधिसीमान्त भूमि का लगान कहलाएगा। सीमान्त भूमि लगान -रहित भूमि होगी। इससे कोई बचत प्राप्त नहीं होगी। इससे तो केवल लागत की प्राप्ति ही हो सकेगी। इसलिए रिकार्डो ने लगान को ''भेदात्मक बचत'' कहा है।

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जाता है-

(1) विस्तृत खेती के अन्तर्गत रिकार्डो का लगान सिद्धान्त।

(2) गहन खेती के अन्तर्गत रिकार्डो का लगान सिद्धान्त।

25.3 (1) विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान -विस्तृत खेती का अर्थ होता हैं, उत्पादन की वह विधि जिसके अन्तर्गत अनाज के उत्पादन को बढ़ाने के लिए अधिक भूमि में खेती की जाती है। विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान के निर्धारण के लिए रिकार्डो ने एक ऐतिहासिक उदाहारण दिया है। उन्होंने एक ऐसे देश की कल्पना की है जहाँ कोई व्यक्ति निवास नहीं करता है। भूमि बेकार पड़ी है। इस निर्जन टापू में देश की भूमि को उसके उपजाऊपन के आधार पर उन्होंने चार वर्गों में विभाजित किया है- प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी, तृतीय श्रेणी और चतुर्थ श्रेणी। अब रिकार्डो यह कल्पना करता है कि इस देश में लोगों का पहला जत्था पहुँचता है। चूँकि उस स्थान में पर्याप्त भूमि है इसलिए लोग जीविका के लिए खेती करेंगे। मानव स्वभाव के कारण वे पहले वे सबसे अधिक

उपजाऊ भूमि, अर्थात् प्रथम श्रेणी की भूमि पर खेती करेंगे। जब तक वे प्रथम श्रेणी की

भूमि पर खेती करते रहेंगे, आर्थिक लगान उत्पन्न नहीं होगा। इसका कारण यह है कि अभी प्रथम श्रेणी की भूमि ही अधिसीमान्त एवं सीमान्त भूमि दोनों हैं। अतः इस भूमि से कोई बचत प्राप्त नहीं होगी।

मान लीजिए अब उस देश में लोगों का दूसरा जत्था (रहने) के लिए पहुँचता है अथवा उस देश की जनसंख्या बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में खाद्यान्न की माँग बढ़ जाएगी और अनाज का मूल्य बढ़ने लगेगा । अतः लोग अपनी खाद्यान्न की आवश्यकता को पूरा करने के लिए द्वितीय श्रेणी की भूमि

पर खेती करना शुरू कर देंगे। खाद्यान्न के मूल्य बढ़ जाने से अब द्वितीय श्रेणी की भूमि से उत्पादन लागत की वसूली हो जाएगी। यह द्वितीय श्रेणी की भूमि अब सीमान्त भूमि हो जाएगी और प्रथम श्रेणी की अधिसीमान्त भूमि से द्वितीय श्रेणी की सीमान्त भूमि की तुलना में जो अधिक उत्पादन प्राप्त होगा, वही प्रथम श्रेणी की भूमि का लगान होगा।

इसी प्रकार से जब देश में लोगों का तीसरा और चौथा जत्था आएगा तो जनसंख्या के बढ़ने के कारण खाद्यान्न की माँग बढ़ेगी। खाद्यान्न की माँग बढ़ने से अनाज का मूल्य बढ़ेगा। इसके परिणामस्वरूप लोग तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी की भूमि पर खेती करेंगे। चतुर्थ श्रेणी की भूमि सीमान्त भूमि हो जाएगी तथा प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी की भूमियाँ अधिसीमान्त भूमि। इन भूमियों से चतुर्थ श्रेणी की भूमि की तुलना में जो अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त होगा वही इन भूमियों का लगान कहलाएगा।

बाजार में अनाज का मूल्य सीमान्त भूमि की उत्पादन लागत के द्वारा निर्धारित होता है तथा बाजार में सभी भूमियों का अनाज एक ही कीमत पर बेचा जाता है। अतः अधिसीमान्त भूमियों के अनाज को बेचने से जो बचत प्राप्त होगी, इसी बचत को रिकार्डो ने लगान कहा है। फैलनर के शब्दों में, ''अधिसीमान्त भूमियों की उत्पादन लागत तथा अनाजों के बिक्री से प्राप्त कीमत का अन्तर ही रिकार्डो का लगान है।''

तालिका द्वारा स्पष्टीकरण-रिकार्डो के लगान सिद्धान्त को तालिका 25.1 में उत्पादन की

मात्रा, द्रव्य तथा दोनों रूपों में दिखाया गया है:-

तालिका 25.1

श्रम एवं पूँजी की इकाइयाँ	गेहूँ का उत्पादन (क्विंटलमें)	कुल लागत (रूपये में) (क्विंटल में)	बाजार मूल्य (प्रतिक्विंटल में)	लगान (क्विंटल में)	लगान (द्रव्य में)
प्रथम श्रेणी द्वितीय श्रेणी तृतीय श्रेणी चतुर्थ श्रेणी (सीमान्त इकाई लगान रहित)	20 15 10 5	2500 1500 1500 1500	300 रू0 300 रू0 300 रू0 300 रू0	(20-5) = 15 (15-5) = 10 (10-5) = 5 (5-5) = 0	15 x 300 = 450 रू0 10 x 300 = 3000 रू 05x300=1500रू0 1500-1500=0रू0

(1) तालिका से स्पष्ट है कि समान मात्रा में श्रम एवं पूँजी का प्रयोग करने से प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी की भूमियों से क्रमशः 20, 15, 10 एवं 5 क्विंटल गेहूँ का उत्पादन प्राप्त हो रहा है।

(2) चतुर्थ श्रेणी की भूमि सीमान्त भूमि है। इससे कोई बचत प्राप्त नहीं होती है। इससे केवल उत्पादन लागत की प्राप्ति ही होती है। अतः यह लगान रहित भूमि है।

(3) प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी की भूमियाँ अधिसीमान्त भूमि हैं। इसे क्रमशः 15, 10, एवं 5 क्विंटल गेहूँ लगान के रूप में प्राप्त हो रहा है।

(4) चूँकि अनाज का मूल्य सीमान्त भूमि के उत्पादन लागत के द्वारा निर्धारित होता है। अतः बाजार में 5 क्विंटल गेहूँ की लागत 1,500 रु0 होने के कारण प्रति क्विंटल मूल्य 300 रु0 निर्धारित होगा।

(5) सभी श्रेणी की भूमियों का अनाज 300 रु0 प्रति क्विंटल मूल्य के हिसाब से बेचा जाएगा। अतः इन तीनों भूमियों का अनाज क्रमशः 6,000 रु0, 4,500 रु0, 3,000 रु0, एवं 1,500 रु0 मे बेचा जाएगा।

(6) प्रत्येक भूमि में गेहूँ की उत्पादन लागत 1,500 रु0 है। अतः प्रथम श्रेणी की भूमि की 4,500 रु0, द्वितीय श्रेणी की भूमि को 3,000 रु0 तथा तृतीय श्रेणी की भूमि को 1,500 रु0 के बराबर लगान प्राप्त होगा।

विस्तृत खेती के अन्तर्गत इस लागान सिद्धान्त को रेखाचित्र की सहायता से भी स्पष्ट किया जा सकता है-

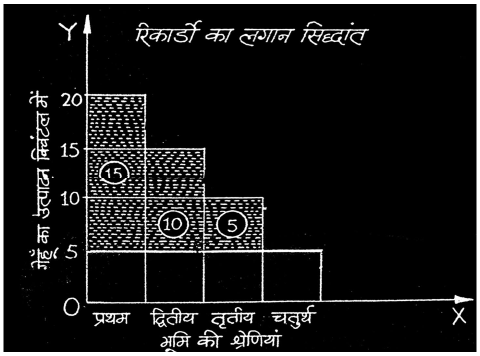

चित्र 25.1

रेखाचित्र में OX - अक्ष पर भूमि की किस्मों तथा OY- अक्ष पर उनसे प्राप्त उत्पादन को दिखाया गया है-

(i) चतुर्थ श्रेणी की भूमि सीमान्त भूमि है। अतः यह लागानरहित भूमि है।
(ii) चूँकि सभी भूमियों में उत्पादन लागत एक समान है, अतः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी से प्राप्त लगान को छायांकित क्षेत्र रूप में दिखाया गया है।
(iii) चित्र से स्पष्ट है कि प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी की भूमियों में लगान क्रमशः 15, 10 एवं 5 क्विंटल है।

25.4 (4) गहन खेती के अन्तर्गत लगान

खाद्यान्न की बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए जब खेती योग्य भूमि के क्षेत्रफल को बढ़ाना सम्भव नहीं होता है तब गहरी खेती का सहारा लिया जाता है। इसके अन्तर्गत जोती जाने वाली भूमि पर श्रम एवं पूँजी की अधिक इकाइयाँ लगाकर उपज को बढ़ाने का प्रयास किया जाता है।

रिकार्डो का लगान सिद्धान्त गहरी खेती के अन्तर्गत भी लगान होता है। उनके अनुसार जब किसान भूमि के एक ही टुकड़े पर श्रक एवं पूँजी की अनेक इकाइयों का प्रयोग करता है तो उत्पादन में क्रमागत उत्पत्ति ह्वास नियम लागू होने के कारण उन श्रम एवं पूँजी की इकाइयों का सीमान्त उत्पादन क्रमशः घटने लगता है। इसके अन्तर्गत एक सीमा ऐसी आती है जहाँ श्रम एवं पूँजी की एक अतिरिक्त इकाई लगाने से जो सीमान्त उत्पादन प्राप्त होता है, उसका मूल्य इन साधनों की लागत के बराबर हो जाता है। श्रम एवं पूँजी की इकाइयों को ''सीमान्त मात्रा'' कहा जाता है। इससे पहले के श्रम एवं पूँजी की इकाइयों को ''अधिसीमान्त मात्राएँ'' कहा जाता है। चूँकि अधिसीमान्त मात्राओं की सीमान्त उत्पादकता सीमान्त मात्रा की सीमान्त उत्पादकता से अधिक होती है, अतः इन दोनों के उपज का अन्तर ही अधिसीमान्त मात्राओं का लगान कहलाता है।

तालिका द्वारा स्पष्टीकरण-रिकार्डो के लगान सिद्धान्त को तालिका 25.2 से स्पष्ट किया गया है-

(1) तालिका में श्रम एवं पूँजी की चौथी मात्रा सीमान्त मात्रा है। इससे प्राप्त उपज का मूल्य, उत्पादन लागत के बराबर है। अतः इससे कोई बचत प्राप्त नहीं होती है।

(2) श्रम एवं पूँजी की प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय इकाइयाँ अधिसीमान्त मात्राएँ हैं। इनके उपयोग से किसान को क्रमशः 15, 10 एवं 5 क्विंटल अनाज के रूप में प्राप्त हो रहा है।

तालिका 25.2 रिकार्डो के लगान सिद्धान्त का स्पष्टीकरण

श्रम एवं श्रेणियाँ	गेहूँ का उत्पादन (क्विंटलमें)	कुल लागत (रूपये में)	मूल्य (प्रतिक्विंटल)	लगान (क्विंटल में)	लगान (द्रव्य में)
प्रथम श्रेणी	20	1500	300 रू0	(20–5) = 15	6000 –1500 = 4500
द्वितीय श्रेणी	15	1500	300 रू0	(15–5) = 10	4500 –1500 = 3000
तृतीय श्रेणी	10	1500	300 रू0	(10–5) = 5	3500 –1500 = 1500
चतुर्थ श्रेणी (सीमान्तइकाई लगान रहित)	5	1500	300 रू0	(5–5) = 0	1500 –1500 = 00

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण-गहरी खेती के अन्तर्गत लगान को रेखाचित्र 25.2 से भी समझाया जा सकता है-

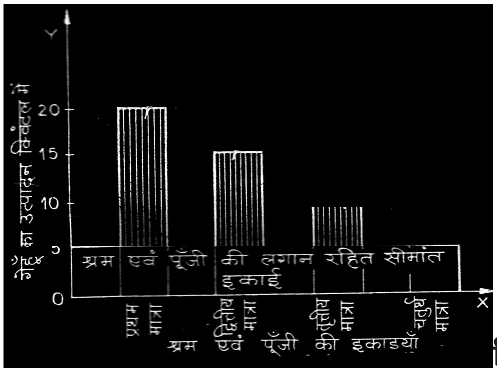

चित्र 25.2

(1) रेखा चित्र में OXअक्ष में श्रम एवं पूँजी की इकाइयों को दिखाया गया है।

(2) OY अक्ष पर उत्पादन को दिखाया गया है।

(3) श्रम एवं पूँजी की चौथी इकाई सीमान्त मात्रा है, जबकि प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय मात्राएँ अधिसीमान्त मात्राएँ हैं।

(4) प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय अधिसीमान्त मात्राओं से क्रमशः 15, 10 एवं 5 क्विंटल अनाज लगान के रूप में प्राप्त हो रहा है।

लगान एवं भूमि की स्थिति - रिकार्डो के लगान सिद्धान्त पर भूमि की स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। वह भूमि जो बाजार के निकट अथवा शहर के पास होती है, दूर स्थिति भूमि की तुलना में अधिक लगान प्रदान करती है। भूमि की उपजाऊपन में भिन्नता न होने पर भी अनाज की बिक्री के लिए मण्डी तक ले जाने का यातायात व्यय, लगान को प्रभावित करता है। भूमि का जो टुकड़ा मण्डी के पास होता है, वहाँ से मण्डी तक अनाज लाने का यातायात व्यय कम आता है। इसके विपरीत, दूर स्थित भूमि से अनाज को मण्डी तक लाने का यातायात व्यय अधिक आता है। चूँकि यातायात व्यय, उत्पादन लागत का एक भाग होता है, अतः दोनों भूमि के टुकड़ों के उपजाऊपन समान होने पर भी बाजार के निकट वाली भूमि को, दूर स्थित भूमि की तुलना में बचत प्राप्त होती है। रिकार्डो के अनुसार यह बचत ही मण्डी के निकट की भूमि का आर्थिक लगान होता है।

उदाहरण के लिए, मान लीजिए भूमि के दो टुकड़े ‘अ’ एवं ‘ब’ हैं। दोनों की उपजाऊपन एक समान है, किन्तु ‘अ’ भूमि बाजार या शहर के निकट स्थित है जबकि ‘ब’ भूमि बाजार से बहुत दूर स्थित है। ऐसी स्थिति में दोनों भूमियों से उत्पादित अनाज की बिक्री के लिए लाने में यातायात लागत भिन्न-भिन्न आएगी। मान लीजिए ‘अ’ भूमि से अनाज को मण्डी तक लाने की यातायात लागत 100 रुपये हे जबकि ‘ब’ भूमि से 200 रुपया। मान लीजिए कि दोनों भूमि के उत्पादन लागत को

निकाल ने के बाद 200-200 रु0 की बजत प्राप्त होती है। चूँकि यातायात व्यय, उत्पादन लागत का एक भाग होता है, अतः 'ब' भूमि से कोई बचत प्राप्त नहीं होगी, किन्तु 'अ' भूमि को (200-100) की बचत प्राप्त होगा। 'अ' भूमि को प्राप्त होने वाली यह बचत उसका आर्थिक लगान होगा।

लगान कीमत को नहीं प्रभावित करता है -रिकार्डो के अनुसार लगान अनाज के मूल्य को प्रभावित नहीं करता, बल्कि यह अनाज के मूल्य से प्रभावित होता है। इसका कारण यह है कि सीमान्त भूमि लगान रहित होती है। इस भूमि के उत्पादन के मूल्य से केवल उत्पादन लागत की प्राप्ति होती है। अतः अनाज का मूल्य सीमान्त भूमि के उत्पादन लागत के द्वारा निर्धारित होता है। चूँकि लगान , लागत के ऊ पर एक बचत, अतः यह मूल्य को प्रभावित नहीं करता, बल्कि मूल्य से प्रभावित होता है।

लगान एक अनुपार्जित आय है -रिकार्डो के अनुसार लगान के लिए भूमिपति को कोई कार्य नहीं करना पड़ता है। खेती तो किसान करता है जो अपना श्रम एवं पूँजी लगाता है। उसे केवल उत्पादन लागत ही प्राप्त होती है। खेती से जो बचत प्राप्त होती है वह भूमिपति को लगान के रूप में दे दिया जाता है। अतः रिकार्डो के अनुसार लगान एक अनुपार्जित आय है।

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की मान्यताएँ - रिकार्डो का लगान सिद्धान्त निम्नलिखित मानयताओं पर आधारित है-

(1) यह सिद्धान्त दीर्घकाल में लागू होता है।

(2) यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है।

(3) लगान केवल भूमि से ही प्राप्त होता है, क्योंकि इसकी पूर्ति सीमित होती है।

(4) भूमि में मौलिक एवं अविनाशी शक्ति पाई जाती है। भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्ति से रिकार्डो का अर्थ भूमि के उपजाऊपन से था।

(5) भूमि के उपजाऊपन में भिन्नता होती है।

(6) प्रथम श्रेणी अर्थात् सबसे अधिक उपजाऊ भूमि पर पहले खेती की जाती है।

(7) सीमान्त भूमि लगान रहित होती है। इससे केवल उत्पादन लागत ही प्राप्त होती है।

(8) सीमान्त भूमि के उत्पादन लागत के द्वारा ही अनाज का मूल्य निर्धारित होता है।

(9) कृषि के क्षेत्र में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

(10) जनसंख्या तीव्रगति से बढ़ती है।

25.5 रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचनाएँ

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं-

(1) भूमि में कोई मौलिक एवं अविनाशी शक्तियाँ नहीं पाई जाती है -आलोचकों के अनुसार भूमि में कोई मौलिक एवं अविनाशी शक्तियाँ नहीं पाई जाती हैं। आज के अणु एवं हाइड्रोजन बम के युग में भूमि के उपजाऊपन को अविनाशी कहना गलत है। साथ ही भूमि का उपजाऊपन रासायनिक खादों एवं कम्पोस्ट खाद का उपयोग करके प्राप्त की जाती है एवं बढ़ाई जाती है। अतः भूमि का उपजाऊपन मौलिक एवं अविनाशी नहीं होता है।

(2) भूमि को जोतने का क्रम सही नहीं -रिकार्डो के अनुसार लोग सबसे अधिक उपजाऊ भूमि पर पहले खेती करते हैं, इसके बाद इससे कम उपजाऊ भूमि पर खेती की जाती है। किन्तु अमेरिका के अर्थशास्त्री हेनरी कैरे ने इसे ऐतिहासिक दृष्टि से गलत बताया है। वास्तव में लोग उस भूमि पर पहले खेती करते हैं जो सुविधाजनक स्थिति में तथा शहर अथवा मण्डी के निकट होती है।

(3) भूमि की उत्पादकता को अलग से ज्ञात नहीं किया जा सकता -आलोचकों का विचार है कि भूमि से प्राप्त उपज, भूमि की उपजाऊपन, खेती में लगाई गई पूँजी तथा श्रम, सभी का संयुक्त परिणाम होता है। ऐसी स्थिति में भूमि की उत्पादकता को अलग से प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

(4) अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित -रिकार्डो का लगान सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता एवं दीर्घकाल की अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। वास्तव में, भूमिपति एवं किसानों के बीच पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पाई जाती है। साथ ही दीर्घकाल में हमारी कोई समस्या नहीं होती है, क्योंकि दीर्घकाल में हम सभी मर जाते हैं। यह सिद्धान्त अल्पकाल की व्याख्या नहीं करता है।

(5) भूमि की सीमितता ही लगान उत्पन्न होने का मूल कारण है -रिकार्डो का विचार है कि लगान उत्पन्न होने का प्रमुख कारण भूमि के उपजाऊपन में भिन्नता होना है, किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों का विचार है कि लगान उत्पन्न होने का प्रमुख कारण भूमि की पूर्ति का इसकी माँग की तुलना में सीमित होना है। अतः अनाज के लिए भूमि की माँग बढ़ जाती है और भूमिपति को लगान प्राप्त होता है।

(6) कोई भूमि लगान रहित नहीं होती -रिकार्डो के सीमान्त भूमि को लगान रहित भूमि माना है, किन्तु आलोचकों का विचार है कि वास्तविक संसार में कोई भूमि लगान रहित नहीं होती है।

(7) उत्पत्ति ह्रास नियम को लागू होने से रोका जा सकता है -आलोचकों का विचार है कि लगान उत्पादन लागत का एक भाग है, अतः यह अनाज के मूल्य को प्रभावित करता है।

25.6 (2) आर्थिक लगान या आधुनिक लगान सिद्धान्त

लगान एक बचत के रूप में आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने लगान की व्याख्या रिकार्डो के समान एक बचत के रूप में की है। रिकार्डो ने अधिसीमान्त एवं सीमान्त भूमि के उपज के अन्त को लगान कहा है, किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री लगान को साधन के अवसर लागत के ऊपर एक बचत मानते हैं। अवसर लागत, उत्पादन के किसी साधन को उसके अपने वर्तमान प्रयोग में बनाए रखने के लिए न्यनतम पूर्ति मूल्य होता है। यदि किसी साधन को अपने वर्तमान प्रयोग में बनाए रखना है तो उसे न्यूनतम पूर्ति मूल्य देना होगा अन्यथा वह साधन किसी दूसरे लाभदायक प्रयोग में हस्तान्तरित हो जाएगा। चूँकि भूमि की पूर्ति सीमित होती है इसलिए भूमि को इसकी न्यनतम पूर्ति मूल्य अथवा अवसर लागत से अधिक मूल्य प्राप्त होता है। अवसर लागत अथवा हस्तान्तरण आय के ऊपर इसी बचत को आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने लगान कहा है।

इसे एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लिजिए भूमि के एक टुकड़े से गेहूँ की खेती करने पर 1,000 रु0 की आय होती है। यदि उसी भूमि के एक टुकड़े से गन्ने की खेती की जाय तो 800 रुपये की आय होगी। ऐसी स्थिति में उस भूमि के टुकड़े के लिए 800 रुपये अवसर लागत या न्यूनतम पूर्ति मूल्य है। उस भूमि के टुकड़े पर गेहूँ की खेती करने के लिए कम से कम 800 रुपये न्यूनतम पूर्ति मूल्य देना होगा, किन्तु उस भूमि के टुकड़े पर गेहूँ की खेती करने के लिए 1,000 रु0 का भुगतान किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में उस भूमि के टुकड़े का वर्तमान मूल्य-अवसर लागत (1,000-800) त्र 200 रुपये लगान होगा। इस प्रकार, आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान किसी साधन को उसके वर्तमान उपयोग में बनाए रखने के लिए अवसर लागत के ऊपर एक बचत है। **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** ने इसकी परिभाषा निम्न प्रकार से की है-

''लगान के विचार का सार वह बचत है जो कि एक साध की एक इकाई उस न्यून्तम मूल्य के ऊपर प्राप्त करती है जो कि साधन को अपना कार्य करते रहने के लिए आवश्यक है।''

आधुनिक लगान सिद्धान्त का आधार -लगान के आधुनिक सिद्धान्त का आधार, साधनों की विशिष्टता है। इस सम्बन्ध में **ऑस्ट्रियन अर्थशास्त्री वॉन वीजर** ने उत्पादन के साधनों को दो वर्गों में बाँटा है-

(1) पूर्णतया विशिष्ट साधन

(2) पूर्णतया अविशिष्ट साधन

पूर्णतया विशिष्ट साधन वे हैं जिनका केवल एक ही प्रयोग किया जा सकता है। इन साधनों का किसी दूसरे प्रयोग में उपयोग नहीं किया जा सकता। अतः विशिष्ट साधनों की अवसर लागत शून्य होती है। इसके परिणामस्वरूप विशिष्ट साधनों के लिए दिया जाने वाला सम्पूर्ण मूल्य इसका लगान होता है। इसके विपरीत, अविशिष्ट साधन वे होते हैं जिनका कई प्रकार से उपयोग किया जा सकता है। अतः ऐसे साधनों के लिए दिए जाने वाले मूल्य के बराबर अवसर लागत अन्य प्रयोगों में भी प्राप्त हो सकता है। चूँकि इन साधनों को अपने वर्तमान मूल्य के उसके अवसर लागत के ऊपर कोई बचत प्राप्त नहीं होती है, इसलिए अविशिष्ट साधनों को कोई लगान प्राप्त नहीं होता है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है।

उदाहरण-मान लीजिए, एक बूढ़े नौकर को उसका मालिक 200 रुपये प्रतिमाह वेतन देता है। यदि वह अपने नौकर को काम से अलग कर देता है तो उसे अन्य जगहों पर नौकरी नहीं मिल सकती, क्योंकि वह अत्यन्त बूढ़ा है। ऐसी स्थिति में वह बूढ़ा नौकर पूर्णतया विशिष्ट साधन कहलाएगा और उसको मिल ने वाला वेतन रुपये 200 उसका लगान कहलाएगा। इसके विपरीत, मान लीजिए, एक इंजीनियर भिलाई इस्पात उद्योग में कार्य करता है और उसे 10,000 रुपये मासिक वेतन मिल ता है। यदि उसे भिलाई इस्पात कारखाने की नौकरी से अलग कर दिया जाता है तो उसे एलाइड स्टील प्लान्ट में 10,000 रुपये मासिक वेतन पर ही नौकरी मिल सकती है। ऐसी स्थिति में वह इंजीनियर पूर्णतः अविशिष्ट साधन कहलाएगा। चूँकि उसे अवसर लागत के ऊपर कोई बचत प्राप्त नहीं हो पा रही है, अतः उसे कोई लगान प्राप्त नहीं होगा।

सामान्यतया उत्पादन का कोई भी साधन न तो पूर्णतः विशिष्ट होता है और न ही पूर्णतः अविशिष्ट। इसके विपरीत, वह आंशिक रूप से विशिष्ट एवं आंशिक रूप से अविशिष्ट होता है। साधन जिस अनुपात में विशिष्ट होगा, उसी अनुपात में उसे लगान भी प्राप्त होगा। उदाहरण के लिए मान लीजिए एक एकड़ भूमि पर यदि कपास की खेती की जाती है तो किसान को 1,000 रुपये की आय होती है। यदि उसी भूमि पर गेहूँ की खेती की जाती है तो किसान को 800 रु0 की आय प्राप्त होगी। अतः गेहूँ की खेती से प्राप्त होने वाली आय 800 रु0 उस भूमि के लिए अवसर लागत होगी, तथा उस भूमि पर कपास की ही खेती करने से अतिरिक्त आय 1000 - 800 त्र 200 रुपये होगी, वही उस भूमि का लगान कहलाएगा।

अतः आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान साधन के अवसर के ऊपर उसकी वर्तमान आय का आधिक्य या बचत है।

लगान = वास्तविक आय - अवसर लागत

इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य बात है कि विशिष्टता एक गुण है जिसे कोई भी साधन प्राप्त कर सकता है। सामान्यतया उत्पादन का प्रत्येक साधन अल्पकाल में विशिष्ट होता है, किन्तु दीर्घकाल में

उसमें अविशिष्टता का गुण आ जाता है। यही कारण है कि उत्पादन के किसी भी साधन को अल्पकाल में विशिष्टता के गुण होने के कारण लगान प्राप्त हो सकता है।

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण-लगान के आधुनिक सिद्धान्त को निम्न रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट किया सकता है-

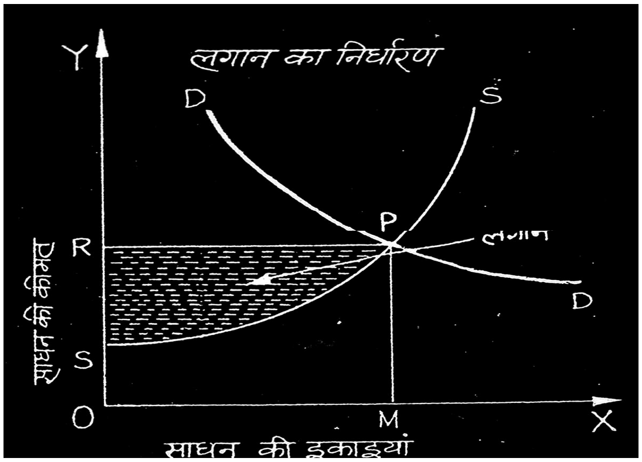

चित्र 25.3

(1) रेखाचित्र में SS साधन की पूर्ति रेखा है। साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार से कम होने के कारण यह रेखा SS के रूप में नीचे से ऊपर की ओर बढ़ती हुई रेखा है।

(2) सीमान्त उत्पादकता वक्र के अनुसार DD साधन की माँग वक्र है।

(3) यह माँग वक्र SS पूर्ति वक्र को P बिन्दु पर काट रहा है। अत P सन्तुलन बिन्दु है। इस साम्य बिन्दु पर साधन की कीमत PM अथवा OR के बराबर निर्धारित होगी।

(4) PM कीमत पर साधन की OM मात्रा प्रयोग में लाई जाएगी। अतः साधन की वर्तमान कीमत (PM)पर उसकी वास्तविक आय OM x PM = ORPM क्षेत्रफल के बराबर होगी।

(5) OS साधन की न्यूनतम पूर्ति कीमत है। इससे कम कीमत पर साधन की कोई भी इकाई कार्य नहीं करेगी। साधन की न्यनतम कीमत OS से बढ़ने पर इसकी पूर्तिं भी बढ़ती जाएगी। अतः SS पूर्तिं वक्र साधन की अवसर लागत वक्र है।

(6) OM इकाइयों का उपयोग करने पर साधन की वर्तमान आय ORPM के बराबर है जबकि उसकी न्यनतम पूर्तिं कीमत OSPM है। अतः OM साधन की इकाइयों के प्रयोग करने से वर्तमान आय अवस लागत (ORPM – OSPM) = RSP के बराबर लगान प्राप्त होगा।

25.7 लगान के आधुनिक सिद्धान्त की आलोचनाएँ

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि लगान के आधुनिक सिद्धान्त में निम्न विशेषताएँ होती हैं-

(1) उत्पादन का प्रत्येक साधन लगान प्राप्त कर सकता है। यह केवल भूमि से ही सम्बन्धित नहीं होता है।

(2) लगान साधन की वर्तमान आय में उसकी अवसर लागत के ऊपर बचत है।

(3) लगान उत्पन्न होने का कारण साधन में विशिष्टता का गुण होना है। अतः लगान विशिष्टता का पुरस्कार है।

(4) साधन के अविशिष्ट होने अथवा साधन की पूर्ति लोचदार होने पर लगान प्राप्त नहीं होता है।

(5) साधन के विशिष्ट होने अथवा पूर्ति बेलोचदार होने पर साधन की सम्पूर्ण वर्तमान आय उसका एक भाग ही लगान होता है। साधन जिस अंश तक विशिष्ट होता है उसी अंश तक उसके वर्तमान आय से लगान प्राप्त होता है।

इस प्रकार लगान का आधुनिक सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त है जो उत्पादन के सभी साधनों पर लागू होता है।

25.8 सांराश

रिकार्डो के अनुसार ''लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमि के स्वामी को भूमि की मूल तथा अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिए दिया जाता है।''

लगान के सम्बन्ध में रिकार्डो की प्रमुख बातें निम्नवत् हैं-

रिकार्डो ने स्पष्ट किया है कि लगान प्रकृति की उदारता के कारण नहीं, बल्कि उसकी कृपणता या कंजूसी के कारण मिल ता है। भूमियाँ समान उपजाऊ नहीं होती है। उपजाऊ भूमि की मात्रा सीमित होती है। जब दोनों खेतों के समान लागत लगाई जाती है, तो उपजाऊ खेत से अधिक और कम उपजाऊ खेत से कम उपज प्राप्त होती है। इस प्रकार उपजाऊ खेत से एक प्रकार का आधिक्य प्राप्त होता है और उस आधिक्य को उस खेत का लगान कहा जाता है। अतः लगान प्रकृति की कृपणता तथा सीमितता के ही कारण उत्पन्न होता है, न कि उदारता के कारण।

रिकार्डो का कहना है कि ''लगान एक भेदात्मक बचत'' है ही इसके अतिरिक्त लगान पर भूमि की स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। बाजार के पास वाली कम उपजाऊ भूमि बाजार से दूर वाली अधिक उपजाऊ भूमि से, अधिक महत्व की होती है। रिकार्डो का लगान सिद्धान्त निम्नांकित दो सन्दर्भों में अध्ययन किया जाता है-

(1) विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान

(2) गहन खेती के अन्तर्गत लगान

25.9 शब्दावली

आर्थिक लगान - आर्थिक लगान को शुद्ध लगान भी कहा जाता है, क्योंकि यह केवल भूमि के प्रयोग के बदले में दिया जाता है। रिकार्डो के अनुसार, आर्थिक लगान श्रेष्ठ और सीमान्त भूमि की उपज के अन्तर के बराबर होता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, आर्थिक लगान एक साधन की अवसर लागत के ऊपर बचत है।

ठेके का लगान - ठेके के लगान को दूसरे शब्दों मं प्रसंविदा लगान भी कहते हैं। यह वह लगान है जो भू-पति और काश्तकार के बीच समझौते के द्वारा तय होता है। ठेके का लगान अनेक परिस्थितियों से प्रभावित होकर आर्थिक लगान से अधिक, कम तथा उसके बराबर हो सकता है। दूसरे शब्दों में, ठेके का लगान दोनों पक्षों की सौदा करने की शक्ति पर निर्भर करता है।

25.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लगान की सर्वप्रथम एक स्पष्ट व सन्तोषजनक व्याख्या किसने दी -

(a) एडम स्मिथ (b) मार्शल (c) रिकार्डों (d) जे0एस0 मिल

2. रिकार्डो के अनुसार कौन सा कथन उचित है -

(a) लगान कीमतों में शामिल नहीं होता (b) लगान एक अनार्जित आय है

(c) लगान एक आधिक्य है (d) इनमें से तीनों कथन उचित है

3. आधुनिक लगान सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं-

(a) जे0 एम0 कीन्स (b) रोबिन्सन (c) मार्शल (d) पूर्व सीमान्त भूमि

4. सबसे निकट कोटि की भूमि को क्या कहा जाता है-

(a) भूमि (b) सीमान्त भूमि (c) अधिसीमान्त भूमि (d) पूर्व सीमान्त भूमि

5. ''अनाज इसलिये महंगा नहीं है कि लगान दिया जाता है वरन् लगान इसलिए दिया जाता है कि क्योंकि अनाज महंगा है''। यह कथन दिया है-

(a) एडम स्मिथ ने (b) जे0 एस0 मिल ने (c) रिकार्डों ने (d) मार्शल ने

6. आभास लगान क्या है -

(a) मजदूर को मिल ने वाला अतिरेक (b) भूमि को मिल ने वाला अतिरेक

(c) पूजीपतियों को मिल ने वाला अतिरेक

(d) वह अतिरेक जो अल्पकाल में मिल ता है और दीर्घकाल में समाप्त हो जाता है।

7. पूर्ण विशिष्ट साधनों में क्या सत्य है-

(a) वास्तविक आय = 0 (a) वास्तविक आय > हस्तान्तरण आय

(a) वास्तविक आय < हस्तान्तरण आय (a) वास्तविक आय = हस्तान्तरण आय

उत्तर-1. (c), 2. (d), 3. (b), 4. (b), 5. (c), 6. (d), 7. (d)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लगान किसे कहते हैं ?

2. आर्थिक लगान की व्याख्या कीजिए।

3. रिकार्डों के लगान सिद्धान्त का कथन लिखिए।

4. भेदात्मक लगान किसे कहते हैं ?

5. पूर्णतया विशिष्ट साधन किसे कहा जाता है ?

6. स्थानान्तरण आय किसे कहते हैं ?

7. पूर्णतया लोचदार पूर्तिं की दशा में कोई लगान उत्पन्न क्यों नहीं होता ?

25.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्रा, जे0पी0 (2009): उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त -मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन,वाराणसी।
2. सिन्हा, वी0सी0 (1990): उन्नत आर्थिक सिद्धान्त, स्टूडेन्ट फ्रेन्डस इलाहाबाद।
3. आहूजा, एम0एल0 (2006): उच्च आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक विश्लेषण, चन्द्र प्रकाशन, दिल्ली।
4. लाल, एस0 एन0 (2005): उच्च आर्थिक सिद्धान्त, शिवा पब्लिशिंग हाऊस -इलाहाबाद।

5. लाल, एस0 एन0 (2008): माइक्रों इकोनामिक्स:शिवा पब्लिशिंगहाऊस - इलाहाबाद।
8. जैन, पी0 सी0 (1995): उच्च आर्थिक विश्लेषण, चुग प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. त्रिपाठी, बद्री विशाल (2000): एडवांस इकोनोमिक थ्योरी,किताब महल्, इलाहाबाद।

25.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Mehta,J.K.(1980):EconomicTheory,ChughPublications,Allahabad.
- Jhingan, M.L. (2007) : Advanced Economic Theory, Vrinda Prakashan, New Delhi.
- Seth, M.L. (2007): Micro Economics, L.N. Agrwal Publications, Agra.
- P. Samuelson (1967) : Micro Economic Theory & Policy, Oxford University Press, U.K.
- Dhingra, I.S. (2005) : Advaned Economics Theory New Century Publication. DelhiTripathi, B.B. (2000) : Micro Economics, Kitab Mahal Allahabad

25.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''अनाज का मूल्य इसलिए ऊँचा नहीं होता है कि लगान देना पड़ता है, वरन् लगान इसलिए दिया जाता है कि अनाज का मूल्य ऊँचा होता है।'' व्ख्याख्या कीजिए।

2. रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए।

3. लगान के आधुनिक सिद्धान्त अथवा आर्थिक लगान की पूर्ण रूप से विवेचना कीजिए। क्या यह सिद्धान्त रिकार्डो के लगान -सिद्धान्त के ऊपर सुधार है।

इकाई 26 ब्याज दर के निर्धारण का सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

26.0 प्रस्तावना
26.1 उद्देश्य
26.2 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त
26.3 बचत एवं विनियोग में समानता तथा ब्याज दर का निर्धारण
26.4 ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त
26.5 ब्याज दर की दर का निर्धारण
26.6 कीन्स के सिद्धान्त की प्रतिष्ठित सिद्धान्त से श्रेष्ठता
26.7 ब्याज का उधार देय कोष सिद्धान्त
26.8 सांराश
26.9 शब्दावली
26.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
26.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
26.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
26.13 निबन्धात्मक प्रश्न

26.0 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र में मौद्रिक पूँजी के उपयोग के लिए दिया जाने वाला भुगतान ही ब्याज होता है। ब्याज राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो पूँजी की सेवाओं के बदले पूँजीपति को दिया जाता है। कोई भी ऋणदाता जब मुद्रा उधार देता है तो वह जोखिम उठाने का पुरस्कार होता है। ब्याज के निर्धारण के सिद्धान्त के अन्तर्गत हम ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त, ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त, ब्याज का उधार देय कोष सिद्धान्त का अध्ययन करते हैं।

26.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- ब्याज का तात्पर्य एवं उपयोगिता समझना।
- ऋण योग्य कोष (पूँजी) का मूल्य निर्धारित करना।
- बचत की पूर्ति तथा ब्याज दर में सम्बन्धों की व्याख्या करना।
- बचत तथा निवेश के फलनात्मक सम्बन्धों को समझना।

ब्याज एक व्यापक शब्द है दूसरे अन्तर्गत पूँजी के उपयोग के लिए दिया जाने वाला भुगता, जोखिम का प्रतिफल, व्यवस्था का पुरस्कार एवं आसुविधाओं का पुरस्कार सभी शामिल होता है। चूँकि कोई भी ऋणदाता, ऋणी से उधार दी गई राशि के उद्देश्य हेतु जो कुल आय प्राप्त करता है वह शुद्ध ब्याज नहीं बल्कि कुल ब्याज होता है। लोग ब्याज कमाने हेतु नकदी मुद्रा को तीन उद्देश्यों की पूर्तिं के लिए करता है, लेन देन का उद्देश्य, आकस्मिक व्ययों के पूर्तिं के उद्देश्य तथा सट्टा उद्देश्य हेतु मुद्रा अपने पास रखते हैं ताकि भविष्य में अतिरिक्त पूँज ब्याज के रुप में प्राप्त हो।

ब्याज की दर के निर्धारण के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों ने समय-समय पर अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, किन्तु अध्ययन की दृष्टि से निम्नलिखित चार सिद्धान्तों का विशेष महत्व है-

(1) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त
(2) ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त
(3) ब्याज का उधार देय कोष सिद्धान्त
(4) ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त

26.2 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त

यह ब्याज का सबसे पुराना सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन पुराने परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने किया था, इसलिए इसे ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त कहा जाता है। बाद में प्रो0 मार्शल , पीगू, कैसल, वालरस एवं नाइट जैसे अर्थशास्त्रियों ने इसमे सुधार किये।

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण पूँजी की माँग एवं पूँजी के द्वारा होता है। ब्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है, जिस पर पूँजी की माँग एवं पूँजी की पूर्ति एक-दूसरे के बराबर होती है। पूँजी की माँग विनियोजनकर्त्ता अथवा उत्पादकों के द्वारा की जाती है, जबकि पूँजी की पूर्ति बचतकर्त्ताओं के द्वार की जाती है। अतः ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है, जहाँ विनियोजकों की पूँजी की माँग तथा बचतकर्त्ताओं के द्वारा की गयी बचत की पूर्ति एक-दूसरे के बराबर सन्तुलन की स्थिति अथवा साम्य की स्थिति में होती है। इसलिए इसे ब्याज की दर का बचत एवं विनियोग सिद्धान्त भी कहते हैं। ब्याज की दर वह सन्तुलन स्थापित करने वाला घटक है, जो बचत एवं विनियोग की मात्रा को एक-दूसरे के बराबर करता है। इसलिए इसे 'ब्याज का वास्तविक' 'गैर-मौद्रिक सिद्धान्त' भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर के निर्धारण में 'मुद्रा' कोई प्रत्यक्ष भूमिक नहीं निभाती है वास्तव में, ब्याज की दर के निर्धारण में उत्पादकता एवं मितव्ययिता जैसे वास्तविक तत्वों को अत्यधिक महत्व होता है।

(1) पूँजी की माँग अथवा विनियोगअनुसूची-पूँजी की माँग विनियोग कर्त्ताओं अथवा उत्पादकों के द्वारा की जाती है। इन लोगों के द्वारा पूँजी की माँग इसलिए की जाती है, क्योंकि पूँजी में उत्पादकता होती है, किन्तु जैसे-जैसे पूँजी का अधिक मात्रा में उत्पादन में प्रयोग किया जाता है वैसे-वैसे इसकी सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है। इसलिए पूँजी की सीमान्त उत्पादकता वक्र क्रमागत उत्पत्ति ह्रासमान नियम के अनुसार बायें नीचे की ओर गिरता हुआ वक्र होता है। एक फर्म पूँजी की सीमान्त उत्पादकता की तुलना ब्याज की दर से करके यह निर्णय लेती है कि उसे व्यवसाय में कितनी पूँजी लगानी है। सामान्यतया पूँजी की सीमान्त उत्पादकता, ब्याज की दर से अधिक होने पर ही पूँजी का प्रयोग किया जाता है। फर्म व्यवसाय में उस सीमा तक ही पूँजी लगाती है, जहाँ पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं उसकी ब्याज की दर एक-दूसरे के बराबर होती है। सामान्यतया ब्याज की दर एवं पूँजी की माँग में उल्टा सम्बन्ध होता है, अर्थात् ब्याज की दर नीची होने पर पूँजी की माँग अधिक जाती है इसके विपरीत, ब्याज की दर, ऊँची होने पर पूँजी की माँग की जाती है। इस प्रकार फर्म की पूँजी का माँग वक्र दायीं ओर नीचे की ओर गिरता हुआ वक्र होता है।

(2) पूँजी की पूर्ति अथवा बचत अनुसूची-पूँजी की पूर्ति बचतकर्त्ताओ के द्वारा की जाती है। सामान्यतया पूँजी की पूर्ति अनेक तत्त्वों द्वारा निर्धारित होती है जैसे-आय का स्तर, रहन-सहन का स्तर, परिवार के प्रति प्रेम, दूरदर्शिता, राजनीतिक व्यवस्था आदि, किन्तु इन सभी तत्वों के अतिरिक्त

बचत को प्रभावित करने वाला सबसे प्रमुख तत्व ब्याज की दर है। ब्याज की दर जितन अधिक होती है, बचत भी उतनी ही अधिक होती है। इसके विपरीत, ब्याज की दर जितनी कम होती है, बचत भी कम होती है। इस प्रकार ब्याज की दर एवं बचत में सीधा धनात्मक सम्बन्ध होता है। अतः बचत वक्र नीचे से ऊपर की ओर दायें बढ़ता हुआ वक्र होता है।

सामान्यतया बचत करते समय लोग अपने वर्तमान की आवश्यकता की सन्तुष्टि को भविष्य के लिए स्थगित कर देते हैं। अतः बचतकर्त्ता त्याग करता है। बचतकर्त्ता को इस त्याग के लिए ब्याज के रूप में पुरस्कार प्राप्त होना चाहिए। इसलिए बचतकर्त्ता अपने उपभोग के त्याग और ब्याज के रूप में प्राप्त होने वाले पुरस्कार के बीच तुलना करता है। यदि ब्याज के रूप में प्राप्त होने वाला पुरस्कार, बचतकर्त्ता के त्याग से अधिक होता है तभी बचत की पूर्ति बढ़ती है। इसलिए ऊँची ब्याज दर पर बचत की पूर्ति भी अधिक होती है तथा कत ब्याज की दर पर बचत की पूर्ति भी कम होती है।

26.3 बचत एवं विनियोग में समानता तथा ब्याज की दर का निर्धारण

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज की दर बचत एवं विनियोग की समानता के आधार पर निर्धारित होती है। ब्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ पूँजी की कुल माँग एवं पूँजी की कुल पूर्ति दोनों एक-दूसरे के बराबर होती हैं। इस साम्य बिन्दु पर बचत एवं विनियोग एक-दूसरे के बराबर होते हैं।

रेखाचित्र 26.1 में प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अन्तर्गत ब्याज के निर्धारण को दिखाया गया है-

(1) इस रेखाचित्र में II विनियोग वक्र है, जो पूँजी की माँग को बतलाता है।

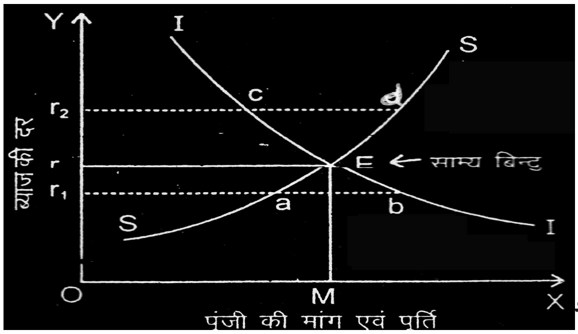

चित्र 26.1

विनियोग वक्र बायें से दायें नीचे की ओर गिरता हुआ चक्र है, जो यह बतलाता है कि ब्याज की दर कम होने पर पूँजी की माँग अधिक होती है तथा ब्याज की दर ऊँची होने पर पूँजी की माँग कम होती है। अतः यह ब्याज की दर एवं पूँजी की माँग में उल्टे सम्बन्ध को बतलाता है।

(2) SS बचत वक्र है, जो पूँजी की पूर्ति को बतलाता है। यह वक्र नीचे से ऊपर की ओर चढ़ता हुआ वक्र है जो यह बतलाता है कि ऊँची ब्याज की दर पर पूँजी की पूर्ति अर्थात् बचत अधिक है ताकि ब्याज की दर कम होने पर पूँजी की पूर्ति अर्थात् बचत भी कम है। इस प्रकार ब्याज की दर एवं बचत में सीधे सम्बन्ध को यह स्पष्ट करता है।

(3) बचत वक्र SS एवं विनियोग वक्र II एक-दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। अतः E साम्य बिन्दु है। इस बिन्दु पर बचत एवं विनियोग एक-दूसरे के बराबर हैं। दूसरे शब्दों में पूँजी की माँग एवं इसकी पूर्ति दानों एक-दूसरे के बराबर OM है। अतः साम्य बिन्दु पर ब्याज की दर Or निर्धारित हागी है।

यदि ब्याज की दर Or_1 कम हो जाती है जैसाकि रेखाचित्र से स्पष्ट है विनियोग के लिए पूँजी की माँग बढ़कर Or_1 हो जाती है, जबकि पूँजी की पूर्ति घटकर r_1a हो जाती है।

ऐसी स्थिति में ब्याज की दर बढ़कर Or हो जायेगी, जहाँ पर पूँजी की माँ एवं पूर्ति एक-दूसरे के बराबर हो जाती हैं। इसी प्रकार से जब ब्याज की दर बढ़कर Or_2 हो जाती है तो विनियोग के लिए पूँजी की माँग घटकर r_2c हो जाती, जबकि बचत के रूप में पूँजी की पूर्ति बढ़कर r_2d हो जाती है। इस प्रकार पूँजी की माँग एवं पूर्ति में असंतुलन हो जाता है। ऐसी स्थिति में ब्याज की दर घटेगी तथा Or ब्याज पर पूँजी की माँग एवं पूर्ति दोनों एक-दूसरे के बराबर हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि Or ब्याज की दर साम्य ब्याज की दर है, जिस पर पूँजी की माँग एवं इसकी पूर्ति बराबर हो जाती है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज की दर Or ही निर्धारित होगी।

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचनाएँ

प्रो0 कीन्स ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के ब्याज-सिद्धान्त की निम्न आधारों पर कटु आलोचना की है-

(1) बचत एवं विनियोग के बीच समानता आय-स्तर में परिवर्तन के आधार पर, न कि ब्याज की दर के कारण-कीन्स के अनुसार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की सबसे महत्वपूर्ण त्रुटि यह है कि इसमें आय के स्तर को दिया हुआ मान लिया गया है और ब्याज की दर को बचत एवं विनियोग के बीच समानता स्थापित करने वाला महत्वपूर्ण तत्व मान लिया है, जोकि उचित नहीं है। आय स्थिर न होकर परिवर्तनशील होता है। चूँकि बचत आय के ऊपर निर्भर होती है न ब्याज की दर पर अतः आय के स्तर में परिवर्तन के द्वारा ही बचत एवं विनियोग में समानता सम्भव है, न कि ब्याज दर में परिवर्तन के द्वारा।

(2) बचत एवं विनियोग सूची एक-दूसरे से स्वतन्त्र नहीं होते-प्रतिष्ठित सिद्धान्त के ब्याज में ब्याज के दर के निर्धारक बचत एवं विनियोग को एक-दूसरे से पूर्णतः स्वतन्त्र माना गया है, किन्तु कीन्स के अनुसार ये दोनों एक-दूसरे से स्वतन्त्र नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए यदि विनियोग में वृद्धि

की जाती है तो आय बढ़ जाती है और आय में वृद्धि होन से बचत भी बढ़ जाती है। इसी प्रकार से बचत की पूर्ति में वृद्धि होने से विनियोजन की माँग में परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार, बचत एवं विनियोग एक-दूसरे से स्वतन्त्र नहीं होते हैं।

(3) आय पर विनियोग के प्रभाव की उपेक्षा-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने आया पर विनियोग के पड़ने वाले प्रभाव की उपेक्षा की है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का मत था कि ब्याज की दर बढ़ा देने से विनियोग घट जायेगा, इससे आय एवं रोजगार दोनों में कमी आयेगी। आय में कमी आने से बचत भी घटेगी, जबकि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री मानते थे कि ऊँची ब्याज की दर पर बचत की मात्रा बढ़ जाती है। इसके विपरीत, उनका विचार था थ्क यदि ब्याज की दर घट जाती है तो विनियोग , उत्पादन एवं रोजगार सभी में वृद्धि होगी। उत्पादन एवं आय में वृद्धि से बचत भी बढ़ेगी जबकि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का विचार था कि ब्याज की दर घटने पर बचत भी घट जाती हैं। कीन्स प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचार से सहमत नहीं थे। उनका विचार था कि विनियोग ब्याज की दर से अधिक प्रभावित न होकर पूँजी की सीमान्त कुशलता (MEC) से प्रभावित होता है। यदि भविष्य में लाभ प्राप्त होने की प्रत्याशा अधिक है तो ऊँची ब्याज की दर पर भी विनियोजन अधिक होगा और अधिक विनियोजन किए जाने से आय कई गुणा अधिक बढ़ जायेगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने आय पर विनियोग के प्रभाव की उपेक्षा की है।

(4) बचत के अन्य स्रोतों की उपेक्षा-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने बचत के अन्य स्रोतों की उपेक्षा की है। उनके अनुसार बचत की प्राप्ति वर्तमान आय से ही होती है, किन्तु आलोचकों का विचार है कि ब्याज की दर ऊँची होने पर लोग अपने पहले से संचित धन का प्रयोग बचत की पूर्ति के रूप में कर सकते हैं। इससे अर्थव्यवस्था में ब्याज की दर ऊँची होने पर पूँची की पूर्ति भी बढ़ जाती है। इसी प्रकार से बैंकों की साख-पत्र, पूँजी की पूर्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। अतः प्रतिष्ठित सिद्धान्त अपूर्ण है, क्योंकि पूँजी की पूर्ति में पहले संचित धन के उपयोग तथा बैंकों के साख-पत्रों को इसमें शामिल नहीं किया जाता गया है।

(5) अनिर्धारणीय सिद्धान्त-बचत आय के स्तर पर निर्भर होती है। अतः ब्याज की दर को ज्ञात करना सम्भव नहीं है, जब तब आय के स्तर को ज्ञात करके बचत के स्तर को ज्ञात न कर लिया जाय। साथ ही आय स्तर को भी तब तक नहीं जाना जा सकता, जब तब ब्याज की दर को ज्ञान न किया क्योंकि ब्याज की दर कम होने पर अर्थव्यवस्था में विनियोजन अधिक होगा तथा विनियोजन अधिक होने पर ही आय के स्तर में कई गुणा वृद्धि होगी। साथ ही प्रत्येक आयस्तर पर अलग - अलग बचत स्तर होगा। यह क्रम अर्थव्यवस्था में चलता रहेगा, जिससे ब्याज की दर का निर्धारण नहीं हो सकेगा।

(6) पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है, जबकि पूर्ण रोजगार कहीं भी पाया नहीं जाता है। ऐसी स्थिति में ब्याज की दर बचत को प्रेरित करने वाला एक मात्र तत्व नहीं होता है।

(7) मौद्रिक तत्वों की उपेक्षा-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का ब्याज सिद्धान्त वास्तविक तत्वों को महत्त्व देता है जैसे पूँजी की उत्पादकता एवं बचत के लिए लोगों के द्वारा किया गया त्याग। इसमें मौद्रिक तत्वों की उपेक्षा की गयी है। मुद्रा की माँग क्यों की जाती है? मुद्रा की पूर्ति कैसे की जाती है? इन तत्वों की कोई चर्चा नहीं है। जबकि कीन्स ब्याज को एक विशुद्ध मौद्रिक घटना मानते हैं। अतः प्रतिष्ठित सिद्धान्त में मौद्रिक तत्वों की उपेक्षा हुई है।

(8) ब्याज की प्राकृतिक दर तथा बाजार दर में स्वतः समानता नहीं हो पाती-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का मत था कि ब्याज की प्राकृतिक दर एवं ब्याज की बाजार दर में स्वतः समानता होती है। यदि इसमें अन्तर आ जाता है तो यह अल्पकालीन घटना होती है, जोकि दीर्घकाल में स्वतः समाप्त हो जाती है। कीन्स इन दोनों के अन्तर को अस्थायी और आकस्मिक नहीं मानते हैं। उनके अनुसार वास्तव में बैंक की साख मुद्रा ही इन दोनों में समानता स्थापित करती है। बैंकों की साख में वृद्धि किए जाने से ऋण देने योग्य पूँजी की पूर्ति बढ़ जाती है, जो ब्याज की बाजार दर को घटाकर प्राकृतिक ब्याज के दर के बराबर ले आती है। इस प्रकार ब्याज की बाजार दर एवं प्राकृतिक दर में स्वतः समानता स्थापित नहीं हो पाती है।

(9) ब्याज की परिभाषा पर भिन्नता-कीन्स के अनुसार ब्याज तरलता पसन्दगी के परित्याग का पुरस्कार है। यह मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति के साम्य के द्वारा निर्धारित होती है। यह पूँजी की माँग एवं पूर्ति के द्वारा निर्धारित नहीं होती है।

इस प्रकार, कीन्स ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के ब्याज सिद्धान्त को अपूर्ण, अस्पष्ट एवं अनिर्धारणीय माना है।

26.4 ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त

ब्याज के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त का प्रतिपादन लॉर्ड जॉन कीन्स ने किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक **''रोजगार, ब्याज और द्रव्य का सामान्य सिद्धान्त''** में इस सिद्धान्त का उल्लेख किया है। लार्ड कीन्स के अनुसार, ब्याज एक विशुद्ध मौद्रिक घटना है। इसका कारण यह है कि प्रथम, ब्याज की दर की गणना मुद्रा के रूप में की जाती है और द्वितीय, ब्याज की दर का निर्धारण मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति के द्वारा होता है।

कीन्स के अनुसार, ब्याज बचत का पुरस्कार न होकर तरलता के परित्याग का पुरस्कार है। उन्हीं के शब्दों में, **''ब्याज एक निश्चित अवधि के लिए तरलता के परित्याग का पुरस्कार है।''** कीन्स का तरलता पसन्दगी से अभिप्राय मुद्रा की नगदी के रूप में रखने से है। लोग अपनी-अपनी आय को नकदी के रूप में इसलिए रखते हैं कि वे जब चाहे तब इससे अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को खरीद सकें। लोगों की इस नकदी के रूप में अपनी आय को रखने की प्रवृति को त्यागने के लिए उन्हें कुछ न कुछ पुरस्कार अवश्य ही देना होगा। इस तरलता पसन्दगी के परित्याग के लिए दिये जाने वाले पुरस्कार को ही कीन्स ने ब्याज कहा है। यदि लोगों में अपनी आय को नकदी के रूप में रखने की प्रवृत्ति अधिक है तो ब्याज की दर ऊँची होगी। जिससे लोग ऊँची ब्याज की लालच में अपनी नकदी का परित्याग करने के लिए तैयार हो जायेंगे। इसके विपरीत, यदि लागों में अपनी आय को तरल या नकदी के रूप में रखने की प्रवृत्ति कम है तो ब्याज की दर भी कम हो जायेगी।

कीन्स के अनुसार जिस प्रकार वस्तु का मूल्य उसकी माँग एवं पूर्ति की सापेक्षिक शाक्तियों के द्वारा निर्धारित होता है, ठीक उसी प्रकार ब्याज की दर का निर्धारण भी मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की सापेक्षिक शाक्तियों के द्वारा होता है। मुद्रा की माँग लोग अपनी आय के तरल (नकदी) के रूप में रखने के लिए करते हैं जबकि मुद्रा की पूर्ति का अर्थ एक समय विशेष में अर्थव्यवस्था में उपलब्ध मुद्रा की मात्रा से होता है। जहाँ पर मुद्रा की माँग एवं पूर्ति एक दूसरे के बराबर होती है, उसी साम्य पर ब्याज की दर का निर्धारण होता है।

मुद्रा की माँग

कीन्स के अनुसार, मुद्रा की माँग का अर्थ, लोगों द्वारा अपनी आय को तरल या नकदी के रूप में रखने से है। लोग मुद्रा की माँग सामान्यतया तीन उद्देश्यों के लिए करते हैं:-

(1) लेनदेन का उद्देश्य

(2) सावधानी उद्देश्य

(3) सट्टा उद्देश्य

(1) लेनदेन का उद्देश्य-लोग अपनी आय का एक भाग , दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदने के लिए, नकदी के रूप में रखना चाहते हैं। दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदने के लिए रखी जाने वाली नगदी की माँग को ही लेन-देन के उद्देश्य से की गयी मुद्रा की माँग कहा जाता है। व्यक्ति एवं व्यवसायी दोनों अपनी आय का एक भाग रोजमर्रा की आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदने के लिए नकदी के रूप में रखते हैं। लेन-देन के उद्देश्य से मुद्रा ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती है। यह आय पर निर्भर होती है।

(2) सावधानी उद्देश्य-लोग अपनी आय का एक भाग आकस्मिक रूप से आने वाले संकटों जैसे- बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी, मृत्यु, मुकदमा आदि से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए नगदी के रूप में रखते हैं। सर्तकता एवं दूरदर्शिता उद्देश्य के लिए भी नकदी की माँग मुख्यतया लोगों की आय पर निर्भर होती है। यह भी ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती है।

(3) सट्टा उद्देश्य-कीन्स के अनुसार लोग अपनी आय का एक भाग नगदी रूप में इसलिए भी रखते हैं कि पूँजी बाजार में बॉण्डों एवं प्रतिभूतियों के मूल्यों में जो उतार-चढ़ाव होता है, उससे लाभ कमा सकें। नXदी के रूप में मुद्रा की इस माँग को सट्टा उद्देश्य के लिए तरलता की माँग कहते हैं। बॉण्डों एवं प्रतिभूतियों के खरीदने से लोगों को ब्याज मिल ता है। लोग जब यह आशा करते हैं कि भविष्य में बॉण्ड एवं प्रतिभूतियों के खरीदने से लोगों को ब्याज मिल ता हैं। लोग जब यह आशा करते हैं कि भविष्य में बॉण्ड एवं प्रतिभूतियों के मूल्य बढ़ेगें तो वे बॉण्डों एवं प्रतिभूतियों को वर्तमान में ही अपनी नगद आय से खरीद लेते हैं। इसके विपरीत, जब वे अनुभव करते हैं कि भविष्य में बॉण्डों एवं प्रतिभूतियों की कीमतें गिर जायेंगी तो वे बॉण्डों एवं प्रतिभूतियों को वर्तमान में ही बेच देते हैं और अपनी आया को अधिक से अधिक नकदी के रूप में रखना चाहते हैं। अतः सट्टा उद्देश्य के लिए नकदी की माँग ब्याज की दरों में होने वाले परिवर्तनों पर निर्भर होती है।

कीन्स के उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि:-

(1) लेन-देन के उद्देश्य तथा सावधानी उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग, आय पर निर्भर होती है अर्थात्

$$L_1 = f(Y)$$

यहाँ, L_1 = लेन-देन सावधानी उद्देश्य के लिए तरलता पसन्दगी की माँग।

Y = आय

f = फलनात्मक सम्बन्ध।

(2) सट्टा उद्देश्य के लिए तरलता पसन्दगी की माँग ब्याज की दर पर निर्भर होती है। अर्थात्

$$L_2 = f(r)$$

यहाँ, L_2 = सट्टा उद्देश्य के लिए तरलता पसन्दगी की माँग ।

r = ब्याज की दर

f = फलनात्मक सम्बन्ध।

इस प्रकार, अर्थव्यवस्था में तरलता पसन्दगी की कुल माँग लोगो की आय के स्तर एवं ब्याज की दर पर निर्भर होती है। अर्थात्

(1) $L = L_1 + L_2$

(2) $L = L_1 = f(y) + L_2 = f(r)$

मुद्रा की कुल माँग $= M_{1+P} + M_2$

M_{1+P} लेनदेन एवं सावधानी उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग।

$Ms =$ सट्टा के लिए मुद्रा की माँग।

कीन्स ने ब्याज की दर के निर्धारण में सट्टा उद्देश्य के लिए तरलता पसन्दगी की माँग को अत्यधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार, तरलता पसन्दगी एवं ब्याज की दर में दो प्रकार के सम्बन्ध होते हैं-

(1) समाज में लोगों की तरलता पसन्दगी ऊँची होने पर ब्याज की ऊँची दर चुकानी पड़ती है जिससे लोग अपनी तरलता का परित्याग कर सकें। इसके विपरीत, तरलता पसन्दगी कम होने पर ब्याज की दर कम होती है।

(2) ब्याज की दर ऊँची होने पर तरलता पसन्दगी के लिए मुद्रा की माँग कम होती है तथा ब्याज की दर कम होने पर तरलता पसन्दगी के लिए मुद्रा की माँग अधिक होती है। इस प्रकार, ब्याज की दर एवं तरलता पसन्दगी की माँग में विपरीत सम्बन्ध होता है।

यह तथ्य रेखाचित्र 26.2 से स्पष्ट है-

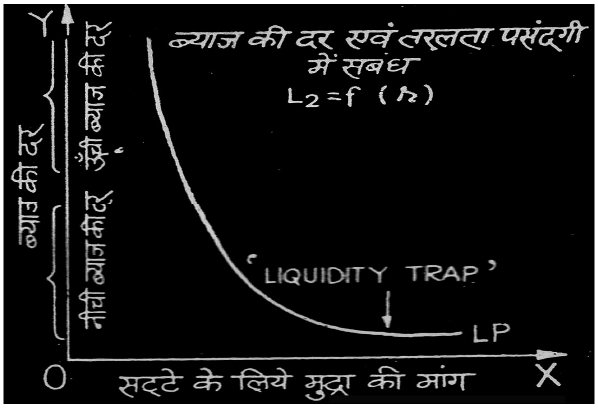

चित्र 26.2

(i) रेखाचित्र में OX अक्ष में सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग को एवं OY -अक्ष में ब्याज की दर को दिखाया गया है।

(ii) LF वक्र सट्टा उद्देश्य के लिए तरलता पसन्दगी की माँग वक्र है। वक्र का ढाल बायें से दायें नीचे की ओर है। यह वक्र बताता है कि ऊँची ब्याज की दर होने पर तरलता पसन्दगी अथवा नकदी की माँग कम है तथा कम ब्याज की दर होने पर नकदी की माँग अधिक है।

(iii) चित्र से स्पष्ट है कि जब ब्याज की दर अत्यन्त कम होती है तब तरलता पसन्दगी वक्र, आधार रेखा OX - अक्ष के समानान्तर हो जाता है। इसे **''तरलता पसन्दगी का जालसूत्र''** (Liquidity Trap) कहा जाता है। यह स्पष्ट करता है क जब ब्याज की दर

एक निश्चित दर से कम हो जाती है तो लोग अपनी आय को नकदी के रूप में रखना चाहते हैं। वे बॉण्डों एवं प्रतिभूतियों में अपनी नगदी को लगाना लाभदायक नहीं समझते हैं। अतः वे बॉण्डों एवं प्रतिभूतियों में इतनी कम ब्याज दर पर अपनी राशि को लगाने का जोखिम नहीं उठाना चाहते हैं।

मुद्रा की पूर्ति

मुद्रा की कुल पूर्ति के अन्तर्गत मुद्रा के सिक्के तथा साख मुद्रा सभी को सम्मिलित किया जाता है। मुद्रा की पूर्ति देश के मुद्रा अधिकारी अथवा देश के केन्द्रीय बैंक के द्वारा की जाती है।

कीन्स के अनुसार, एक निश्चित समय अवधि में मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है। अतः मुद्रा की पूर्ति रेखा एक खड़ी होती है। मुद्रा की पूर्ति एवं वस्तु की पूर्ति में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि जहाँ मुद्रा की पूर्ति एक स्टाक है, वहीं वस्तु की पूर्ति एक प्रवाह होती है। मुद्रा की पूर्ति, ब्याज की दर को प्रभावित करती है, किन्तु ब्याज की दर मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित नहीं करती है। इसका कारण यह है कि मुद्रा की पूर्ति सरकार के नियन्त्रण में होती है। यह एक निश्चित अवधि में स्थिर रहती है।

26.5 ब्याज दर की दर का निर्धारण

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति रेखाएँ एक-दूसरे को काटती हैं। रेखाचित्र 26.3 में ब्याज की दर के निर्धारण को दिखाया गया है।

(1) रेखाचित्र में LP_1 तरलता पसन्दगी वक्र है। यह वक्र मुद्रा की माँग को बताता है।

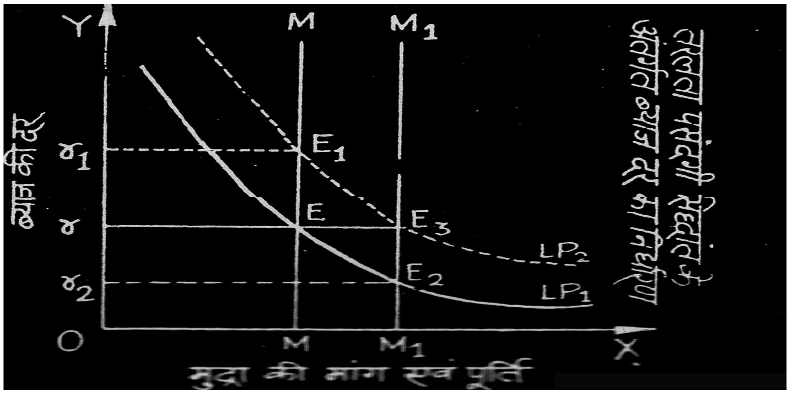

चित्र 26.3

चूँकि ब्याज की दर एवं तरलता पसन्दगी में विपरीत सम्बन्ध होता है, अतः LP_1 वक्र का ढाल ऊपर से नीचे की ओर है।

(2) MM मुद्रा की पर्तिं रेखा है। चूँकि मुद्रा की पूर्ति एक निश्चित अवधि में स्थिर रहती है, अतः यह एक खड़ी रेखा है। ब्याज की दर में होने वाले परिवर्तनों का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(3) मुद्रा का माँग वक्र LP_1 एवं मुद्रा की पूर्ति रेखा MM एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। अतः E साम्य बिन्दु है। इस साम्य बिन्दु पर मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति दोनो OM के बराबर हैं। इस साम्य बिन्दु पर ब्याज की दर Or निर्धारित होगी।

(4) जब लोगों की तरलता पसन्दगी बढ़ जाती है, किन्तु मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है तो ब्याज की दर भी बढ़ जाती है। रेखाचित्र में LP_2 बढ़ी हुई तरलता पसन्दगी वक्र है। यह यह LP_2 वक्र, स्थिर मुद्रा की पूर्ति MM रेखा को E_1 बिन्दु पर काटता है। अतः E_1 नई साम्य बिन्दु पर ब्याज की दर Or_1 निर्धारित होगी। यह नई ब्याज की दर Or_1 प्रारम्भिक ब्याज की दर Or से अधिक है। इसका मुख्य कारण तरलता पसन्दगी में वृद्धि तथा मुद्रा की पूर्ति का स्थिर रहना है।

(5) इसके विपरीत, यदि मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होती है और तरलता पसन्दगी LP_1 स्थिर रहती है तो ब्याज की दर घट जायेगी। रेखाचित्र में LP_1 तरलता पसन्दगी वक्र को मुद्रा की नई पूर्ति M_1M_1 रेखा E_2 बिन्दु पर काटती है। अतः E_2 नया साम्य बिन्दु है और OR_2 नई ब्याज की दर है। मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाने के कारण ब्याज की दर घट गयी है।

(6) किन्तु तरलता पसन्दगी के साथ मुद्रा की पूर्ति में भी वृद्धि होती है तो यह सम्भव है कि ब्याज की दर में कोई परिवर्तन न हो। जैसा कि रेखाचित्र से स्पष्ट है कि बढ़ी हुई तरलता पसन्दगी वक्र LP_2 को बढ़ी हुई मुद्रा की पूर्ति रेखा MM_1 बिन्दु E_3 पर काट रही है। अतः E_3 साम्य बिन्दु है। इस साम्य बिन्दु पर ब्याज की दर Or ही है।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि ब्याज की दर के निर्धारण में मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति दोनों का प्रभाव पड़ता है। चूँकि अल्पकाल में मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है, अतः ब्याज की दर पर तरलता पसन्दगी का ही प्रभाव पड़ता है। तरलता पसन्दगी अधिक होने पर ब्याज की दर ऊँची तथा तरलता पसन्दगी कम कोने पर ब्याज की दर नीची रहती है।

कीन्स के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त की आलोचना कीन्स का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त उनके मुद्रा, ब्याज एवं रोजगार से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्त में एक क्रांन्तिकारी विचार है। फिर भी यह सिद्धान्त पूर्णतया दोषरहित नहीं है। प्रो0 हेन्सन ने कीन्स के सिद्धान्त की कटु आलोचना की है। प्रमुख आलोचनाएँ निम्नाकिंत हैं:-

(1) अनिर्धारित-कीन्स का विचार है कि ब्याज की दर तरलता पसन्दगी एवं मुद्रा की पूर्ति के साम्य के द्वारा निर्धारित होती है, किन्तु तरलता पसन्दगी के लिए मुद्रा की माँग स्वयं आय के स्तर पर निर्भर होती है तथा ब्याज की दर विनियोग को प्रभावित कर आय स्तर को निर्धारित करती है। अतः कीन्स का सिद्धान्त भी प्रतिष्ठित सिद्धान्त के समान अनिर्धारणीय है।

(2) वास्तविक तत्त्वों की उपेक्षा-कीन्स ने ब्याज को एक विशुद्ध मौद्रिक घटना कहा है और यह बताया है इसका निर्धारण मुद्रा की माँग एवं पूर्ति के द्वारा होता है। इस प्रकार, कीन्स ने ब्याज की दर के निर्धारण में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता, 'समय अधिमान' एवं बचत के लिए मित्व्ययता जैसे वास्तविक तत्व जिनका ब्याज की दर पर प्रभाव पड़ता है, की उपेक्षा की है।

(3) बचत तत्व की उपेक्षा-कीन्स ने ब्याज को एक निश्चित अवधि के लिए तरलता पसन्दगी के परित्याग का पुरस्कार कहा है, किन्तु प्रो0 जैकब वीनर लिखते हैं कि, ''बचत के बिना, त्याग के लिए तरलता प्राप्त नहीं हो सकती। ब्याज की दर तरलता के बिना बचत के लिए प्रतिफल होती है।''

(4) वास्तविक तथ्यों के विपरीत-कीन्स का विचार था कि तरलता पसन्दगी ऊँची होने पर ब्याज की दर ऊँची तथा तरलता पसन्दगी

कम होने पर ब्याज की दर नीची होती है, किन्तु मन्दीकाल में वस्तुओं की कीमतों में गिरावट होने के कारण लोगों की तरलता पसन्दगी की प्रवृत्ति तो ऊँची होती है, जबकि मन्दीकाल में ब्याज की दर नीची रहती है। इसके विपरीत, समृद्धि काल में कीमतों में वृद्धि होने के कारण तरलता पसन्दगी कम होती है, किन्तु तेजी काल में ब्याज की दर ऊँची रहती हैं। अतः कीन्स का सिद्धान्त वास्तविक घटनाओं के विश्लेषण करने में तर्कसंगत नहीं है।

(5) ब्याज, पूँजी की उत्पादकता का पुरस्कार-आलोचकों का विचार है कि ब्याज तरलता पसन्दगी के परित्याग का पुरस्कार न होकर पूँजी की उत्पादकता का पुरस्कार होता है।

26.6 कीन्स के सिद्धान्त की प्रतिष्ठित सिद्धान्त से श्रेष्ठता

कीन्स का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त निम्नलिखित कारणों से प्रतिष्ठित सिद्धान्त की तुलना में श्रेष्ठ है:-

(1) कीन्स का सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त है। यह न्यून रोजगार सन्तुलन की स्थिति में भी लागू होता है, जबकि प्रतिष्ठित सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।

(3) कीन्स का ''तरलता जालसूत्र'' मौद्रिक एवं बैकिंग नीतियों की सीमाओं को स्पष्ट करता है। मन्दीकाल में इसके प्रभावपूर्ण न होने के कारणों को स्पष्ट करता है।

(4) बचत एवं विनियोग में सन्तुलन ब्याज की दर के द्वारा नहीं बल्कि आय के द्वारा होता है।

26.7 ब्याज का उधार देय कोष सिद्धान्त

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की त्रुटियों को दूर करने के लिए **स्वीडन के अर्थशास्त्रियों नट विकसेल, बर्टिल ओहलिन, ऐरिक लिंडल एवं गुन्नार मिर्डल** ने उधार देय कोष सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। बाद में अंग्रेज अर्थशास्त्री **डी0 एच0 रॉबर्टसन एवं जेकब वीनर** ने इसका विकास किया। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, **ब्याज बचत करने का प्रतिफल नहीं है, बल्कि यह उधार देय कोष के उपयोग के लिए दिया जाने वाला पुरस्कार है।** इन अर्थशास्त्रियों का विचार था कि ब्याज की दर के निर्धारण मं मितत्वययिता, प्रतीक्षा, समय-पसन्दगी, पूँजी का उत्पादकता जैसे वास्तविक तत्वों के साथ मुद्रा के संचयन एवं विसंचयन साख-मुद्रा, उपभोग वस्तुओं के लिए लिये जाने वाले ऋण जैसे मौद्रिक तत्वों को भी पर्याप्त महत्व दिया जाना चाहिए। इस प्रकार, इन अर्थशास्त्रियों ने ब्याज की दर के निर्धारण में मौद्रिक एवं वास्तविक दोनों तत्वों को महत्व दिया है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ उधार देय कोष की माँग एवं उधार देय कोष की पूर्तिं एक दूसरे के बराबर हो जाती है। अतः उधार देया कोष की माँग एवं पूर्तिं का विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है।

उधार देय कोष की माँग

उधार देय कोष की माँग निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए की जाती है-

(1) विनियोजन के लिए माँग- उधार देय कोष की माँग उत्पादकों के द्वारा मशीन, संयन्त्र के लिए विनियोजन हेतु की जाती है। ब्याज की दर एवं विनियोजन के लिए उधार देय कोष की माँग में विपरीत सम्बन्ध होता है। ब्याज की दर कम होने पर उत्पादकगण विनियोजन के लिए अधिक ऋण की माँग करते हैं। इसके विपरीत, ब्याज की दर ऊँची होने पर वे विनियोजन के लिए कम ऋण की माँग हैं। अतः विनियोजन के लिए माँग रेखा का ढाल बायें से दायं नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। विनियोजकगण् ऋण की माँग उस सीमा तक करते हैं जहाँ पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं ब्याज की दर एक-दूसरे के बराबर हो जाती है।

(2) उपभोग वस्तुओं को खरीदने के लिए ऋण की माँग –उपभोक्तागण टेलीविजन, स्कूटर, रेफ्रीजरेटर, एयर कण्डीशनर जैसे टिकाऊ उपभोग वस्तुओं को खरीदने के लिए भी ऋण की माँग करते हैं। उपभोग वस्तुओं के लिए ऋण की माँग ब्याज की दर पर निर्भर होती है। ब्याज की दर ऊँची होने पर उपभोग वस्तुओं के लिए ऋण की माँग कम की जाती है। इसके विपरीत ब्याज की दर कम होने पर उपभोग वस्तुओं के लिए ऋण की माँग अधिक की जाती है। अतः ब्याज की दर एवं उपभोग वस्तुओं के लिए ऋण की माँग के बीच ऋणात्मक सम्बन्ध होता है।

(3) सरकार द्वारा ऋण की माँग -सरकार भी युद्ध, बाढ़, अकाल, सूखा-राहत, महामारी से सुरक्षा तथा जनकल्याणकारी कार्यों को पूरा करने के लिए ऋण की माँग करती है। ब्याज की दर एवं सरकार के द्वारा ऋण की माँग भी ऋणात्मक सम्बन्ध होता है अर्थात् ब्याज की दर ऊँची होने पर ऋण की माँग कम की जाती है।

(4) संग्रह के लिए माँग - कुछ लोग ऋण की माँग, मुद्रा को नकद के रूप में रखने के लिए भी करते हैं। ब्याज की दर एवं नकदी के लिए ऋण की माँग के बीच भी ऋणात्मक सम्बन्ध होता है।

इस प्रकार, विनियोजन के लिए ऋण की माँग , उपभोग वस्तुओं को खरीदने के लिए ऋण की माँग , सरकार के द्वारा ऋण की माँग तथा नकदी के लिए ऋण की माँग के योग को अर्थव्यवस्था में उधार देय कोष की कुल माँगकहा जाता है। ब्याज की दर एवं उधार देय कोष की माँग के बीच ऋणात्मक सम्बन्ध होता है।

उधार देय कोष की पूर्ति

उधार देय कोष की पूर्तिं निम्नलिखित चार स्रोतों से की जाती है-

(1) बचतें, (2) बैंक साख, (3) अविनियोग , (4) विसंचयन।

(1) बचतें-उधार देय कोष की पूर्तिं का प्रमुख स्रोत बचतें हैं। लोग अपनी आय का जो भाग बचत करते हैं, उसे ब्याज प्राप्त करने के लिए ऋण पर दे देते हैं। सामान्यतया ब्याज की दर ऊँची होने पर लोग अधिक बचत कर ऋण देते हैं तथा ब्याज की दर कम होने पर वे बचत कम करते हैं। अतः बचत रेखा नीचे से ऊपर की ओर चढ़ती हुई रेखा होती है।

(2) बैंक साख-वर्तमान समय में उधार देय कोष की पूर्तिं का एक प्रमुख साधन बैंक मुद्रा (साख) है। व्यापारिक बैंक लोगों से जमा स्वीकार करते हैं और जरूरतमन्द उद्योग पतियों, व्यापारियों को ऋण देते हैं। इस ऋण देने की प्रक्रिया में वे साख-पत्रों का निर्माण करते हैं। इस प्रकार, साख मुद्रा के द्वारा उधार देय कोष की पूर्तिं की जाती है। सामान्यतया बैंक ब्याज की दरें ऊँची होने पर अधिक साख सृजन करते हैं।

(3) अविनियोग -उत्पादकों के द्वारा मशीनों की घिसावट एवं टूट-फूट को दूर करने के लिए घिसावट व्यय कोष की स्थापना की जाती है। जब ब्याज की दर ऊँची होती है तो वे इस कोष का प्रयोग मशीनों के प्रतिस्थापन के लिए न करके ऋण देने के लिए करते हैं। इसे ही अविनियोग कहा जाता है। इससे भी उधार देय कोष की पूर्तिं बढ़ जाती हैं। ब्याज की दर एवं अविनियोग द्वारा उधार देय कोष की पूर्तिं में सीधा सम्बन्ध होता है।

(4) पिछली बचतों का विसंचयन-जब ब्याज की दर ऊँची होती है तो लोग अपनी पिछली बचतों से अधिक ऋण देते हैं। अतः ब्याज की दर एवं विसंचयन में भी सीधा सम्बन्ध होता है।

इस प्रकार, अर्थव्यवस्था में उधार देय कोष की कुल पूर्तिं बचतें, बैंक-साख अविनियोग एवं विसंचयन के जोड़ से प्राप्त होती है। ब्याज की दर एवं उधार देय की पूर्तिं के बीच सीधा सम्बन्ध होता है।

उधार देय कोष सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर विनियोग , बचत, बैक साख एवं तरलता पसन्दगी की इच्छा इन सभी पर निर्भर होती है।

सूत्र के रूप में $r = f(I,S,M,L)$

यहाँ r = ब्याज की दर

I = विनियोग

S = बचत

M = बैंक साख

L = तरलता पसन्दगी की इच्छा अथवा संचयन की इच्छा

F = फलनात्मक सम्बन्ध

ब्याज की दर का निर्धारण

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ उधार देय कोष की माँग एवं उधार देय कोष की पूर्तिं एक-दूसरे के बराबर हो जाती है।

रेखाचित्र 26.4 से यह स्पष्ट है-

(1) रेखाचित्र में I विनियोजन के लिए, DS उपभोग वस्तुओं को खरीदने के लिए तथा H नकदी के रूप में संग्रहण करने के लिए उधार देय कोष की माँग रेखाएँ हैं।

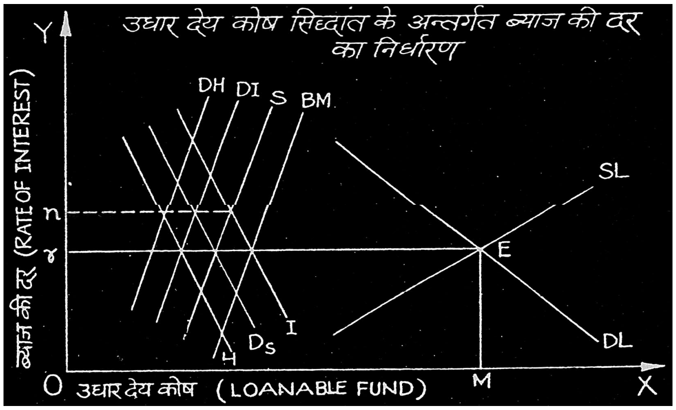

चित्र 26.4

(2) चित्र में S बचतें, BM बैंक मुद्रा, DI अविनियोग तथा DH विसंचयन के रूप में उधार देया कोष की पूर्तिं को बताते हैं।

(3) DL रेखा उधार देया कोष की कुल माँग रेखा है। इसका ढाल ऋणात्मक है। यह रेखा बताती है कि ऊँची ब्याज दर पर उधार देय कोष की माँग कम तथा कम ब्याज की दर पर उधार देय कोष की माँग अधिक होती है।

(4) SL रेखा उधार देय कोष की पूर्तिं रेखा है। इस रेखा की ढाल धनात्मक है जो यह बताती है कि ऊँची ब्याज की दर पर अधिक उधार देय कोष की पूर्तिं की जायेगी तथा कम ब्याज की दर होने पर कम उधार देय कोष की पूर्तिं की जायेगी।

(5) उधार देय कोष की कुल माँग रेखा DL एवं उधार देय कोष की कुल पूर्तिं रेखा SL एक-दूसरे को E बिन्दु पर काटती हैं। अतः E साम्य बिन्दु है। इस साम्य बिन्दु पर उधार देय कोष की माँग एवं इसकी पूर्तिं दोनों OM के बराबर हैं। अतः इस साम्य बिन्द्र पर ब्याज की दर निर्धारित होगी।

(6) चित्र में प्रतिष्ठित सिद्धान्त एवं उधार देय कोष सिद्धान्त के अन्र्तगत ब्याज की दर में अन्तर को भी दिखाया गया है। चित्र में On प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार साम्य ब्याज की दर है इस On ब्याज की दर पर बचत और विनियोग एक-दूसरे के बराबर हैं, किन्तु उधार देय कोष सिद्धान्त के अनुसार साम्य ब्याज की दर Or है।

चित्र से स्पष्ट है कि उधार देय कोष सिद्धान्त के अनुसार निर्धारित ब्याज की दर Or प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अन्तर्गत निर्धारित ब्याज की दर On से कम है।

उधार देय कोष सिद्धान्त की आलोचना

इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न हैं-

(1) इस सिद्धान्त में आय स्तर को स्थिर मान लिया गया है। वास्तव में ब्याज की दर में परिवर्तन होने से विनियोग में परिवर्तन का आय स्तर पर प्रभाव पड़ता है। अतः आय को स्थिर मान लेना उचित नहीं है।

(2) इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर अनिर्धारणीय है। इसका कारण यह है कि उधार देय कोष, लोगों की व्यय-योग्य आय पर निर्भर होता है, व्यय योग्य आय, विनियोग पर निर्भर होती है तथा विनियोग ब्याज की दर पर निर्भर होता है। इस वृत्ताकार चक्र में फँस जाने के कारण ब्याज की दर का निर्धारण नहीं हो पाता है।

(3) सिद्धान्त में वास्तविक तत्वों के साथ मौद्रिक तत्वों को जोड़ दिया गया है, किन्तु बचत एवं विनियोगजैसे वास्तविक तत्वों के साथ बैंक साख एवं तरलता पसन्दगी जैसे मौद्रिक तत्वों को किस प्रकार सम्बन्धित किया जा सकता है, स्पष्ट नहीं है।

अतः ब्याज की दर के निर्धारण में यह सिद्धान्त भी पूर्ण एवं व्यावहारिक नहीं हैं।

26.8 सारांश

ब्याज पूँजी के उपयोग के लिए किया जाने वाला भुगतान है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज पूँजी की उत्पादकता तथा बचतकर्त्ता के त्याग का परिणाम होता है। 'ब्याज के बचत एवं विनियोग सिद्धान्त' को वास्तविक सिद्धान्त भी का जाता है। कीन्स के अनुसार, ब्याज एक निश्चित अवधि के लिए तरलता से परित्याग का पुरस्कार है। ब्याज का निर्धारण मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है: कीन्स के सिद्धान्त को ब्याज का मौद्रिक सिद्धान्त कहा जाता है। स्वीडन के अर्थशास्त्रियों के अनुसार, ब्याज बचत करने का प्रतिफल नहीं है बल्कि यह उधार देय कोष के उपयोग के लिए दिया जाने वाला पुरस्कार है। ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त - प्रो0 हिक्स एवं हेन्सन ने प्रस्तुत किया है।

इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहाँ (स्डत्रस्S) हो। इसी बिन्दु पर कुल बचत और कुल विनियोग तथा तरलता पसन्दगी के लिए मुद्रा की माँग की पूर्तिं एक निश्चित आय स्तर पर एक दूसरे के बराबर होती है।

26.9 शब्दावली

(IS) **बचत विनियोग रेखा** - विभिन्न आय स्तरों एवं विभिन्न ब्याज दरों पर बचत एवं विनियोग के साम्य को बतलाती है।

(IS) **बचत विनियोग रेखा** - का ढाल ऋणात्मक होता है। यह रेखा बतलाती है कि आय स्तर में वृद्धि होने से बचत की मात्रा में वृद्धि हो जाती है और बचत की मात्रा में वृद्धि होने से ब्याज की दर भी घट जाती है। इस प्रकार आय स्तर में वृद्धि से ब्याज की दर घट जाती है।

(LM) **तरल पसन्दगी एवं मुद्रा की पूर्तिं रेखा** - आय के विभिन्न स्तरों एवं ब्याज की दर पर तरलता पसन्दगी के लिए मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्तिं के बीच सन्तुलन को बतलाती है।

(LM) रेखा का ढाल धनात्मक होता है। यह रेखा बतलाती है कि तरलता पसन्दगी ऊँची होने पर ब्याज की दर भी ऊँची होती है।

एक निश्चित आय स्तर IS पर एवं **LM** रेखाएँ एक दूसरे को काटती हैं वही साम्य बिन्दु होता है और इसी साम्य बिन्दु पर ब्याज की दर का निर्धारण होता है।

26.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 'तरलता जाल' कहलाता है-

(a) तरलता अधिमान वक्र का वह भाग जो X-अक्ष के समानान्तर होता है

(b) तरलता अधिमान वक्र का वह भाग जो Y-अक्ष के समानान्तर होता है

(c) अनेक तरलता अधिमान वक्र

(d) उपर्युक्त में से कोई नहीं

2. ''ब्याज पूँजी के त्याग का प्रतिफल है''। यह कथन है-

(a) सीनियर का (b) मार्शल का (c) फिशर का (d) हिक्स का

3. ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त में पूS वक्र बताता है -

(a) आय एवं ब्याज दर के संयोग (b) आय एवं व्यय का संयोग

(c) आय एवं बचत का संयोग (d) इनमें से कोई नहीं

4. उधर देय कोषों का माँग वक्र होता है-

(a) ऋणात्मक ढाल (b) धनात्मक ढाल

(c) समानान्तर रेखा (d) लम्बवत रेखा

5. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित ब्याज का सिद्धान्त -

(a) बचत विनियोग सिद्धान्त है (b) सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त है

(c) IS एवं LM वक्र सिद्धान्त है। (d) तरलता पसन्दगी सिद्धान्त है

6. ऋणदेय कोष सिद्धान्त के सन्दर्भ में सार्थक कथन को अंकित कीजिए -

(a) DLF = DI + DH + DC (b) SLF = S + dl + BM

(c) सन्तुलन DLF = SLF (d) इनमें से सभी

7. कीन्स के अनुसार कौन-सा कथन उपयुक्त है -

(a) M = L1 (y) (b) M2 = L2(r)

(c) M = M1 + M1 = L1 (y) + L2 (r) (d) इनमें से तीनों उचित है

8. कीन्स के अनुसार ब्याज दर दो तत्वों पर निर्भर करती है जिनमें एक है तरलता पसन्दगी और दूसरा क्या है।

(a) मुद्रा की माँग (b) मुद्रा की पूर्ति

(c) विनियोग की मात्रा (d) बचत की मात्रा

9. नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने प्रस्तुत किया-

(a) ब्याज का समय अधिमान सिद्धान्त (b) ब्याज का प्रतीक्षा सिद्धान्त

(c) ऋण योग्य कोष सिद्धान्त (d) तरलता पसन्दगी सिद्धान्त

उत्तर -**1. (a), 2. (b), 3. (a), 4. (a), 5. (a), 6. (d), 7. (d), 8. (d), 9. (c)**

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ब्याज का प्रतिष्ठित दृष्टिकोण क्या है।

2. नव प्रतिष्ठित दृष्टिकोण क्या है ?

3. तरलता पसन्दगी से क्या समझते हैं ?

4. कीन्स के विचार में मुद्रा की माँग क्यों की जाती है ?

5. तरलता जाल किसे कहते हैं ?

6. सट्टा उद्देश्य के लिए रखी जाने वाली मुद्रा की माँग ब्याज दर पर किस प्रकार निर्भर करती है ?

7. ऋण योग्य कोष सिद्धान्त के विकास में किन अर्थशास्त्रियों का योग दान है ?

26.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्रा, जे0पी0 (2009): उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त -मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन,वाराणसी।
2. सिन्हा, वी0सी0 (1990): उन्नत आर्थिक सिद्धान्त, स्टूडेन्ट फ्रेन्डस इलाहाबाद।
3. आहूजा, एम0एल0 (2006): उच्च आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक विश्लेषण, चन्द्र प्रकाशन, दिल्ली।
4. लाल, एस0 एन0 (2005): उच्च आर्थिक सिद्धान्त, शिवा पब्लिशिंग हाऊस -इलाहाबाद।
5. लाल, एस0 एन0 (2008): माइक्रों इकोनामिक्स:शिवा पब्लिशिंगहाऊस - इलाहाबाद।
8. जैन, पी0 सी0 (1995): उच्च आर्थिक विश्लेषण, चुग प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. त्रिपाठी, बद्री विशाल (2000): एडवांस इकोनोमिक थ्योरी,किताब महल्, इलाहाबाद।

26.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Mehta,J.K.(1980):EconomicTheory,ChughPublications,Allahabad.
- Jhingan, M.L. (2007) : Advanced Economic Theory, Vrinda Prakashan, New Delhi.
- Seth, M.L. (2007): Micro Economics, L.N. Agrwal Publications, Agra.
- P. Samuelson (1967) : Micro Economic Theory & Policy, Oxford University Press, U.K.
- Dhingra, I.S. (2005) : Advaned Economics Theory New Century Publication. DelhiTripathi, B.B. (2000) : Micro Economics, Kitab Mahal Allahabad

26.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्याज के उधार देय कोष सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।

2. ब्याज क्यों दिया जाता है ? ब्याज दर में भिन्नता के क्या कारण हैं।

3. ब्याज की तरलता पसन्दगी को पूर्णतया समझाइए तथा इसके गुण-दोषों पर प्रकाश डालिए।

इकाई 27 लाभ के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

27.0 प्रस्तावना
27.1 उद्देश्य
27.2 सामान्य लाभ
27.3 असामान्य लाभ
27.4 लाभ के प्रमुख सिद्धान्त
 27.4.1 लाभ का मजदूरी सिद्धान्त
 27.4.2 लाभ का लगान सिद्धान्त
 27.4.3 लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
 27.4.4 क्लार्क का लाभ सम्बन्धी प्रावैगिक सिद्धान्त
 27. 4.5 शुम्पीटर का लाभ सम्बन्धी नव प्रवर्तन सिद्धान्त
 27. 4.6 जोखिम तथा अनिश्चितता वहन करने के सिद्धान्त
 27. 4.7 लाभ का आधुनिक सिद्धान्त
27.5 सांराश
27.6 शब्दावली
27.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
27.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
27.9 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
27.10 निबन्धात्मक प्रश्न

27.0 प्रस्तावना

उत्पादन कार्य में साहसी के योग दान के लिए जो पुरस्कार दिया जाता है उसे लाभ की संज्ञा दी जाती है। वर्तमान समय में उत्पादन कार्य अत्यन्त जटिल है उत्पादन कार्य हेतु साधनों की बड़ी मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। अतः उत्पादक या साहसी कच्चे, माल, श्रमिक, पूँजी, तकनीकी ज्ञान जैसे उत्पादन

साधनों को एकत्रित करता है तथ इनका उत्पादन के लिए प्रयोग करता है जो यह सभी कार्य करता है वह साहसी कहलाता है। साहसी को जो पुरस्कार प्राप्त होता है वही लाभ होता है। साधनों का पुरस्कार लगान पारिश्रमिक एवं ब्याज के रुप में चुकाना पड़ता है, इसमें से साहसी का पुरस्कार पहले से निश्चित नहीं होता हैं। चूँकि साहसी का लाभ हमेशा अनिश्चित रहता है अतः व्यवसाय में अनिश्चितता एवं जोखिम के भार को सहन करने के बदले में जो पुरस्कार साहसी को दिया जाता है, उसे ही लाभ कहा जाता है।

27.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- लाभ के प्रतिष्ठित सिद्धान्त से लेकर लाभ के वर्तमान सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त करना।
- लाभ के अन्तर्गत होने वाले अनिश्चितता की जानकारी प्राप्त करना।
- लाभ के समाजवादी सिद्धान्त की जानकारी प्राप्त करना।

27.2 सामान्य लाभ

प्रत्येक साहसी लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से जोखिम उठाता है। अतएव यह आवश्यक है कि उसे उत्पादन प्रक्रिया में कम से कम इतना लाभ मिलता रहे जिससे वह कार्य में लगा रहे। यही सामान्य लाभ है। लाभ की यह एक न्यूनतम सीमा है, जिससे कम मिलने पर साहसी जोखिक उठाना छोड़ देगा। किसी उद्योग में साहसी के सामान्य लाभ वे होते हैं जो उसे उद्योग में बनाये रखने के लिए आवश्यक होते हैं। इस प्रकार सामान्य लाभ साहसी की स्थानान्तरण आय है। इसका सम्बन्ध दीर्घकाल से होता है। सामान्य लाभ पर विचार करते हुए प्रो0 मार्शल ने कहा कि दीर्घकालीन मूल्य प्रतिनिधि फर्म की उत्पादन-लागत के बराबर होता है और सामान्य लाभ इस उत्पादन लागत का एक भाग होता। इसलिए सामान्य लाभ प्रतिनिधि फर्म को मिलने वाला लाभ है। सामान्य लाभ उत्पादन लागत में जुटा रहता है इस प्रकार सामान्य लाभ उत्पादन लागत में उसी प्रकार से जुटा रहता है, जैसे

मजदूरी, लगान तथा ब्याज सम्मिलित रहते हैं। शुद्ध लाभ लागत मे नहीं जुटा रहता है, यह तो वास्तव में उत्पादन लागत के ऊपर अधिक्य होता है।

27.3 असामान्य लाभ

- किसी भी साहसी को सामान्य लाभ के ऊपर जो लाभ प्राप्त होता है उसे असामान्य लाभ कहते हैं। हैन्सन के शब्दों में ''सामान्य लाभ के अतिरिक्त जो लाभ प्राप्त होता है उसे असामान्य लाभ कहते हैं। असामान्य लाभ लगान की तरह एक प्रकार का अतिरेक है, जो कुशल साहसियों को मिलता है सीमान्त साहसी असामान्य लाभ नहीं प्राप्त कर पाता है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में असामान्य लाभ बाहरी फर्मों के प्रवेश के लिए आकर्षण का कारण बनता है और दीर्घकाल में असामान्य लाभ विलुप्त हो जाता है।
- प्रो0 नाइट के सामान्य तथा असामान्य लाभ के बीच भेद जोखिम के विभिन्न प्रकारों के आधार पर किया है। नाइट के अनुसार '''ऐसी जोखिमों के लिए जो ज्ञात है तथा जिनका बीमा कराया जा सकता है, जो लाभ प्राप्त होते हैं उसे सामान्य लाभ कहते हैं, पर अज्ञात जोखिमों के लिये जो लाभ प्राप्त होता है उसे असामान्य लाभ कहते हैं।
- पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में असामान्य लाभ हो सकता है पर दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ होगा, जबकि एकाधिकार में असामान्य लाभ अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों अवस्थाओं में सम्भव है।
- यहाँ एक तथ्य का स्पष्टीकरण उचित प्रतीत होता है कि जो हम औसत-लागत वक्र (AC) खींचते हैं उसमें सामान्य लाभ भी सम्मिलित रहता है, इसलिए जब औसत-आय वक्र (AR) औसत-लागत वक्र (AC) का स्पर्श रेखा होता है तो फर्म को सामान्य लाभ होता है तथा जब यह औसत-आय वक्र से नीचे हो तो फर्म को असामान्य लाभ होगा।

27.4 लाभ के प्रमुख सिद्धान्त

सामान्यतया लाभ जोखिम उठाने का भुगतान होता है अतः इस उद्देश्य की पूर्तिं के लिए साहसी या उत्पादक जोखिम उठाता है। इस प्रकार जोखिम तथा अनिश्चितता के लिए दिए जाने वाले पुरस्कार को लाभ कहा जाता है और यह वस्तुओं की कुल बिक्री से प्राप्त होने वाली आय तथ उसकी उत्पादन लागत के अन्तर के बराबर होता है।

साहसी का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यवसाय मे होने वाली हानि का जोखिम उठाना भी होता है, वह अपने व्यवसाय को शुरू करने के पहले उत्पादन लागत एवं आय का अनुमान लगाता है यदि इससे उसे हानि का अन्देशा हो तो इस हानि के जोखिम उठाने के बदले में उसे पुरस्कार मिलता है। यह

पुरस्का साहसी को शुद्ध लाभ के रुप में प्राप्त होता है। अतएव साहसी के द्वारा उत्पादन में जोखिम उठाने, अनिश्चिताओं को सहन करने एवं नव प्रवर्तनों को लागू करने का उद्देश्य सभी से लाभ प्राप्त करना होता है।

लाभ के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित है:-

1. लाभ का मजदूरी सिद्धान्त
2. लाभ का लगान सिद्धान्त
3. लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
4. क्लार्क का लाभ सम्बन्धी प्रावैगिक सिद्धान्त
5. शुम्पीटर का लाभ सम्बन्धी नव प्रवर्तन सिद्धान्त
6. जोखिम तथा अनिश्चितता वहन करने के सिद्धान्त
7. लाभ का आधुनिक सिद्धान्त

27.4.1 लाभ का मजदूरी सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो0 टॉजिंग द्वारा किया गया था। एक अन्य अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो0 डेवनपोर्ट ने इसका समर्थन किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ भी एक प्रकार की मजदूरी होता है, जिसे उद्यमकर्ता को उसकी सेवाओ के बदले चुकाया जाता है। प्रो0 टॉजिग के शब्दों में, ''लाभ उद्यमकर्ता की वह मजदूरी है जो उसे उसकी विशेष योग्यता के कारण प्राप्त होती है।'' इस सिद्धान्त के अनुसार श्रम एवं उद्यम में पूर्ण समानता है। जिस प्रकार श्रम अपनी सेवाओ के बदले मजदूरी प्राप्त करता है, ठीक उसी प्रकार उद्यमी अपनी उत्पादन सम्बन्धी भूमिका के एवज में लाभ प्राप्त करता है। अन्तर केवल इतना है कि श्रम की सेवाएँ शारीरिक होती हैं जबकि उद्यमकर्ता का कार्य मानसिक होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार उद्यमी, डॉक्टरों, वकीलों एवं अध्यापकों जैसे मानसिक कार्यकर्ताओं से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं होता है। इसी आधार पर प्रो0 टॉजिग ने लाभ को एक प्रकार की ऐसी मजदूरी कहा है जो उद्यमी को सेवाओं के बदले प्राप्त होती है।

निम्नलिखित आधारो पर इस सिद्धान्त को आलोचना की गयी है:

आलोचना :- आलोचकों ने इस सिद्धान्त के प्रमुख दोष निम्न बताये हैं -

i. लाभ एक अवशेष भुगतान है जबकि मजदूरी सदैव धनात्मक रहती है।

ii. उद्यमी को जोखिम व अनिश्चिताओं का सामना करना पड़ता है जबकि श्रमिक को ऐसी कोई समस्या नहीं होती।

iii. अपूर्ण प्रतियोगिता में लाभ बढ़ते हैं जबकि मजदूरी में कमी होने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

iv. संयुक्त पूँजी कम्पनी में अंशधारी लाभ प्राप्त करते हैं जबकि वे कोई भी मानसिक श्रम नहीं करते।

27.4.2 लाभ का लगान सिद्धान्त

इस सिद्धान्त की परिकल्पना का श्रेय ब्रिटिश अर्थशास्त्री सीनियर तथा मिल को जाती है परन्तु प्रस्तुत करने का श्रेय अमरीकन अर्थशास्त्री प्रो0 वॉकर को जाता है। यह सिद्धान्त वॉकर के नाम से ही जाना जाता है। इस सिद्धान्त का मूल मंत्र रिकार्डो का लगान सिद्धान्त है। रिकार्डो के अनुसार लगान एक भेदात्मक उपज है जो अधिक उर्वरता वाली भूमियों पर सीमान्त भूमि की अपेक्षा प्राप्त होती है। जिस प्रकार भूमि के भिन्न-भिन्न टुकड़ों की उपजाऊ शक्ति में अन्तर होता है उसी प्रकार उद्यमियों की योग्यता मे भी अन्तर पाया जाता है। सीमान्त भूमि की भाँति सीमान्त उद्यमी सामान्य योग्यता का व्यक्ति होता है और वह अपनी वस्तु को उत्पादन लागत पर ही बेच पा सकने के कारण कोई आधिक्य प्राप्त नहीं कर पाता। सीमान्त उद्यमी से अधिक योग्य व कार्यकुशल उद्यमी आधिक्य प्राप्त कर लेते हैं, वही लाभ है।

आलोचना :- इस सिद्धान्त के प्रमुख दोष निम्न पाये गये हैं -

i. यह सिद्धान्त एकाधिकारी लाभ व आकस्मिक लाभ के स्पष्ट नहीं करता।

ii. सीमान्त उद्यमी की परिकल्पना ही गलत है क्योंकि सामान्य लाभ न मिलने पर उद्यमी व्यवसाय छोड़ जाता है।

iii. संयुक्त पूँजी कम्पनी के हिस्सेदारों को जो लाभांश मिलता है उसमें योग्यता का प्रश्न ही नहीं आता।

iv. लाभ व लगान दोनों मे मौलिक अन्तर है क्योंकि लगान कभी भी ऋणात्मक नहीं हो सकता।

v. यह सिद्धान्त लाभों में पाये जाने वाले अन्तर को स्पष्ट करता है, उसकी प्रकृति को स्पष्ट नहीं करता।

27.4.3 लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त साधनों के पुरस्कार निर्धारण की दृष्टि से एक वैज्ञानिक सिद्धान्त माना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि अन्य बातों समान रहें तो दीर्घकाल में किसी

साधन का पुरस्कार उसकी सीमान्त उत्पादकता में समान होने की प्रवृत्ति पायी जाती हैं। उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता अधिक होने पर लाभ की मात्रा अधिक होगी और उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता कम होने पर लाभ की मात्रा कम होगी। यहाँ एक बात स्पष्ट रूप से कहना आवश्यक है कि भूमि, श्रम, पूँजी आदि साधन तो ऐसे हैं, जिनकी सामान्य उत्पादकता सरलता से ज्ञात की जा सकती है, क्योंकि अन्य साधनों की मात्रा स्थिर रखकर इनकी क्रमशः एक इकाई बढ़ाकर सीमान्त उत्पादकता निकाली जा सकती है और परिवर्तनशील अनुपातों के नियम लागू होने के कारण एक बिन्दु के बाद सीमान्त उत्पादकता क्रमशः गिरती जाती है। एक फर्म में उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात करना कठिन है, क्योंकि एक फर्म में एक ही उद्यमी होता है। हाँ, उद्योग में उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात की जा सकती है।

आलोचनायें :- इस सिद्धान्त की आलोचना निम्न बातों पर आधार की गयी है -

i. यह सिद्धान्त माँग पर ही विचार करता है और पूर्ति पक्ष की उपेक्षा करता है। इसे एकपक्षीय सिद्धान्त कहा जा सकता है।

ii. साहसी या उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता की गणना सरलता से नहीं की जा सकती क्योंकि एक फर्म की स्थिति में एक ही उद्यमी होता है।

iii. इस सिद्धान्त में भी लाभ के निर्धारक महत्वपूर्ण तत्वों को छोड़ दिया गया है।

27.4.4 क्लार्क का लाभ सम्बन्धी प्रावैगिक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन के अर्थशास्त्री प्रो0 जे0बी0 क्लार्क ने किया था। क्लार्क के अनुसार, लाभ उत्पन्न होने का आधारभूत कारण अर्थव्यवस्था में होने वाला प्रावैगिक परिवर्तन है। स्थैतिक अर्थव्यवस्थ में कोई लाभ प्राप्त नहीं होता है। इसका कारण यह है कि इसमें माँग एवं पूर्ति की दशाएँ भी स्थिर रहती हैं। स्थैतिक अर्थव्यवस्था में कोई जोखिम एवं अनिश्चिता नहीं होती है। **प्रो0 नाइट** ने लिखा है कि, **''स्थैतिक स्थिति में प्रत्येक साधन को वही मूल्य प्राप्त होता है तो कि वह वस्तुओं के उत्पादन में व्यय करता है। चूँकि लागत एवं बिक्री मूल्य हमेशा समान होते है, अतः साहसी को दैनिक कार्य निरीक्षण के लिए मजदूरों के अतिरिक्त कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सकता।''**

क्लार्क के अनुसार, लाभ अर्थव्यवस्था में प्रावैगिक परिवर्तनों के कारण प्राप्त होता हैं उनके अनुसार अर्थव्यवस्था में मुख्यतया 6 प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं -

(i) जनसंख्या में वृद्धि
(ii) उपभोक्ताओं की रुचि एवं पसंदगियों में परिवर्तन

(iii) लोगों की आवश्यकताओं में वृद्धि
(iv) पूँजी-निर्माण में वृद्धि
(v) तकनीकी सुधार में परिवर्तन
(vi) व्यावसायिक संगठन के स्वरूप में परिवर्तन

इन परिवर्तनों के कारण अर्थव्यवस्थ प्रावैगिक हो जाती है। अर्थव्यवस्थ में माँग एवं पूर्ति की दशाओं में परिवर्तन हो जाता है। इन्हीं परिवर्तनों के अन्तर्गत एक कुशल एवं योग्य साहसी नई तकनीक से कम लागत में श्रेष्ठ किस्म की वस्तु उत्पादित कर लाभ प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में उसी साहसी को लाभ प्राप्त होता है जो इन परिवर्तनों के कारण जोखिम उठाता है और अनिश्चितताओं को सहन करता है।

आलोचनाएँ

(i) प्रो0 नाइट के अनुसार, लाभ हर प्रकार के परिवर्तनों का परिणाम नहीं होता है। यह केवल अदृश्य एवं अनिश्चित परिवर्तन जिनके लिए एक साहसी बीमा नहीं करा पाता है, उन्हीं परिवर्तनों के भार को सहन करने का परिणाम होता है।
(ii) क्लार्क ने अपने सिद्धान्त में संघर्ष लाभ की चर्चा की है, न कि वास्तविक लाभ का। चूँकि आर्थिक प्रावैगिक का अर्थ निरन्तर परिवर्तन से होता है जबकि क्लार्क ने तुलनात्मक परिवर्तनों के कारण जो लाभ प्राप्त होता है उसकी चर्चा की है। अतः क्लार्क का लाभ-सिद्धान्त वास्तविक लाभ की व्याख्या न करके तुलनात्मक लाभ या संघर्ष लाभ की व्याख्या करता है-उपर्युक्त आलोचनाओं के कारण यह सिद्धान्त एक अपूर्ण सिद्धान्त है।

27.4.5 शुम्पीटर का लाभ सम्बन्धी नव प्रवर्तन सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो0 जोसेफ ए0 शुम्पीटर ने किया था। शुम्पीटर के अनुसार लाभ साहसी द्वारा उत्पादन के नव-प्रवर्तन को लागू करने का परिणाम होता है। साहसी का प्रमुख कार्य उत्पादन के क्षेत्र में नव-प्रवर्तन को लागू करने का है।

नव-प्रवर्तन का अर्थ-शुम्पीटर के अनुसार, नव-प्रर्वतन का अभिप्राय वस्तु के उत्पादन एवं इसकी बिक्री की दशाओं में किये जाने वाले उन सभी परिवर्तनों से है जिनका उद्देश्य वस्तु की उत्पादन लागत में कमी करना अथवा वस्तु की बिक्री में वृद्धि कर आय को बढ़ाना होता है। ये नव-प्रवर्तन अनेक प्रकार के हो सकते हैं, जैसे-(1) उत्पादन की नई विधि का प्रयोग करना, (2) नई मशीनों एवं यन्त्रों का प्रयोग करना, (3) फर्म के आन्तरिक संगठन में परिवर्तन करना, (4) कच्चे माल के स्रोतों को ढूँढना, (5) वस्तु की किस्म में सुधान करना एवं (6) वस्तु की बिक्री करने की विधियों में परिवर्तन करना आदि।

शुम्पीटर का विचार था कि साहसी को लाभ नव-प्रवर्तनों को उत्पादन के क्षेत्र में लागू करने के कारण प्राप्त होता है इन नव-प्रर्वतनों को लागू करके साहसी अपनी वस्तु को दूसरे उत्पादकों की तुलना में कम लागत में उत्पादित करता है तथ उसकी बिक्री अधिक मात्रा में करके लाभ प्राप्त करता है। शुम्पीटर ने वैज्ञानिक एवं नव-प्रवर्तक में अन्तर किया है। उनके अनुसार वैज्ञानिक वह व्यक्ति है जो नई विधि एवं नई तकनीक की खोज करता है, किन्तु नव-प्रवर्तक वह व्यक्ति होता है जो इन खोजों का प्रयोग लाभ कमाने के लिए अपने व्यवसाय में करता है। प्रो0 सेम्युलसन ने इसे एक सुन्दर उदाहरण से स्पष्ट किया है- मैक्सवेल ने रेडियो तरंग का आविष्कार किया था जबकि मारकोनी एवं सरनोफ ने इसका रेडियो के निर्माण में प्रयोग किया। अतः मैक्सवेल वैज्ञानिक था जबकि मारकोनी एवं सरनोफ नव-प्रवर्तक थे। तकनीकी विशेषज्ञ को एक निश्चित राशि रॉयल्टी के रूप में दे दी जाती है। चूँकि सहसों किसी नव-प्रर्वतन को लाभदायक समझकर वस्तु के उत्पादन में प्रयोग करता है और जोखिम उठाता है, अतः साहसी को ही लाभ प्राप्त होता है।

लाभ की प्रकृति अस्थायी होती है-शुम्पीटर के अनुसार, साहसी को नव-प्रवर्तन को उत्पादन में अपनाने के कारण होने वाला लाभ अस्थायी होता है। जब कोई साहसी किसी नव-प्रवर्तन का प्रयोग उत्पादन के क्षेत्र में सबसे पहले करता है, उसे लाभ प्राप्त होता है, किन्तु जैसे ही अन्य साहसियों के द्वारा उस नव-प्रर्वतन का प्रयोग

अपनी-अपनी वस्तुओं के उत्पादन में अपना लिया जाता है, वैसे ही प्रथम साहसी का लाभ समाप्त हो जाता है। जब कोई साहसी किसी नये नव-प्रर्वतन (तकनीकी) का प्रयोग उत्पादन के क्षेत्र में फिर से करेगा, उसे लाभ मिल ना शुरू हो जायेगा। अतः साहसी के लाभ की प्रकृति अस्थायी होती है।

लाभ एक प्रावैगिक आय- शुम्पीटर के अनुसार, ''लाभ एक प्रावैगिक आय है। यह स्थैतिक समाज में उत्पन्न नहीं होता है। प्रावैगिक समाज में साहसी उत्पादन के क्षेत्र में नई-नई उत्पादन की मशीनों एवं तकनीकी का प्रयोग करके लाभ प्राप्त करता है। इस दृष्टि से शुम्पीटर का विचार क्लार्क के विचार से मेY रखता है, किन्तु शुम्पीटर का विचार है कि लाभ प्रावैगिक समाज में केवल   एक ही प्रकार के नव-प्रवर्तन को लागू करने के कारण प्राप्त नहीं होता है बल्कि यह उत्पादन के क्षेत्र में निरन्तर नये-नये नव-प्रवर्तनों को अपनाने का परिणाम होता है।

लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार नहीं -शुम्पीटर के अनुसार, ''लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार नहीं होता है क्योंकि साहसी जोखिम नहीं उठाता है। उत्पादन कार्य में जोखिम पूँजीपति उठाता है जिन्होंने साहसी को ऋण दिया है। अतः शुम्पीटर के अनुसार जोखिम पूँजीपति उठाता है न कि साहसी। इस प्रकार शुम्पीटर एवं नाइट के विचारों में भिन्नता है''।

लाभ भिन्न प्रकार की आय-शुम्पीटर के अनुसार, लगान , मजदूरों एवं ब्याज की प्रकृति स्थायी होती है। ये नियमित रूप से प्राप्त होती है और सभी स्थितियों में उत्पन्न होती हैं, किन्तु लाभ एक

अस्थायी बचत है जो नव-प्रवर्तन को उत्पादन के क्षेत्र में लागू करने के कारण प्राप्त होता है। दीर्घकाल में यह साहसियों के द्वारा उसी नव-प्रवर्तन को अपना लिए जाने के कारण समाप्त हो जाता है।

आलोचनाएँ

आलोचकों के अनुसार इस सिद्धान्त में लाभ को प्रभावित करने वाले अन्य तत्वों को महत्व नहीं दिया गया है। अतः यह एक व्यापक सिद्धान्त नहीं है।

यह सिद्धान्त लाभ को जोखिम उठाने का पुरस्कार नहीं मानता है। आलोचकों का विचार है कि जोखिम उठाना पूँजीपति का नहीं बल्कि साहसी का मुख्य कार्य होता है।

शुम्पीटर ने साहसी के कार्य को सीमित कर दिया है। साहसी केवल नव-प्रवर्तनों को ही उत्पादन में लागू नहीं करता बल्कि वह उत्पादन के विभिन्न साधनों को संगठित करता है, उसका निर्देशन करता है। अतः लाभ साहसी के इन सभी कार्यों का पुरस्कार होता है।

27.4.6 जोखिम तथा अनिश्चितता वहन करने के सिद्धान्त

लाभ के विषय में एफ0बी0 हाले ने यह मत दिया था कि उद्यम में निहित जोखिम को वहन करने का पुरस्कार साहसी को लाभ के रूप में प्राप्त होता है। ए0सी0 पीगू ने भी इसी प्रकार का मत दिया था, यद्यपि जोखिम वहन सिद्धान्त करने का श्रेय हाले को ही जाता है।

जोखिम वहन सिद्धान्त के अनुसार वस्तु का उत्पादन करने में जोखिम निहित होता है एवं कोई भी उद्यम बगैर जोखिम के सम्भव नहीं है। इस जोखिम को उठाकर उत्पादन कार्य करने के पारितोषिक के रूप में समाज द्वारा साहसी को जो कीमत दी जाती है वही लाभ है।

लाभ का जोखिम सिद्धान्त अपने आप में पूर्ण नहीं माना गया एवं इसे और अधिक विकसित कर अनिशिचतता वहन सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत किया गया । अनिश्चितता वहन सिद्धान्त में जोखिम की स्पष्ट व्याख्या की गई है एवं पूर्वानुमान के योग्य अथवा अयोग्य जोखिम के अन्तर को स्पष्ट किया गया है।

अनिश्चितता वहन करने का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिका के अर्थशास्त्री प्रो0 नाइटद्ध ने किया था। इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में प्रो0 नाइट ने लिखा है कि जिस प्रकार पूँजीपति का कार्य प्रतीक्षा करना है, उसी प्रकार साहसी का मुख्य कार्य उत्पादन सम्बन्धी सभी अनिश्चितताओं को वहन करना होता है न कि जोखिम उठाना। अतः लाभ अनिश्चितताओं को वहन करने का साहसी को पुरस्कार होता है तथा उसकी लाभ की मात्रा अनिश्चितताओं की मात्रा पर निर्भर होती है।

प्रो0 नाइट ने जाखिमों को दो भागों में बाँटा है-

i. बीमा योग्य जोखिम
ii. गैर-बीमा योग्य जोखिम

(i) **बीमा योग्य जोखिम-**व्यवसाय में कुछ जोखिम ऐसे होते हैं जिनके विषय में साहसी पहले से अनुमान लगा लेता है। ऐसे जोखिमों को द्रष्टव्य जोखिम भी कहते हैं। इन जोखिमों के लिए साहसी बीमा करा लेता है। उदाहरण के लिए आग , चोरी दुर्घटना आदि। चूँकि साहसी इन जोखिमों के लिए बीमा करा लेता है, अतः वास्तव में कोई जोखिम नहीं उठाता है। वास्तव में जोखिम बीमा कम्पनी उठाती है। इसके लिए बीमा कम्पनी प्रीमियम की राशि निर्धारित कर देती है और साहसी को यह प्रीमियम की राशि बीमा कम्पनी के पास जमा करनी होती है। चूँकि प्रीमियम की यह राशि वस्तु के उत्पादन लागत में सम्मिलित रहती है अतः लाभ ऐसे बीमा कराये गये जोखिमों का पुरस्कार नहीं होता है।

(ii) **गैर-बीमा योग्य जोखिम-**गैर-बीमा योग्य जोखिम के विषय में साहसी पहले से अनुमान नहीं लगाता। अतः इनका वह बीमा नहीं कर पाता है। अतः ऐसे गैर-बीमा योग्य जोखिमों को सहन करने के लिए ही साहसी को लाभ प्राप्त होता है। चूँकि गैर-बीमा योग्य जोखिम अनिश्चित होते हैं, इसीलिए प्रो0 नाइट ने लाभ के अनिश्चितता वहन करने का पुरस्कार कहा है।

गैर-बीमा योग्य जोखिम निम्न प्रकार के हो सकते हैं:-

(1) माँग में परिवर्तन-उपभोक्ताओं की आय, रुचि, फैशन एवं जनसंख्या के आकार में परिवर्तन होने के कारण वस्तु की माँग में परिवर्तन हो जाता है। वस्तु की माँग में रहने वाले इन परिवर्तनों से यह सम्भव है कि साहसी को हानि हो जाय। इस प्रकार की हानि के लिए बीमा नहीं होता है।

(2) व्यापार चक्र-पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में तेजी एवं मन्दी की घटनाएँ आती रहती हैं। मन्दी के समय वस्तुओं की बिक्री न हो पाने के कारण साहसी को हानि हो जाती है। मन्दी के कारण साहसी को जो हानि होती है, इसका भी बीमा नहीं होता है।

(3) तकनीकी परिवर्तन-तकनीकी ज्ञान के क्षेत्र में निरन्तर सुधार हो रहा है। अतः साहसी को बाजार में अपनी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति को बनाए रखने के लिए नई तकनीकी एवं मशीनों का प्रयोग करना पड़ता है। यदि साहसी नई तकनीक एवं मशीनों का प्रयोग अपनी वस्तु के उत्पादन में नहीं कर पाता है तो उसे हानि होती है। इस हानि के लिए भी वह बीमा नहीं करा पाता है। इसी प्रकार से उपभोक्ताओं की रुचि, आय, स्थानापन्न वस्तुओं की कीमतों, जनसंख्या के आकार मं ढाँचागत परिवर्तन होते रहते हैं। इन सभी परिवर्तनों का व्यवसाय पर प्रभाव पड़ता है। इन परिवर्तनों के कारण

यह सम्भव है कि साहसी को वस्तु के उत्पादन में हानि हो जाय। इन अनिश्चितताओं के लिए बीमा नहीं हो पाता है।

प्रो0 नाइट का विचार है कि साहसी का मुख्य कार्य इन्हीं अनिश्चतताओं के कारण होने वाली हानि को सहन करना है। अतः साहसी का लाभ अनिश्चितता वहन करने का पुरस्कार है।

आलोचनाएँ - इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाँए निम्नलिखित हैं-

(i) लाभ केवल अनिश्चितता वहन करने का पुरस्कार ही नहीं होता है। इसका कारण यह है कि साहसी वस्तु के उत्पादन में अन्य महत्वपूर्ण कार्य जैसे-उत्पादन सम्बन्धी योजना बनाना, वस्तु की किस्म के सम्बन्ध में निर्णय लेना, उत्पादन के साधनों की व्यवस्था करना, नव-प्रर्वतनों को लागू करना आदि कार्यों को भी करता है। अतः लाभ केवल अनिश्चितता वहन करने का ही पुरस्कार नहीं बल्कि इन सभी कार्यो का पुरस्कार होता है।

(ii) अनिश्चितता वहन करना उत्पादन का अलग से साधन नहीं होता है।

(iii) यह सिद्धान्त साहसी के एकाधिकारी लाभ की व्याख्या नहीं करता है। एकाधिकारी लाभ प्राप्त होने पर साहसी कोई अनिश्चितता का भार वहन नहीं करता है।

(iv) अनिश्चितता सम्बन्धी तत्वों को मात्रा के रूप में ठीक-ठाक माप सकना भी कठिन है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के कारण यह सिद्धान्त भी मान्य एवं पूर्ण सिद्धान्त नहीं है।

27.4.7 लाभ का आधुनिक सिद्धान्त

साहसी का पुरस्कार भी माँग और पूर्ति की साम्य से निर्धारित होता है। साहसियों के लाभ को मालूम करने के लिये उन्हें दो भागों में विभाजित किया जाता है-

(1) साहसियों की माँग , (2) साहसियों की पूर्ति

(1) साहसियों की माँग - साहसियों की माँग को निम्न तत्व प्रभावित करते हैं -

(i)जनसंख्या की मात्रा, (ii)पूँजी की उपलब्धता, (iii)साहसियों की संख्या(iv) उद्योगो में अनिश्चितता का अंश (v) औद्योगिक अनुभव (vi) समाज की दशा (vii) प्रबन्ध तथा तकनीकी सेवी वर्ग की उपलब्ध ता।

साहसी की पूर्ति, पर्याप्त पूँजी, तकनीकी सेवी वर्ग, पर्याप्त जनसंख्या एवं अन्य उपरोक्त तत्वों से प्रभावित होती है। इसमें भी अनिश्चितता का अंश साहसियों को पूर्ति का महत्वपूर्ण भाग है। जितना अधिक अनिश्चिता का अंश होगा साहसी उस क्षेत्र में उतना ही अधिक प्रभावित होकर अपनी पूर्ति बढ़ायेगा। जैसा कि चित्र के SS वक्र से स्पष्ट है।

चित्र 27.7 से यह स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे लाभ में वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे साहसियों की संख्या में भी वृद्धि होती है।

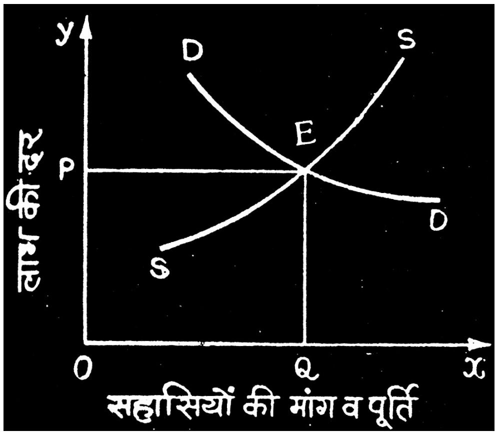

चित्र 27.7

लाभ का निर्धारण-पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से लाभ का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ उद्योग के लिये साहसियों की माँग रेखा उसकी पूर्ति रेखा को काटती है। यह उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है।
उपर्युक्त चित्र के अनुसार साहसियों की माँग रेखा DD एवं पूर्ति रेखा SS एक दूसरे को E बिन्दु पर काटती हैं। इस प्रकार OP लाभ दर पर साहसियों की कुल माँग एवं कुल पूर्ति OQ है।

27.5 सांराश

इस इकाई में लाभ के विभिन्न अर्थ व परिभाषायें दिये गये हैं। कुल लाभ तथा वास्तविक लाभ के अन्तर को बताते हुए सामान्य लाभ तथा असामान्य लाभ की चर्चा की गयी है। लाभ के प्रतिष्ठित से लेकर आधुनिक सिद्धान्तों की चर्चा है। जनसंख्या में वृद्धि, उत्पादन विधि में सुधार, तकनीकी विकास, पूँजी की पूर्ति में वृद्धि, उपभोक्ताओं की रूचि, इच्छा आदि में हुए परिवर्तन तथा औद्योगिक संगठनों में हुए परिवर्तनों तथा नव प्रवर्तन का लाभ के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है ? निश्चित तथा अज्ञात जोखिम का लाभ पर कैसे प्रभाव पड़ता है ? इसको समझाने का प्रयास किया गया है। अन्त में विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से लाभ की जानकारी करते हुए लाभ से सम्बन्धित विस्तृत विवेचना की गयी है।
लाभ जोखिम उठाने, नव-प्रवर्तन को लागू करने एवं अनिश्चिताओं को गहन करने का परिणाम होता है। लाभ एक अविशिष्ट बचत होती है। यह साहसी को अन्य साधनां के पुरस्कार चुकाने के बाद प्राप्त होता है। लाभ अनिश्चित होता है। लाभ ऋणात्मक भी हो सकता है।
जे0 बी0 क्लार्क के अनुसार लाभ प्रावैगिक परिवर्तनों के कारण प्राप्त होता है- (1) जनसंख्या में वृद्धि (2) उपभोक्ता की रुचि एवं पसन्दगी में परिवर्तन (3) लोगो की आवश्यकताओं में वृद्धि (4) पूँजी-

निर्माण में वृद्धि (5) तकनीकी सुधार में परिवर्तन (6) व्यावसायिक संगठन में परिवर्तन। शुम्पीटर के अनुसार लाभ नव-प्रवर्तन को लागू करने का परिवर्तन होता है। नव-प्रवर्तन भी 6 प्रकार के होते है-
(1) उत्पादन की नई विधि का प्रयोग (2) नयी मशीनों का प्रयोग (3) फर्म के आन्तरिक संगठन में परिवर्तन (4) कच्चे माल के स्रोत को ढूँढना (5) वस्तु के किस्म में सुधार (6) वस्तु की बिक्री करने की विधि में परिवर्तन।
प्रो0 हॉले के अनुसा लाभ जोखिम तथा अनिश्चितता गहन करने का परिणाम होता है।
प्रो0 नाइट के अनुसार लाभ अज्ञात अनिश्चितताओं को वहन करने का पुरस्कार होता है।
आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लाभ साहसियों की माँग एवं पूर्ति की साम्य से निर्धारित होता है।

27.6 शब्दावली

बीमा योग्य जोखिम- व्यवसाय में कुछ जोखिम ऐसे होते हैं जिनके विषय में साहसी पहले से अनुमान लगा लेता है। ऐसे जोखिमों को ''द्रष्टव्य जोखिम'' भी कहते हैं। इन जोखिमों के लिए साहसी बीमा करा लेता है। उदाहरण के लिए आग , चोरी, दुर्घटना आदि। चूँकि साहसी इन जोखिमों के लिए बीमा कम लेता है, अतः वास्तव में कोई जोखिम नहीं उठाता है। वास्तव मे जोखिम बीमा कम्पनी उठाती है। इसके लिए बीमा कम्पनी प्रीमियम की राशि निर्धारित कर देती है और साहसी को यह प्रीमियम की राशि बीमा कम्पनी के पास जमा करनी होती है। चूँकि प्रीमियम की यह राशि वस्तु के उत्पादन लागत में सम्मिलित रहती है अतः लाभ ऐसे बीमा कराये गये जोखिमों का पुरस्का नहीं होता है।
गैर-बीमा योग्य जोखिम- गैर-बीमा योग्य जोखिम के विषय में साहस पहले से अनुमान नहीं Yगा सकता। अतः इनका वह बीमा नहीं कर सकता है। अतः ऐसे गैर-बीमा योग्य जोखिमों को सहन करने के लिए ही साहसी को लाभ प्राप्त होता है। चूँकि गैर-बीमा योग्य जोखिम अनिश्चित होते हैं, इसीलिए प्रो0 नाइट ने लाभ के अनिश्चितता वहन करने का पुरस्कार कहा है।
व्यापार चक्र- पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में तेज एवं मन्दी की घटनाएँ आती रहती हैं। मन्दी के समय वस्तुओं की बिक्री न हो पाने के कारण साहसी को हानि हो जाती है। मन्दी के कारण साहसी को जो हानि होती है, इसका भी बीम नहीं होता है।
तकनीकी परिवर्तन- तकनीकी ज्ञान के क्षेत्र में निरन्तर सुधार होना ही तकनीकी परिवर्तन होता है अतः साहसी को बाजार में अपनी प्रतिस्पर्धात्मक शाक्ति को बनाए रखने के लिए नई नकनीकी एवं मशीनों का प्रयोग करना पड़ता है।

27.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लाभ का नव-प्रवर्तन सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाला अर्थशास्त्री था-
(a) शुम्पीटर (b) नाइट (c) क्लार्क (d) हॉले
2. प्रो0 शुम्पीटर के अनुसार लाभ नवीन आविष्कारों के कारण निम्न को प्राप्त होता है -
(a) प्रयोग कर्त्ता को (a) विचारकों को (a) वैज्ञानिकों को (a) इनमें से सभी को
3. लाभ दरों में असमानता का कारण है-

(a) जोखिम में अन्तर होना (b) योग्यता भिन्नता
(c) प्रावैगिक परिवर्तन (d) इनमें से सभी

4. सकल लाभ के अंग हैं-
(a) साहसी के स्व-साधनों का प्रतिफल (b) उद्यमी द्वारा प्रबन्ध के लिए किया व्यय
(c) उद्यमी को मिल ने वाले एकाधिकार लाभ (d) इनमें से सभी

5. निम्न कथनों में से कौन-सा कथन सबसे सही है-
(a) लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार है
(b) लाभ अनिश्चितता उठाने का पुरस्कार है
(c) लाभ मजदूरी का ही एक रूप है
(d) लाभ साहसी की सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करता है

6. विशुद्ध लाभ बराबर होना चाहिए-
(a) कुल लाभ - अस्पष्ट लागतें (b) कुल लाभ - स्पष्ट लागतें
(c) कुल लाभ - कुल लागतें (d) कुल आगम - (कुल स्पष्ट लागतें अस्पष्ट लागतें)

7. अनिश्चितता वहन करने का लाभ का सिद्धान्त के प्रतिपादक थे-
(a) प्रो0 नाइट (b) जे0 बी0 क्लार्क (c) शुम्पीटर (d) हॉले

उत्तर-1. (a), 2. (a), 3. (d), 4. (d), 5. (b), 6. (d), 7. (a),

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लाभ किसे कहते हैं।
2. लाभ की विशेषताएँ बताइए।
3. कुल लाभ एवं शुद्ध लाभ में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. लाभ के सन्दर्भ में शुम्पीटर का दृष्टिकोण बताइए।
5. नाइट का लाभ सम्बन्धी दृष्टिकोण स्पष्ट कीजिए।

27.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्रा, जे0पी0 (2009): उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त -मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन,वाराणसी।
2. सिन्हा, वी0सी0 (1990): उन्नत आर्थिक सिद्धान्त, स्टूडेन्ट फ्रेन्डस इलाहाबाद।
3. आहूजा, एम0एल0 (2006): उच्च आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक विश्लेषण, चन्द्र प्रकाशन, दिल्ली।
4. लाल, एस0 एन0 (2005): उच्च आर्थिक सिद्धान्त, शिवा पब्लिशिंग हाऊस -इलाहाबाद।
5. लाल, एस0 एन0 (2008): माइक्रों इकोनामिक्स:शिवा पब्लिशिंगहाऊस - इलाहाबाद।
8. जैन, पी0 सी0 (1995): उच्च आर्थिक विश्लेषण, चुग प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. त्रिपाठी, बद्री विशाल (2000): एडवांस इकोनोमिक थ्योरी,किताब महल, इलाहाबाद।

27.9 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Mehta,J.K.(1980):EconomicTheory,ChughPublications,Allahabad.
- Jhingan, M.L. (2007) : Advanced Economic Theory, Vrinda Prakashan, New Delhi.
- Seth, M.L. (2007): Micro Economics, L.N. Agrwal Publications, Agra.
- P. Samuelson (1967) : Micro Economic Theory & Policy, Oxford University Press, U.K.
- Dhingra, I.S. (2005) : Advaned Economics Theory New Century Publication. DelhiTripathi, B.B. (2000) : Micro Economics, Kitab Mahal Allahabad

27.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''लाभ अनिश्चितता सहन करने का भुगतान है।'' विवेचना कीजिए।
2. लाभ का नव-प्रवर्तन सिद्धान्त को समझाइए।
3. ''लाभ जोखिम उठाने तथा अनिश्चितता सहन करने का पुरस्कार है।'' समीक्षा कीजिए।
4. हॉले, नाइट, शुम्पीटर में से किन्हीं दो के लाभ के सिद्धान्त को बतलाइए।